हाथ नीचे को छोड़ दिये। जो रुपये उसने धोती के पल्ले में दबाये थे वे छूट गये, वे उसकी भाभी के चरणों में बिखर गये। वह टूटा-सा, नीचे को सिर झुकाकर ऐसे खड़ा हो गया, जैसे हार गया हो।...

रामदीन उसी प्रकार सिर झुकाये, बड़ी धीमी चाल से घर की ओर लौट चला। घर आते ही, वह एक ओर बैठकर इस प्रकार रो पड़ा, जैसे आज ही उसका जुगल बेटा मरा है। आज ही उसने दुःख और दर्द का मर्म समझा हो।

× × ×

फिर? फिर? और सभी कुछ तो चला गया फिर! लड़के की मा भी गई, लड़के की बहू भी गई, जो रामदीन के पास जमा थी, वह भी गई। और अकेला ही, अपंग ही रह गया रामदीन।

यहीं रामदीन ने अपने अतीत को छोड़ दिया। वह वर्तमान पर आगया। उसकी आँखें भर आईं और ज़ोर से रो पड़ने के साथ, वह चारपाई से नीचे गिर पड़ा। उसने ज़मीन पर पड़े ही, रोते-रोते चीत्कार के साथ कहा—अरे रामदीन, अभागा कहीं का!...

हाँ, यह रामदीन है, जो अब भी जीवित है। जो एक मिल का मज़दूर है। जो आज पिटकर और अपमानित होकर आया है! किसने उसके बुढ़ापे के जीवन पर दया और ममता नहीं दिखाई।

१९४२

* * *

अब धर्म-ईमान कहाँ?

श्रीयुत धर्मवीर एम० ए०

"अब धर्म-ईमान कहाँ रह गया है!" चालीसवर्षीय दूकानदार गन्धर्वसेन ने सम्भवतः समाज के पतन पर खेद प्रकट करते हुए कहा। वह दूकान की दहलीज़ में खड़ा था। बाईं टाँग तनी हुई थी और दाईं ढीली। सारा वज़न दरवाज़े पर पड़ रहा था।

"सचमुच धर्म तो बिलकुल ख़तम ही हो चुका है", गठीले बदनवाले नारायणदास ने, जो दुनिया को अपना पेशा रईसी बताता था, समर्थन किया।

"देख लीजिए, आप लोग" लाहौर से छुट्टियों में आये हुए प्रोफ़ेसर सिंह ने कहा—"ज़माना कहाँ से कहाँ जा पहुँचा है।"

नौजवान वैद्य प्रभुदयाल को खाँड की परची न मिली थी, इसलिए वह मूक विरोध के रूप में गुड़ ख़रीदने का निश्चय करके भक्त लछमनदास की दूकान पर बैठा था। (भक्तजी दूकान के पिछवाड़े अपने मकान चले गये थे। शायद घरवाली ने आवाज़ दी थी, क्योंकि उनकी लड़की कुछ बीमार-सी रहती है।) वैद्य ने हँसकर पूछा—"प्रोफ़ेसर साहब, हो क्या गया है जो अब हाथ धोकर ज़माने के पीछे पड़ गये हैं?"

"आप भी सुन लीजिए," प्रोफ़ेसर सिंह ने कहा—"मैं अभी-अभी मास्टर धनपतराय से अख़बार लेने के लिए यहाँ पहुँचा। ख़ुद मैं उनके मकान पर न गया, बल्कि मैंने बाबू गन्धर्वसेन को भेज दिया। ये अपनी दूकान से उठकर गये तब दो मुसलमान स्त्रियाँ, भागभरी और ग़ुलामज़ानी, भक्तजी की दूकान पर आईं। भक्तजी यहाँ ही बैठे थे। उनमें से पहली ने भक्तजी से पूछा—"पीली खाँड है? क्या भाव दी है?"

"अढ़ाई सेर," भक्तजी ने जवाब दिया।

"भागभरी ने तीन आने निकालकर भक्तजी के हाथ में दिये। इतने में तीसरी मुसलमान स्त्री, गुलबदन, आई और भक्तजी की दूकान की दहलीज़ के पास बैठ गई। यह कपड़ों को लगाने के लिए नील लेना चाहती थी। भक्तजी की दूकान के बाहिर गुलू दर्ज़ी बोरे पर बैठा था। जब भक्तजी दूकान के अन्दर पीली खाँड अर्थात् शक्कर के लिए गये

तब वह बोरे से उठकर अपनी दूकान की तरफ चला गया। मैंने देखा कि जब गुलू दर्जी उठा तब बोरे पर एक रुपयेवाला एक नोट पड़ा था। वह सम्भवतः दर्जी के हाथ में था। वह उसे जेब में रखना भूल गया था, इसलिए वह बोरे पर पड़ा रह गया। लेकिन गुलू को इसका कुछ ज्ञान न था।

"गुलामजानी ने देखा कि दर्जी का नोट रह गया है। उसने चुपके से नोट उठा लिया। फिर वह इधर-उधर देखने लगी कि किसी ने मुझे नोट चुराते देखा तो नहीं। मैंने जान-बूझकर आँखें फेर लीं और मुख-मुद्रा इस प्रकार बनाई जैसे मैंने उसे नोट उठाते देखा ही नहीं। अब नोट को उसने बाँयें हाथ में रखकर पाँव में पड़े छोटे-से कागज़ को दायें हाथ से उठाया और उस कागज के टुकड़े-टुकड़े करने लगी।

"भागभरी ने जब शक्कर अपने पल्ले बाँध ली तब गुलामजानी भी उसके साथ हो ली। मैं देखना चाहता था कि गुलामजानी गुलू दर्जी की दूकान की तरफ जाती है कि नहीं; क्योंकि वह दर्जी उसकी उपस्थिति में बोरे से उठकर गया था और गुलामजानी को मालूम था कि यह नोट गुल का ही है। परन्तु वह गुलू की दूकान की तरफ जाने के बजाय दूसरी गली में मुड़ गई। मैंने भक्तजी से कहा कि दूकान के बाहर बोरे पर एक रुपये का एक नोट पड़ा हुआ था और वह गुलामजानी जो शक्कर खरीदनेवाली भागभरी के साथ आई थी, उसे उठा ले गई है। भक्तजी कुछ बेदिल होकर दौड़े। इन्होंने गुलामजानी को गली के मोड़ पर जाकर पकड़ लिया। मैं इनके साथ था।

"तुमने बोरे से नोट उठाया था!" मैंने गुलामजानी से कहा।

"नोट नहीं था वह।" उसने झट से उत्तर दिया—"वह तो कागज था, जिसे मैंने टुकड़े-टुकड़े करके फाड़ दिया था।"

"लेकिन मैंने तो अपनी आँखों से तुमको नोट उठाते देखा है," मैं ज़रा ज़ोर के साथ बोला।

"तुम झूठ बोलते हो।" वह बड़ी बहादुरी से चिल्लाई। उसकी साथिन भी कुछ कहना चाहती थी, पर वह चुप रही।

भक्तजी की हिम्मत ने क्यों जवाब दे दिया, यह मुझे मालूम नहीं। लेकिन इन्हें चुप देखकर मैंने कहा—"भक्तजी, इसकी तलाशी लीजिए। नोट अभी निकल आयेगा।"

"मेरी तलाशी कौन लेनेवाला है?" गुलामजानी बोली। इसके साथ ही उसने अपनी जेब से एक रुपये का नोट निकालकर कहा—"क्या मेरे पास अपना नोट नहीं हो सकता?"

"अच्छा, अच्छा!" भक्तजी ने वह नोट उसके हाथ से बड़ी आसानी के साथ ले लिया, बल्कि एक तरह से खुद गुलामजानी ने वह नोट भक्तजी के हाथ में दे दिया। भक्तजी ने अपनी दूकान की ओर मुँह किया, तब गुलामजानी बिना किसी विरोध के अपने घर को चल दी। यदि यह रुपया उसका होता तो क्या वह शोर न करती? वह तो एक आने के लिए सारे गाँव को अपने सिर पर उठा लेती।

"यह तो सचमुच बड़ा अन्धेर है," प्रभुदयाल के मुँह से निकला।

"लेकिन अब इसपर भक्तजी का कोई अधिकार नहीं है।" नारायणदास ने भक्तजी की तरफ देखकर कहा—"कम से कम आधा हिस्सा तो प्रोफ़ेसर साहब को दिया जाना चाहिए और प्रोफ़ेसर साहब जिस तरह चाहें उसको दान में दे दें।"

"महाराज," भक्तजी पोपले मुँह से हँस दिये—"सारी दौलत ही इनकी है।"

यह कहकर भक्तजी अपनी जेब का हिसाब करने लगे। नीलवाली औरत सौदा माँग रही है, यह बात वे भूल ही गये। जब हिसाब ठीक निकला तब सारे नोट भक्तजी ने फिर जेब में डाल लिये और कहा—"बड़ी कृपा है प्रोफ़ेसर साहब की, नहीं तो यह गुलामजानी तो आज मुझे कमाई करवा गई थी।"

"लेकिन भक्तजी", अब प्रोफ़ेसर सिंह ने गम्भीरता से कहा—"आपका हिसाब तो ठीक है?"

"ठीक है महाराज, बड़ी कृपा है।"

"लेकिन मेरा ख़याल है कि वह रुपया शायद गुलू दर्जी का था; क्योंकि जब वह बोरे से उठा तब यह नोट वहाँ बोरे पर नजर आया। आप तो पिछले आध-पौन घण्टे में यहाँ बैठे ही नहीं। अपनी सामने की दूकान में ही बैठकर खाँड़ तौलते रहे हैं।"

"शायद आप ठीक कहते हैं।" भक्तजी ने एक नोट जेब से निकालकर अलग रख दिया—"यह नोट शायद गुलू दर्जी का ही है।"

इतना कहकर वे उठ बैठे और नंगे पाँव ही गुलू की दूकान की तरफ जाने लगे। यह फुर्ती सम्भवतः शर्म को छिपाने का एक तरीका था। गन्धर्वसेन ने कहा—"भक्तजी, ठहर जाइए। इतनी जल्दी क्या पड़ी है?" नारायणदास बोला—"गुलू का होगा तो वह खुद ही आपके पास आ जायगा। आप कहीं जा तो नहीं रहे। फिर गुलू भी यहीं रहता है।"

भक्तजी रुक गये। दर्जी का विचार छोड़कर वे वापस दूकान को लौट आये।

(२)

"सुनते हो? आज मैं रोटी नहीं खाऊँगा।" गन्धर्वसेन ने ड्योढ़ी के अन्दर पाँव रखते ही कहा।

"क्यों, क्या हो गया है?" लखमी ने बच्चे के कुर्ते से सूई को उठाते हुए पूछा। वह हाथ से कुर्ता सी रही थी।

"बस, भूख नहीं है, और कोई खास बात नहीं।"

"फिर भी कुछ तो होना चाहिए।" पीढ़ी से उठकर लखमी पति के पास आ अगई।

गन्धर्वसेन पहले चारपाई पर बैठ गया था, अब लेट गया। लखमी ने देखा, घर का बड़ा दरवाज़ा खुला है। उसे बन्द करके यह भी छोटी चारपाई को नज़दीक घसीट उसपर बैठ गई—"आखिर कोई बात तो बताइए।"

"बात मामूली-सी है।" गन्धर्वसेन ने भक्तजी की दुकान पर हुई घटना सुनाई और कहने लगा—"सचमुच आजकल हम में धर्म-ईमान नहीं रहा।"

"लेकिन इससे आपको क्या हो गया है?"

"कुछ नहीं। मैं थोड़ा आराम करना चाहता हूँ। अगर कोई आदमी पूछने आये तो कह देना, सो रहा हूँ। थोड़ी देर के लिए मेरे पास कोई न आये। हाँ, तुम सब लोग खा-पी लेना। मैं कुछ नहीं खाऊँगा।"

"फिर वही मुहारनी—कुछ नहीं खाऊँगा।"

"हाँ, एक बार कह जो दिया। फिर बार-बार..."

"बहुत अच्छा। आप पहले ही रेवड़ी हैं। सूख-सूखकर और कड़ाकेदार बन जाइए।"

वह चली गई तब गन्धर्वसेन की मानसिक आँखों के सामने भाँति-भाँति के चित्र आने लगे—'मैं कई वर्ष तक पब्लिक स्कूल की कमिटी का मन्त्री और खज़ान्ची रहा। मुझे किसी ने हिसाब-किताब के बारे में कभी न पूछा। लड़के के ब्याह के लिए मुझे रुपये की ज़रूरत हुई तब मैंने चार हजार रुपया स्कूल की कमिटी के खाते से निकालकर खर्च स्कूल के बोर्डिंग की इमारत के हिसाब में डाल दिया। यह ग़बन था। आखिर कमिटी को पता भी लग गया। उसके सामने यह तजवीज आई कि मन्त्री पर मुकद्दमा चलाया जाय। मैंने साफ-साफ स्वीकार कर लिया कि मुझसे भूल हुई है। अब भी मैं हर महीने उस रुपये की किस्त अदा कर रहा हूँ। यदि मुझपर मुकद्दमा चल जाता तो कैद की सज़ा हो जाती और इस समय जेल में होता। सचमुच आजकल हममें धर्म-ईमान नहीं रहा।

(३)

नारायणदास जब भक्त लछमनदास की दूकान से वापस अपने मुहल्ले में पहुँचा तब डाक्टर रामनाथ की दूकान के सामने उसने सदा की भाँति जमघट पाया। चार आदमी ताश खेल रहे थे, कुछ दूसरे उन खेलनेवालों को मन्त्रणा दे रहे थे। ऐसे, जैसे दुनिया की बाज़ी में हार-जीत की जिम्मेदारी इनके सिर पर ही आ पड़ी है। नारायणदास ने डाक्टर के चबूतरे पर बिछी चटाई के ऊपर आसन जमाते हुए कहा—"भई, अब धर्म कहाँ रह गया है?"

"क्या, क्या हो गया है लालाजी?" डाक्टर ने पूछा।

"कुछ न पूछिए डाक्टर साहब," नारायणदास ने उत्तर दिया।

"आखिर वजह?"

नारायणदास ने भक्तजी की दूकान पर हुई घटना सुना दी।

डाक्टर हँस पड़ा। कनखियों से उसने नारायणदास को भी देखा।

"क्यों?" नारायणदास ने पूछा क्योंकि उसने यह बात देख ली थी कि डाक्टर की हँसी द्वयर्थक है।

"मैं इसलिए हँस रहा हूँ," डाक्टर ने असली बात छिपाते हुए जवाब दिया—"कि देखो, एक रुपये की खातिर उस स्त्री ने अपना नाम सदा के लिए बदनाम करवा लिया। क्या उसके नेक नाम की कीमत एक रुपया ही थी?"

"हाँ," नारायणदास बोला—"है तो आपका सवाल ठीक।"

इतने में नारायणदास का लड़का उसे बुलाकर घर ले गया।

अब डाक्टर पहले से कहीं अधिक जोर से और खिल-खिलाकर हँसने लगा। पड़ोसी धर्मचन्द उधर से गुजरा तब उसने इसका कारण पूछा। डाक्टर ने पहले तो उसे टालने का यत्न किया, फिर बाध्य होकर सारी कहानी सुनाई और यह कहा—"नारायणदास कहता है कि अब इस दुनिया में धर्म नहीं रहा। कोई इस रईस से पूछे कि वृद्धा विधवा, हरो, को उसके रुपये और गहनों की खातिर किसने कत्ल किया है? गाड़ी में जम्मू के एक फारेस्ट आफिसर को उसके सूटकेसों की खातिर कत्ल करने का यत्न किसने किया और किसने सात बरस की सजा पाई? चलती गाड़ी में एक अफसर की टाइप-राइटिङ्ग मशीन अपनी गठरी में बाँधकर इसने लाहौर-स्टेशन पर उसे उतार लिया। जब मालिक ने पुलिस सारजेण्ट को इसकी खबर दी और सारजेण्ट ने नारायणदास से इस बारे में सवाल किया तब इन हजरत ने पुलिस सारजेण्ट को पानीवाले नल के हौज़ में औंधा करके फेंक दिया। पर बाद में यह पकड़ा गया और इसने सज़ा पाई। अब यह शख्स कहता है कि दुनिया में धर्म नहीं रहा।"

(४)

प्रोफेसर सिंह की स्त्री, उर्मिला, बी० ए० पास है। शायद इसी कारण हर मामले और बहस में भाग लेना वह अपना कर्तव्य समझती है। रात को घर के सभी लोग जब खा चुके और बच्चों को सुला दिया गया तब मियाँ-बीबी घूमने को निकले। रास्ते में सिंह ने कहा—"तुम्हें एक कहानी सुनाऊँ?"

"ज़रूर," उर्मिला बोली—"लेकिन हो ओरिजनल (मौलिक)। यह नहीं कि किसी पत्रिका आदि से पढ़कर दाद की खातिर..."

"नहीं-नहीं, ऐसा नहीं हो सकता..."

"हो सकता है या नहीं, यह मैं खूब जानती हूँ।"

"अच्छा, सुनो।"

अब सिंह ने भक्त लछमनदास की दूकानवाला सारा किस्सा नोन-मरिच लगाकर सुना दिया और अन्त में ग़लती से यह भी कह दिया—"क्या अब धर्म-ईमान कहीं रह गया है?"

"बिलकुल नहीं," उर्मिला ने बड़ी गम्भीरता से उत्तर दिया—"अगर आदमी ओवलटीन खरीदते-खरीदते पीक-फ्रीन बिस्कुटों का डिब्बा उड़ा लाये और उस्तरे के ब्लेडों का पैकट मोल लेते-लेते चाकोलेट छिपा लाये तो धर्म-ईमान कहाँ रह सकता है?"

प्रोफेसर सिंह चुप हो गये।

१९४४

* * *

अभाव

श्री विष्णु प्रभाकर

ज्यों-ज्यों प्रोफेसर वर्मा की तृष्णा बढ़ती जाती थी त्यों-त्यों अभाव की रेखा भी गहरी होती जाती थी। रसवादी प्रोफेसर और रस-सागर के बीच एक अभेद्य दीवार थी, जिसके पार वे रस के लहराते समुद्र को देख तो सकते थे पर उस तक पहुँचना असम्भव था। वह उनके लिए मृग-तृष्णा बन गया था। इसी कारण अनजाने में एक नई प्रवृत्ति उनमें जन्म ले रही थी—वे अपने पास-पड़ोस के तथा सम्पर्क में आनेवाले प्रत्येक व्यक्ति का सूक्ष्म अध्ययन करने लगे थे। हर आदमी के साथ सुख-दुःख लगा रहता है इसीलिए जैसे ही वे किसी के दुःख को खोज निकालते, अनजाने तो उनका हृदय उल्लास से भर उठता। परन्तु दुनिया तो दुनिया है। विचित्रता उसका गुण है। कभी-कभी ऐसा भी



राधामाधव

(पहाड़ी शैली का १८वीं शती का चित्र)



हो जाता कि प्रोफेसर किसी व्यक्ति में लेशमात्र दुःख भी न ढूंढ़ पाते। तब उसको हँसते देखकर उनकी छाती में छुरियाँ चलने लगतीं और वे लम्बी साँस खींचकर कहते—आह! कितना सुखी मनुष्य है? इधर इसी तरह की एक घटना ने उन्हें बेहद त्रस्त कर दिया था। बात यह थी अभी-अभी उनके पड़ोस में एक नया परिवार आ बसा था। केवल दो व्यक्ति थे, पति और पत्नी। दोनों सुन्दर, सुसंस्कृत और मधरभाषी। सदा हँसते रहते और जब किसी से बोलते तो मुख से मानो फूल झड़ते। देखते-देखते वे पड़ोस की चर्चा का विषय बन गए। हर एक गोष्ठी में, चाहे वह पुरुष-वर्ग की हो अथवा नारी-वर्ग की, उनकी सज्जनता, विनम्रता और विद्वत्ता की चर्चा बड़ी श्रद्धा से की जाती और सब को उनके सुखी जीवन से ईर्ष्या होने लगती। स्त्रियों की सभा में विशेषकर उनकी पत्नी की सराहना की जाती थी। युवतियाँ कहतीं—कैसी सुन्दर है गोरा-गोरा रङ्ग, सुआ-सी नाक, काली कजरारी आँखें और सुडौल शरीर। जी करता है, बैठे-बैठे देखा करूँ। और हमेशा हँसते ही रहते हैं।

"हाँ बहिन! हमेशा हँसते ही रहते हैं जैसे फूल झड़ते हों और बोली कितनी मीठी है। जाते-जाते पूछ लेगी—कहो बहिनो! क्या बना रही हो।—अजी बहिन जी, हमें भी दिखा दो क्या बुन रही हो! ओहो बड़ा सुन्दर हाथ है तुम्हारा। ऐसे ही सबका मन बढ़ाती रहती है।"

"और बहिन! एक बार पूछो तो दस बार बताती है। फिर-फिरकर समझाती है। इस तरह बताती है कि मन में उतरता चला जाता है। उस पर सिफत यह है कि ज्यादा बात भी नहीं करती।"

एक साथ कई युवतियाँ उसकी हाँ में हाँ मिलातीं। एक कहती—सो तो है ही बहिन।

दूसरी बोलती—हाँ जी! बड़ी भली है, परमात्मा उसे सुखी रक्खे। तीसरी कहती—जी करता है, बहिन सदा उसके साथ रहूँ। और फिर एक कहकहा लगता। कोई मनचली कह उठती—दुर पगली! उसका मालिक क्या तेरी जान को रोवेगा?

जब हँसी रुकती तो बूढ़ी दादी बोल उठती—बहू, मुझे तो उसकी एक बात बड़ी प्यारी लगती है।

"क्या जी?"

"बस हमेशा काम करती रहती है और सब काम करती है। नहीं तो नए ज़माने की लुगाई क्या ऐसी ही हैं। बाज़ार जाती है। मगर क्या मजाल जो कभी पत्ता चाटे। सीधी जाती है और सौदा लेकर लौट आती है। घर में बुहारी-झाड़ू, चौका-बासन सब आप करती है। कातती भी है। कह रही थी—माँजी! कातना मुझे बड़ा प्यारा लगता है। घर-घर में तो जैसे भगवान् गाते हों। मोहिनी-सी छा जाती है। चक्की भी पीसती है।"

बहू ने अचरज से कहा—जी क्या सच!

"और क्या झूठ कहती हूँ! तेरी तरह नहीं है। दो हरफ पढ़े और मेमसाब सेज पर जा सोई। और उसे क्या कम सुख है। मालिक पलकों पर रखता है। दोनों जून दोनों जने हवा-खोरी को जाते हैं जैसे सीता-राम की जोड़ी हो।"

दूसरी बहू कहती—पर माँजी, एक बात है; अभी उसकी गोद सूनी है। उमर तो उसकी काफी है।

माँजी जवाब देतीं—बहू, देखने में तो लौंडियाँ-सी लगती है। दिन आएँगे तो गोद भी भरेगी। आज-कल बच्चे जरा बड़ी उमर में होते हैं।

इस तरह जहाँ भी दो औरतें मिलतीं, घर में, मेले-ठेले में, हाट-बाजार में, शादी-गमी में, वहीं उनकी चर्चा आप-से-आप अनजाने ही चल पड़ती। प्रोफेसर वर्मा की पत्नी भी ये सब बातें सुनती थी। वह स्वयं उसकी बड़ी प्रशंसक थी क्योंकि उसने अपनी आँखों से अपनी छत से सब कुछ देखा था। उनकी छत-से-छत मिलती थी। जब प्रोफेसर की पत्नी ऊपर आती तो कभी-कभी पड़ोसिन से दो बातें कर लेती थी। पर अभी वे बातें बहुत आगे नहीं बढ़ी थीं। एक तो प्रोफेसर की पत्नी कम बातें करती थी और करती थी तो साधारण औरतों की बातों में उसे ज्यादा दिलचस्पी नहीं थी। लड़ाई है, लड़ाई की वजह से जीना दूभर हो गया है। महँगाई बढ़ रही है, और महँगाई छोड़िए, पैसा है पर चीज नहीं है। खरीज का न जाने क्या हुआ? दियासलाई, मिट्टी का तेल, चीनी, मसाले, इन सब के अभाव में गिरस्ती बस जंजाल बन गई है।

पड़ोसिन मुस्कराकर कहती—बहिन! यह तो जीवन

का एक रस है। अभाव न हो तो भाव को कौन पूछे? अपनी असलियत का पता तो आदमी को ऐसे ही जमाने में चलता है।

प्रोफेसर की पत्नी भी अनायास मुस्करा उठती—सो तो तुम ठीक कहती हो बहिन, पर जी को दुख तो होता ही है।

"दुख तो बहिन मानने का है। मानो तो दुख का अन्त ही नहीं है और मानो तो मौत भी सुखदायी है।"

और फिर प्रोफेसर की पत्नी की ओर देखती और हँसकर कहती—पर बहिन, दुनिया में रहकर इस मानता से कौन बचा है? वे कहते थे कि दुख सभी को होता है। पर हाँ, दुख को दुख मानकर भी जो उसे सहने की शक्ति रखते हैं उनके लिए दुख भी सुख हो जाता है।

प्रोफेसर की पत्नी उसके पति की विद्वत्तापूर्ण युक्ति का क्या जवाब देती और बात एकदम रुक जाती। कभी बेबी रो उठती, कभी प्रोफेसर पुकार लेते। प्रोफेसर को यह सब पसन्द नहीं था। पत्नी जब-जब उसकी प्रशंसा करती, वे अनमने-से हो उठते। कभी-कभी तो चिनचिना पड़ते। छोड़ो भी उसकी बातें, बनती है। पर पत्नी को ऐसी कोई बात नहीं दिखाई पड़ती थी। फिर भी वह सोचा करती थी—शायद ये सच कहते हैं, वरना कोई इतना खुश कैसे रह सकता है। मैं उससे मेल बढ़ाऊँगी तब उसकी असलियत का पता चलेगा।

और मेल बढ़ाने का एक मौका अचानक दूसरे ही दिन उसके हाथ आ गया यद्यपि उसका आरम्भ दुख से भरा हुआ था। पर इसी लिए वह स्थायी था। बात यह थी कि माँ की तरह बेबी भी अक्सर मुँडेरे पर चढ़कर उनके घर में झाँका करती थी। ठीक मुँडेर पर पीपल के दरख्त की कुछ शाखाएँ झुक आई थीं। अक्सर वह उन्हें तोड़ने लगती थी। उस दिन वह जैसे ही उन्हें तोड़ने को उठी, पैर रपट गया और वह धम्म से नीचे आ गिरी। उसकी चीख निकल गई। प्रोफेसर की पत्नी नीचे थी, हड़बड़ाकर दौड़ी। देखा—बेबी बुरी तरह रो रही है और उसका चेहरा खून से भरा है। उसका दिल धक से रह गया—हाय! यह क्या हुआ। बेबी, बेबी.....

बेबी धीरे-धीरे संज्ञा खो रही थी और उसे सँभालती-सँभालती माँ खुद पागल हो चली थी पर ठीक इसी समय मुँडेर के पीछे से वही मुस्कराता हुआ चिरपरिचित चेहरा उभर आया। हाथ में शीशी और डिब्बा था। उन्हें मुँडेर पर टिकाकर वह ऊपर चढ़ी और फिर फुर्ती से इधर कूद पड़ी। क्षण भर में यह सब हो गया और दूसरे क्षण बेबी उसकी गोद में थी। रूई से माथे का रक्त पोंछती-पोंछती वह बोली—जल्दी से दूध हो तो ले आओ। न हो तो ब्राण्डी देती हूँ।

प्रोफेसर की पत्नी जैसे जागी। कहा—दूध है, अभी लाती हूँ।

"और चम्मच भी।"

"जी।"

पत्नी गई और वह खून पोंछती रही। माथे पर दाहिनी ओर गहरा घाव बन गया था। उसे 'डीटोल' से साफ किया और धीरे से उसमें पाउडर भर दिया। फिर पट्टी बाँधने लगी। बेबी पूरी तरह होश में नहीं थी। जब दूध में ब्राण्डी मिलाकर चम्मच से उसे पिलाई तो उसने आँखें खोलीं। सुन्दर गुलाबी चेहरा सफेद चिट्टा हो गया था। वह मुस्कराई और बोली—बस बेबी! घबरा गई। अरे शेर तो न जाने कितनी बार कूदते हैं।

बेबी आँखें खोल देखती रही। न हँसी न रोई और न बोली। प्रोफेसर की पत्नी की आँखें कृतज्ञता से भर आईं। बोली—आपने..... ।

"अरे छोड़िए भी! बेबी को डाक्टर के पास ले जाना होगा। प्रोफेसर साहब आएँ तो कह दीजिए, और देखिए, बेबी को लिटाए रहना चाहिए। जख्म गहरा है।"

तभी जीने में खटखट हुई। प्रोफेसर कालेज से लौट आए थे। पड़ोसिन ने अपना सामान सँभाला और अपने घर लौट चली। जाते-जाते फिर कहा—ब्राण्डी छोड़े जाती हूँ। जरूरत होगी तो फिर दीजिएगा।

प्रोफेसर ने यह सब सुना और बेबी को खून से तर देखा तो घबरा उठे। बोले—यह क्या हुआ?

"बेबी मुँडेर से गिर गई।"

"कहाँ चोट लगी ? ज्यादा लगी क्या ?"

"सिर में जख्म है, गहरा है। पड़ोसिन ने 'फर्स्टएड' दी है। कहती है अभी डाक्टर के पास ले जाना होगा।"

प्रोफेसर तभी बेबी को लेकर डाक्टर के पास गए। मरहम-पट्टी हुई। डाक्टर ने कहा—प्रोफेसर ! आपकी पत्नी बड़ी चतुर है।

"जी !"

"पट्टी बड़ी अच्छी तरह की है। ट्रेंड है।"

प्रोफेसर के जी में आया कि कहें—डाक्टर, जिसने पट्टी बाँधी है वह मेरी पत्नी नहीं है। पर न जाने क्या हुआ, वे बोल न सके। चुपचाप बेबी को लेकर लौट आए।

तभी ऊपर से आवाज आई—सुनिए तो।

देखा वही थी। पछ रही थी—क्या कहा डाक्टर ने ?

प्रोफेसर की पत्नी ने जवाब दिया—आपकी तारीफ कर रहा था। कहता था जख्म गहरा है। देर लगेगी पर डर नहीं है।

वह मुस्कराई—सब ठीक हो जाएगा।

और रात होने से पहले एक बार फिर उसने पूछा। इस बार उसके पति भी थे। और फिर वे दोनों रोज सबेरे घूमकर लौटते तो फूलों के कई गुच्छे ले आते। पूछते—

"बेबी कैसी है ?"

"ठीक है।"

"तो ये फूल उसे दे दीजिए।"

दिन बीतते, जख्म भरता और साथ-ही-साथ पड़ोसिन का प्रेम भी बढ़ता। कभी-कभी छत से आकर वह बेबी को देख जाती। अक्सर कोई-न-कोई खिलौना ले आती। फूले हुए उड़ने वाले गुब्बारे, सजी हुई गुड़िया, दो घोड़ी की गाड़ी या सुन्दर सलोनी गाय.... ।

प्रोफेसर देखते और एक अनिर्वचनीय पीड़ा से भर उठते। कहते—मना क्यों नहीं करती। पत्नी कहती—कैसे करूँ ? सोचती हूँ, इस बार जरूर मना करूँगी पर वह आती है और ऐसे प्रेम से बोलती है जैसे बेबी उसी की है। बस, मैं बोल भी नहीं सकती।

प्रोफेसर और भी चिनचिनाते—वाहियात ! यह सब बन्द होना चाहिए।

"तो क्या करूँ ?"

"मना कर दो !"

"पर जानते हो, इन्हीं की बदौलत बेबी बची है....."

और तब पत्नी की आँखें भर आतीं। प्रोफेसर उसे देखकर मुँह फेर लेते। शायद उनका दिल भी उमड़ता—प्रेम से या घृणा से कौन जाने ? पर उधर का क्रम उसी तरह चलता रहा। यद्यपि जैसे-जैसे जख्म भर रहा था वैसे-वैसे उसका आना भी कम हो रहा था पर साथ ही प्रेम गहरा हो रहा था।"

एक दिन आया, बेबी का घाव भर गया पर अर्द्ध-चन्द्राकार एक निशान वहाँ बना रहा। चन्द्रमा के कलङ्क की तरह यह रेखा प्रोफेसर की पत्नी को अच्छी नहीं लगी लेकिन पड़ोसिन मुस्कराकर बोली—हलो ! बेबी के माथे पर चन्द्रमा—शङ्कर बाबा का चन्द्रमा ! कैसा सुन्दर, कैसा प्यारा ?

बेबी हँस पड़ी। सन्ध्या होते-होते उसने छत पर से आवाज दी—जरा सुनोगी, बहिन। प्रोफेसर की पत्नी शीघ्रता से आई—क्या है जी ?

"लो यह क्रीम है। धीरे-धीरे दो उँगलियों से घाव पर मलिए। देखिए ऐसे धीरे-धीरे मालिश कीजिए। निशान मिटा नहीं तो इतना फीका पड़ जाएगा कि दूर से कोई जान न सकेगा कि चन्द्रमा में कलङ्क है।"

प्रोफेसर की पत्नी ने कृतकृत्य होकर कहा—आप बहुत अच्छी हैं।

"यानी बहुत खराब !"

पत्नी धक से रह गई—जी...नहीं, नहीं जी।

पड़ोसिन खिलखिलाकर हँसी—आप तो डर गईं। पर कहा करते हैं कि किसी को यह कहना कि तुम बहुत अच्छे हो ऐसा ही है जैसे यह कहना कि तुम बहुत बुरे हो। क्योंकि जो आदमी अच्छा-ही-अच्छा है वह अभी तो कहीं दिखाई देता नहीं। लेकिन जाने भी दो यह तो विद्वानों की बातें हैं। वे जानें और जानें तुम्हारे प्रोफेसर। हमें तो यों ही हँस-खेलकर

जीवन काट देना है। और हाँ ! कल आप हमारे घर आइएगा।

"कल क्या है ?"

"उनका जन्म दिन !"

"बधाई ! बहुत-बहुत बधाई ! बहिन ! तुम्हारा सुहाग अचल रहे।"

"धन्यवाद बहिन ! पर असली बधाई तो आपके आने की है।"

"जरूर आऊँगी जी।"

"और प्रोफेसर भी।"

"कह दूँगी।"

"कहना नहीं लाना होगा। घबराइए नहीं, उनके द्वारा न्योता पहुँच जाएगा। और वह फिर खिलखिला पड़ी। प्रोफेसर की पत्नी झेंप गई। पड़ोसिन ने फिर कहा—बेबी को न छोड़ आइएगा।"

"जी नहीं, सभी जाएँगे।"

"धन्यवाद !"—उसने कहा और लौट गई।

प्रोफेसर ने जब सुना तब एक बार तो मन में उठा—मना कर दें। फिर सोचा यह तो बुरी बात है। इसके अलावा उन्हें पास से देखने का अवसर मिलेगा, उसे खोना ठीक नहीं होगा। इसीलिए वे अगले दिन ठीक समय पर पड़ोसी के घर पहुँचे। द्वार पर उन दोनों ने सदा की तरह खिलते हुए सब का स्वागत किया। जिस कमरे में वे बैठे थे वह बहुत बड़ा नहीं था। फरनीचर भी सादा और कम था पर जो था सुन्दर था और ठीक जगह पर लगा हुआ था। एक ओर फर्श था जिस पर दूध सी नई चादर बिछी थी। तकिए भी उतने ही स्वच्छ और कोमल थे। कारनिस पर नाना प्रकार के पशु-पक्षी सजे थे। छोटी गोल तिपाइयों पर शान्ति-निकेतन के बने सुन्दर और रंगीन फल रक्खे हुए थे। लाल रङ्ग के खूबसूरत फूलदानों में रक्खे हुए ताज़े फूलों के गुलदस्तों से भीनी-भीनी महक आ रही थी। आदमी भी ज्यादा नहीं थे। कुल मिलाकर पाँच पुरुष, चार स्त्रियाँ और चार बच्चे थे। एक पारिवारिक परिचय-गोष्ठी थी और सब छुट्टी के 'मूड' में थे। आनन्द-विनोद और मधुर हास्य का साम्राज्य था जैसे उनके लिए दुनिया में न कहीं पीड़ा थी, न विषाद। चारों ओर प्रमोद का वातावरण था। घर में हँसी थी, आसमान हँसता था, हवा हँसती थी और उनके बीच में बसा हुआ मानव भी हँसता था।

देखा, एक कोने में फूलों का अस्त-व्यस्त ढेर लगा है। एक मित्र बोल उठे—जिधर देखो फूल, मानो आप लोग मनुष्य नहीं फूल हैं। पतिदेव बड़े जोर से हँसे—अजी पूछिए मत ! इन्होंने तो आज मुझे फूल ही समझ लिया था। दूसरे मित्र हँसे—कुशल मनाइए, इन्होंने आपको मसल नहीं दिया।

एक नवयुवती बोली—अजी, फूल नहीं फूलों का देवता समझा होगा।

पत्नी ने मुस्कराकर कहा—अजी, क्या उपमा दी आपने ! इनसे तो पत्थर के देवता कहीं अच्छे हैं।

एक कहकहा लगा। पति ने हँसते-हँसते कहा—क्यों नहीं। बेचारों पर कितना ही अत्याचार करलो वे बोलेंगे थोड़े ही। पर भाई ! मुझसे तो यह सब सहा नहीं जाता। पहले ठण्डे पानी में नहाइए। फिर पूजा करिए। फिर पूजा करवाइए। यह खाइए देवी का प्रसाद है, यह देवता का है, यह आपकी दासी का है, यह टीका लगवाइए, लीजिए मेरी माँग में सिन्दूर भर दीजिए। भला कोई अन्त है इस पूजा का ! बाप रे ! पत्थर ही की हिम्मत है... और तब ऐसा कहकहा लगा कि हँसते-हँसते सबके पेट में बल पड़ गए। आँखों में आँसू भर आए, पर क्या मजाल वह झेंपी हो। उसी तरह हँसती रही। फिर हँसी-हँसी में काम की बातें चलीं। बधाइयाँ दी गईं और सूचना मिली कि मेज पर चाय तैयार है। सब उठे और मेज पर पहुँचे। प्रोफेसर ने अब एक बार फिर उन्हें ध्यान से देखा—वही उल्लास ! वही उमङ्गों की वेगवती धारा।

क्या है यह—उन्होंने सोचा और म्लान मन चुपचाप चीनी घोलने लगे। सामने प्लेटों में ताजे रसगुल्ले थे, गुलाब जामुनें थीं, पेड़े थे, पेठे की डलियाँ थीं और थे गरम-गरम समोसे, दाल भीजी, टिकिया। कहते हैं, हँसते-हँसते और चार जनों में ज्यादा खाया जाता है। प्रोफेसर भी हँसते थे और खाते थे, पर रह-रहकर उनके हृदय में जैसे कोई सुई चुभ उठती थी। वे 'सी' करना चाहते थे पर कर नहीं

सकते थे। इसलिए पीड़ा और भी असह्य हो उठी थी। तभी अचानक उन्होंने देखा—बेबी खेलती-कूदती चारों ओर दौड़ रही है। कभी इस खिलौने को छूती है कभी उसको। ध्यान आया कि कहीं कुछ तोड़ न दे इसलिए पुकार लें। पर जैसे ही उन्होंने पुकारना चाहा, बेबी भागी। उसका पैर तिपाई में लगा। तिपाई उलट गई और उस पर के खिलौने, कीमती फूलदान चूर-चूर होकर फर्श पर बिखर गए। जैसे भूडोल आया। प्रोफेसर क्रुद्ध चिल्ला उठे-—राक्षसनी ! तूने यह क्या किया !

जैसे क्षण भर के लिए प्रशान्त सागर उबल उठा। सबकी दृष्टि उस ओर उठी। गृहिणी ने एक बार क्रुद्ध प्रोफेसर को देखा फिर सहमी-सकपकाई बेबी को, और फिर खिलखिलाकर हँस पड़ी। देखते-देखते बेबी को गोदी में भर लिया और पागलों की तरह चूमने लगी—बेबी, मेरी बेबी ! जानती हो, तुमने आज एक बहुत बड़ा काम किया है, बहुत बड़ा !

और फिर प्रोफेसर की ओर मुड़कर उसने कहा—आप बड़े निर्दयी हैं। ऐसे प्यारे बच्चे को ताड़ते हैं। खिलौनों का मूल्य खेलने में है और जब उनसे खेला जाएगा तो उनका टूटना जरूरी है......

फिर क्षण भर के लिए रुकी, जैसे साँस लेती हो। धीरे से बोली—न जाने कब से रक्खे थे। न कोई छूता था, न खेलता था। देखते-देखते आँखें थक गई थीं। आज बेबी ने उसी थकान को दूर किया है...।

और कहकर उन्होंने फिर बेबी को जोर से चूमा और फिर उतार-उतारकर सारे खिलौने उसके सामने डालने लगी—खेलो और तोड़ो, मेरे बच्चे ! खूब तोड़ो। आखिर इनका अन्त आना ही चाहिए, आना ही चाहिए, अमरता तो रुके पानी के समान है। प्रवाह में अन्त है, इसीलिए जीवन है।

जैसे कमरे में निस्तब्धता छा गई। स्तब्ध शान्त सब ने उस नारी को देखा। वह अब भी उसी तरह हँस रही थी पर उस हँसी के पीछे पीड़ा का जो अगाध और अदृश्य सागर लहरा रहा था उसे आज सब ने देखा। मित्रों ने देखा, पति ने देखा और सबसे स्पष्ट देखा प्रोफेसर ने। यह उनकी विजय थी। उनके हर्ष का अवसर था पर न जाने क्यों वे एक अनिर्वचनीय सहानुभूति की भावना से भर उठे और मन-ही-मन उन्होंने कहा—इतने बड़े अभाव को हृदय में छिपाकर भी जो इतना खुलकर हँस सकता है उस व्यक्ति को मैं बार-बार प्रणाम करता हूँ।

१९४६

* * *

कोलाहल

श्री सत्यप्रकाश संगर, एम० ए० आनर्स

बला की गर्मी पड़ रही थी। हवा बिलकुल बन्द थी। प्रकृति स्थिर थी। किन्तु इस स्थिरता में तूफान के चिह्न छिपे हुए थे। आंधी के काले दल पश्चिम से उठे और नगर पर छा गए। प्रलय मच गई। पूर्व से बादलों के काले दल लिए शीत हवाएँ बढ़ीं। घोर वर्षा ने तूफान की सेना को मार भगाया।

डोली में बैठी हुई वधू ने आंसुओं की झड़ी लगा रखी थी। इन आंसुओं में भूतकाल की व्यतीत घटनाएँ तैर रही थीं और भविष्य के अनिश्चित स्वप्न अँगड़ाइयाँ ले रहे थे।

'मत रो बेटी।' बाप ने नम आंखों को पगड़ी के पल्ले से पोंछते हुए कहा।

ऊँह.........ऊँह..........ऊँ.......ह।

डोली चल पड़ी।

कुछ फासिले पर वह भी उसके पीछे हो लिया।

गर्मी के चिह्न मिट चुके थे। आंधी के लक्षण अदृश्य हो चुके थे। वर्षा थम चुकी थी। उसके नजदीक गर्मी, आंधी और वर्षा प्रकृति के भिन्न पहलू थे। दुःख, क्षुब्धता और सुख जीवन के अलग-अलग अंग। रंगीन अफशानियां,

प्रकृति का आवश्यक चरित्र और परिवर्तन जीवन के अभिट पहलू थे।

डोली चलती रही। उसके कदम उसके पीछे अनायास उठते गए। झील के किनारे पहुँचकर उसके कदम रुक गए लेकिन निगाहें चलती रहीं। वे डोली का पीछा करती रहीं जब तक वह आमों के झुरमुट के पीछे छिप न गई।

झील के कारागार में लहरें स्वतन्त्रता के लिए व्याकुल हो रही थीं। आजादी की धुन ने उन्हें पागल बना रखा था। आजादी की हवा में सांस लेने की प्रबल इच्छा उन्हें जेल की चारदीवारी से भाग जाने पर विवश कर रही थी। वे न जानती थीं कि इस स्वतन्त्रता और मृत्यु के मध्य केवल एक बारीक परदा था। कारागार की पाबन्दी जीवन की शर्त थी और जेल का छुटकारा मृत्यु को निमन्त्रण था। परिणाम की परवा न करती हुई वे किनारे की ओर अग्रसर हुईं, जैसे एक असंगठित सेना अपनी शक्ति का अनुभव किए बिना शत्रु की किलाबन्दी को तोड़ने के विचार से आगे बढ़े। पूरे जोश से वे किनारे से टकराईं और चूर-चूर हो गईं। वह इनके असफल प्रयत्न पर हँस दिया। लेकिन यह पराजय उनके दृढ़ निश्चय को हिला न सकी। एक नवीन उत्साह के साथ वे फिर बढ़ीं। किन्तु शत्रु की प्रबल फसीलों ने उनकी एक न चलने दी।

झील में तूफानी हलचल मच गई। पराजित लहरों ने तूफाने बदतमीजी पैदा कर दिया। पुरशोर चीखें वातावरण पर छा गईं। शरीर पर लाल वस्त्र सजाए, हाथों में लाल चूड़ियां पहने और पांव में पायल बाँधे एक सुन्दरी झील की अथाह गहराइयों से उसकी सतह पर उभड़ी। काली जुल्फें कन्धों पर बखेरे, आंखों में चिनगारियां भरे, वह बदमस्त लहरों की कांपती हुई छातियों पर भीषण नृत्य में मग्न हो गई। गीत की गूंज, पायल की झंकार और लहरों का गीत चारों ओर फैल गया। लहरों पर सवार, नृत्य में मग्न वह पागलों की भांति झील के तट की ओर बढ़ी। कौन? नववधू? उसने मुख मोड़ लिया।

'अरे क्या तुम नाराज हो? बोलते क्यों नहीं?... देखो, मैं तुम्हारे लिए एक खिलौना लाई हूँ।'

'खिलौना?' उसने खुशी से चिल्लाते हुए कहा।

'हां खिलौना। रबड़ की गेंद। कल चचा शहर से लाए थे। हरीश झगड़ने लगा कि गेंद वह लेगा। मां चचा के पीछे पड़ गई कि वह हमेशा एक ही वस्तु क्यों लाते हैं। भाग्यवश पिता जी उधर आ निकले। 'हरीश अब बच्चा नहीं।' वह बोले। चचा की जीत हुई, मेरी जीत हुई और......'

"और किसकी जीत हुई?"

"तुम्हारी!"

"वह कैसे?"

"मेरी जीत तुम्हारी जीत;" और उसने झट अपने नन्हें हाथ अपनी आंखों पर रख लिए।

गेंद का खेल उनके लिए विशेषत: रुचिकर होता था। एक दिन नीना ने गेंद को जोर से उछाला। गेंद पानी में जा गिरी। वह उसके पीछे कूदा। लहरें उसे ढकेल कर ले गईं। वह बढ़ता गया। वह चिल्लाई, 'हाथ बढ़ाओ।' उसने हाथ बढ़ाया। तब अकस्मात् वह नीचे को धँसा और अदृश्य हो गया। झील के पानी ने उसे छिपा लिया। वह चीख उठी। उसकी चीख सुनकर कोई गड़रिया भागा-भागा आया। वह फिर चिल्लाई, 'वह उभड़ा, वह रहा।' गड़रिये ने छलांग लगा दी और उसे जा दबोचा।

"अरे तुम हो रम्मी? यहां क्या करते हो? यदि डूब जाते, फिर?"

"अगर मैं डूब जाता?"

"ऐसा न कहो।" उसने आंखें भरकर कहा।

"क्यों?"

"तो मैं कैसे जीवित रहती।" इतना कहकर वह भाग गई।

और वह बहुधा स्कूल से भाग आता। किसी-न-किसी बहाने से आंख बचाकर वहाँ से खिसक जाता और सीधा झील ही का रास्ता पकड़ता। 'ओ नीना!' वहां पहुँच कर वह आवाज लगाता। आम की ओट से जवाबी आवाज आती। वहाँ से भाग कर वह पीपल के नीचे जा छुपती। वह उसके पीछे भागता। वह आम के

पीछे छुप जाती। वह उसे पकड़ने दौड़ता। अब वह आम के वृक्ष पर चढ़ जाती। वह भी उसके पीछे-पीछे वृक्ष पर चढ़ जाता और उसके पास एक ही टहनी पर बैठ जाता।

"जब हम किसी को नहीं बुलाते तो हमें कोई क्यों बुलाता है ?' वह मुंह बनाकर कहती।

"हम किसी के घर थोड़े बैठे हैं परमात्मा के आम के पेड़ पर बैठे हैं", वह मुंह फेरकर कहता।

"परमात्मा का आम, परमात्मा का आम।" वह चिढ़ाती और ताली बजाती। दोनों हँसी में लोट-पोट हो जाते।

"नीना सुनो।" उसका हाथ अपने हाथों में थामते हुए उसने एकदिन कहा। "मैं तुम्हें आज एक जरूरी बात सुनाना चाहता हूँ।"

"और सुनो रम्मी, मैं तुमसे कोई जरूरी बात सुनना नहीं चाहती।" वह शरारत-भरी मुस्कान से बोली।

"मैं व्यंग्य नहीं कर रहा।"

"तुम इसके योग्य ही नहीं।"

"मैं शहर जा रहा हूँ।"

"तो इसमें गम्भीरता की क्या बात है ?"

"खैर, मैं कल प्रातः जा रहा हूँ।"

"सचमुच ? कब लौटोगे ?"

"छुट्टियों में।"

"क्या मतलब ?"

"अब मैं वहाँ पढ़ा करूँगा।"

शाखा जोर से हिली। तना हवा में लहराया। अत्यन्त कठिनता से वह अपने आपको सँभाल सका। वह जमीन पर गिर पड़ी थी। वह भी कूद पड़ा। वह बेहोश पड़ी थी। उसने अपनी कमीज के आंचल को झील के पानी में भिगोया और उसके मुंह में निचोड़ दिया। फिर उसने ओक में पानी लाकर उसके मुंह पर छींटे मारे। उसने आंखें खोलीं और बोली, "रम्मी।"

उसने उसके कलियों से सफेद और फूल जैसे कोमल हाथों को अपने हाथों में ले लिया।

"तुम्हें क्या हो गया था ?" उसने धीरे से उसके हाथों को दबाते हुए पूछा।

"मुझे क्या मालूम।"

"तुम गिर क्यों पड़ी थीं ?"

"क्या जानूं ?"

"बेहोश होने का क्या कारण था ?"

"मुझसे क्या पूछते हो", वह व्याकुलता से बोली।

"अरे तुम तो रोती हो; यह क्या। भला पागल हो गईं ?"

"हां पागल हूँ।"

"पागल मत बनो, नीना।"

"तो तुम शहर जाने का विचार छोड़ दो।"

"अच्छा न जाऊँगा।"

वह एकदम उठकर बैठ गई। उसके बाज़ू उसकी गर्दन के गिर्द थे।

किन्तु शहर जाना पड़ा। प्रतिज्ञा भंग करनी पड़ी। अब वह हाईस्कूल में प्रवेश कर चुका था। लेकिन नए वातावरण को न अपना सका। वह हर दो सप्ताह बाद घर लौट आता और सबसे पहले नीना ही को मिलता।

"नीना, अब इसके साथ बातें न किया करो।" उसकी मां ने उसे एक दिन समझाया।

"तो किसके साथ बातें किया करूँ ?"

"अपनी सहेलियों के साथ।"

"इसे क्या हो गया है ?"

"अब वह बड़ा हो गया है ?"

"और मैं क्या छोटी हो गई हूँ ?"

"चुप रहो। जिरह मत किया करो।" न जाने किधर से निकल उसके पिता उसे डांट बताते।

वह उसे बताती कि वे अब बड़े हो गए हैं और बड़ों को परस्पर नहीं मिलना चाहिए।'

"केवल झील के किनारे मिलना चाहिए।" और दोनों खिलखिला कर हँस देते।

इस हँसी में मां की झिड़कियां और पिता की घुड़कियां हवा बनकर उड़ जातीं और आकाश की नीलिमा में अदृश्य हो जातीं। वह उसे गाना सिखाता। वह गाती 'बन की चिड़िया बन के बन-बन बोलूँगी ?' और भाग

निकलती। वह बन की चिड़िया के पीछे भागता। ग्राम के पीछे, फिर पीपल के पीछे। वह अकस्मात् पीछे मुड़कर उसे पकड़ लेता और पाश में खींच लेता।

गर्मियों की छुट्टियों में वे यथारीति मिलते रहे।

एक दिन वह बोला—

"नीना, मैं वापिस शहर जा रहा हूँ।"

"कब ?"

"परसों।"

"फिर कब लौटोगे ?"

"बड़े दिनों में।"

"किन्तु अभी तो पन्द्रह दिन बाकी हैं!'

"सुशील का पत्र आया है कि शीघ्र आओ।"

"क्या कोई लड़की है ?"

"हां .....क्या......कौन ?"

जैसे उसके मुंह पर किसी ने तमाचा लगाया हो। वह पागलों की भांति घर की ओर भागी। वह हैरान था कि उसे क्या हो गया। वह उसके पीछे भागा। लेकिन वह बिजली की-सी तेजी से भागी जा रही थी। वह उसे पकड़ न सका।

तीसरे दिन वह चला गया।

तत्पश्चात् कई वर्ष उनकी मुलाकात न हो सकी। इस बार वह गांव आया, उसकी बारात आई हुई थी।

फिजा में नृत्य की आवाज फिर बुलन्द हुई। पायल फिर बजने लगे। वायुमंडल पर संगीत की लहरें छा गईं।

"बन्द करो नाच।' उसने चिल्लाकर कहा।

परन्तु नाच जारी रहा।

"मैं कहता हूँ, बन्द करो इस ढोंग को।"

उसकी आवाज वायु में गूंज उठी। सन्नाटा छा गया। नृत्य बन्द हो गया। नीरवता छा गई। झील का नीला जल शान्त हो गया। निस्तब्धता का पूर्ण राज्य था।

वधू आगे बढ़ी और समीप आकर व्यंग्य से बोली—

"रोष क्यों? नाच से नाराजगी क्यों? यह पागलों का नाच है, खुशी का नहीं। मेरे शरीर का अंग-अंग जल रहा है प्रतिकार की भयंकर ज्वाला मेरे अन्दर भड़क रही है। तुमने मुझे जलाया। मैं तुम्हें सताऊँगी। तुमने मेरे सुख को मिट्टी में मिलाया; मैं तुम्हारे चैन को तबाह कर दूंगी।"

"लेकिन यह सब क्यों ?"

"क्यों! अपने आपसे पूछो जिसने मेरे पवित्र प्रेम को इस प्रकार ठुकराया।"

"कब और कैसे ?"

"वह सुशील कौन थी ?"

"कौन सुशील ?"

"जिसके पत्र ने मेरी सुखबाटिका में आग लगाकर उसे नश्वर कर दिया।"

वह अट्टहास हँसा।

"अरी पगली, वह तो मेरा मित्र सुशीलकुमार था!"

"सुशीलकुमार!"

फिजा में शोर बुलन्द हुआ। पश्चिम से काला तूफान उठा। भयंकर चीखों से वातावरण गूंज उठा। झील के पानी में प्रचण्ड तूफान उठा। दंदनाती हुई प्रचण्ड वायु के झोंकों ने आम और पीपल के वृक्षों को जड़ से उखाड़ फेंका। प्रकृति क्रोध से पागल हो उठी। नृत्य और भी तेज हो गया। उसकी आंखों से चिनगारियां निकल बिजलियां बनकर कूदने लगीं। उसकी भीषण चीखें वातावरण में फैल गईं। ताण्डव नृत्य में मस्त, लहरों की उछलती हुई छातियों को रौंदती हुई, वह अचानक पानी की गहराइयों में समा गई। प्रकृति एकदम शान्त हो गई। वायुमंडल में मरघट की निस्तब्धता छा गई।

टर.........रर......रर। एक मेंढक टर्रा रहा था।

"बदजात कहीं का!" उसने पत्थर का निशाना बांधते हुए कहा, 'क्या शोर मचा रखा है......

"जी, मैं शोर नहीं मचा रहा। केवल आपसे यह कहना चाहता हूँ कि मुझे छुट्टी की अत्यन्त आवश्यकता है।

"क्या काम है ?"

"मेरे मित्र का विवाह है।"

"मित्र का विवाह है!" उसने मेज पर मुक्का मारते हुए कहा। "आपके पास हमेशा कोई-न-कोई बहाना मौजूद रहता है। कभी शादी, कभी मौत, कभी खांसी, कभी

जुकाम। लेकिन दफ़्तर का काम कैसे चलेगा ? सुपरिण्टेंडेंट साहब की हमेशा आपके विरुद्ध शिकायत रहती है। आपके ड्राफ्ट दोबारा लिखने पड़ते हैं। आपका काम पेंडिंग रहता है। दफ़्तर में आप सर्वदा देरी से आते हैं। आपको पचास बार वार्निंग दी जा चुकी है। लेकिन आप पर कोई असर नहीं होता। अगर आप काम नहीं करना चाहते तो त्याग-पत्र देकर घर बैठिए।"

जब वह घर आया तो क्रोध की ज्वाला उसके अन्दर सुलग रही थी। वह असिस्टेंट सेक्रेटरी को नीचा दिखाना चाहता था। सुपरिण्टेंडेंट को अपमानित करना चाहता था। बदजात, हरामी, कमीने। उसका दिल जल रहा था।

दरवाजे पर दस्तक हुई। शायद कुलदीप था। क्या अजीब आदमी है यह भी। शायद इसे घर कोई घुसने नहीं देता। ये लोग भी अजीब दर्दसर बन जाते हैं। और जब उसका बात करने का मूड ही नहीं तब ये लोग उसे क्यों खामखाह तंग करते हैं। आज वह उसे खरी-खरी सुना देगा। क्या समझ रखा है इसने।

लेकिन जब उसने दरवाजा खोला तो उसका परम मित्र नरेन्द्र खड़ा था।

"भई क्या खूब ! दफ्तर से सीधे घर क्यों भाग आए भला ? क्या कुछ है आज ?" उसने दोनों हाथ घुमाते हुए पूछा।

"तबीयत खराब हो गई थी जरा", उसने गम्भीरता से कहा। "यार क्या खूब हो तुम भी !" नरेन्द्र बोला। 'जरा-सी बात पर बिगड़ बैठते हो। इधर देखो, कोई कुछ बकता रहे, जरा परवा नहीं। और फिर विलियम की बातों का गुस्सा ही क्या। कान का कच्चा है जरा। झट सुपरिण्टेण्डेंट की बात पर विश्वास कर लेता है। और बेचारा रामलाल ! मुझे तो उस पर क्रोध आने की बजाय तरस आता है ? बेचारा आदत से मजबूर है। सौ खुशामद से तीस रुपए पर भरती हुआ। बीस साल जूतियां चाटने के बाद कहीं जाकर सुपरिण्टेण्डेंट बना। सारी आयु झिड़कियां खाने में गुजरी। अब उन्हें हम पर उगल रहा है।

"लेकिन असिस्टेंट सेक्रेटरी के कान क्यों भरता है ?"

"पेट का हल्का ठहरा।"

"यह नीचता का चिह्न है।"

"परन्तु दिल का साफ है।"

"और जबान का नहीं। मैं उसे जबान की सफाई याद करा दूंगा।" उसने दांत पीसते हुए कहा; "उसकी खोपड़ी की मरम्मत कर दूँगा।"

"हा, हा, हा। ही, ही, ही। भई वाह।" नरेन्द्र ने कमरा सिर पर उठा लिया। "अरे यार, पहले अपनी खोपड़ी तो ठीक कर लो।"

"कैसे ?"

"इससे।" उसने जेब से एक बोतल निकालते हुए कहा।

"क्या है ?"

"स्काच।"

"लेकिन मैं तो पीता नहीं।"

"तभी तो खोपड़ी खराब है।"

"खैर, मैं न पिऊँगा।"

"यार, क्या फजूल आदमी हो। न जाने तुम्हें कब समझ आएगी। भला एक-दो पेग लगाने में क्या हर्ज है ?"

"यार मैं नहीं पीता। हानिकारक होती है।"

"क्या झक मार दी है भला ? क्या इसे पीनेवाले सब बीमार रहते हैं ?" क्या मदिरा न सेवन करनेवाले सब स्वस्थ रहते हैं ? क्या पानी के स्थान में शराब पीनेवाले सब देशों में क्षयरोग का दौर-दौरा है बेटा, एक पैग लगाओ और दुनिया के सब दुख भूल जाओ। दुनिया में सिवा ऐश के रखा ही क्या है।" नरेन्द्र बोला।

और उसने शीशे के दो गिलास उठाकर उनमें ह्विस्की उँडेल दी।

जब वह पीकर लेटा तो उस पर एक अजीब नशा छाया हुआ था। कमरे की चीजें, छत और दीवारें घूम रही थीं। इसके बाद उसे कुछ होश न रहा।

जब उसकी आंख खुली तो नरेन्द्र सोफे पर बैठा सिगरेट पी रहा था।

"अब क्या प्रोग्राम है ?"

"कहीं घूमने जाऊँगा और दिल बहलाने।" नरेन्द्र ने कश लगाते हुए कहा।

"कहां ?"

"क्या साथ चलोगे ?"

"शायद।"

और वे दोनों दीदार के घर पहुँचे। शहर के अन्दर गन्दी गलियों में से गुजरते हुए वे एक मकान पर पहुँचे। मैली सीढ़ियों पर चढ़कर एक दरवाजे पर दस्तक दी। अन्दर दो स्त्रियां भड़कीले वस्त्र पहने, सुर्खी और पाउडर से मुँह बिगाड़े बैठी थीं। उनके पास एक बड़ा-सा हुक्का पड़ा था। फर्श पर बड़ी-बड़ी मूंछोंवाले तीन-चार गुण्डे बैठे थे। तबला, सारंगी और हारमोनियम उनके सामने पड़े थे।

"बड़ी देर के बाद आना हुआ" मोटी स्त्री नरेन्द्र से बोली। "उस्ताद फत्तू, अब तुम लोग जाओ।"

तीनों गुंडे बिना मुंह हिलाए बाहर चले गए।

नरेन्द्र ने दीदार से अपने मित्र का परिचय कराया।

वह बहुत प्रसन्न थी। उसे एक नया ग्राहक मिला था। वह भी खुश था, उसे दिल बहलावे के लिए नया अड्डा मिल गया था। न जाने समय कितनी तेजी से गुजर जाता। खुर्शीद के सुरीले गानों में वह दफ्तर के नीरस जीवन को भुला सकता था। कभी-कभी दीदार गाने के लिए जिद करती। सुरताल से अनभिज्ञ वह चीखना आरम्भ कर देती। उसकी तीक्ष्ण और अप्रिय आवाज कानों के पर्दे फाड़ती। कमरे में शोर मच जाता। उसका दिल चाहता कि भाग जाए लेकिन..........

"मैं लेकिन-वेकिन कुछ नहीं जानता। यह भी कोई शराफत है? छः महीने बीत गए और आपने किराए का एक पैसा नहीं चुकाया। क्या मैं आपका नौकर हूँ कि इतने चक्कर काटता फिरूँ? मैं ज्यादा सबर नहीं कर सकता।"

"खैर, आपके कितने रुपए हैं?"

"दो सौ।"

"क्या आप एक मास और प्रतीक्षा नहीं कर सकते?"

"एक दिन नहीं।"

"लेकिन देखिए, इतना शीघ्र तो प्रबन्ध नहीं हो सकता।"

"कहीं से लाकर दो। मैं नहीं जानता। और आगे के लिए यदि आप नियमबद्ध किराया नहीं दे सकते तो मकान खाली कर दीजिए।"

"और आप कहां जाऊँ ?"

"दीदार के पास!"

जैसे किसी ने उसे भरपूर हाथ का तमाचा मारा हो। उसकी आंखों में रक्त उतर आया। वह पागलों की भांति उसपर पिल पड़ा और घसों की वर्षा आरंभ करदी। उस के दो दांत बाहर आ गिरे। उसके गालों से खून टपक रहा था।

"मार डाला, मारडाला। मुझे बचाओ।" उसने शोर मचाना शुरू कर दिया........

शोर सारे शहर पर छा गया। चालीस लाख जनता की आबादी पर। अजीब हालत थी। जोश और भय। रोष और डर। शक और घबराहट। घृणा का समुद्र ढाढें मार रहा था। मनुष्य जंगली दरिंदा बन बैठा। रक्त-पिपासा प्रबल हो उठी। 'आदम बो', 'आदम बो' की पुकार से आकाश चीख उठा।

लाठियों, ईंटों, चाकुओं, छुरों और लोहे की सलाखों से सुसज्जित एक भारी हजूम एक विशाल मकान को घेरे खड़ा था। उसके पास पेट्रोल के कनस्तर और दियासलाई की डिब्बियां भारी संख्या में विद्यमान थीं। अकस्मात धुएँ के बादल आसमान पर छा गए। मानुषिक निपुणता से निर्माण किए गए गगनचुम्बी मुहल्लों को ज्वाला ने अपनी लपेट में ले लिया, उनमें असंख्य बच्चे, स्त्रियां तथा मनुष्य थे। उनकी मर्मभेदी चीत्कारों ने आकाश में छिद्र कर दिए और घोर वर्षा पड़ने लगी। एक अथाह समुद्र की असंख्य लहरों के समान जनसंख्या आगे को बढ़ी। वर्षा से बचाए हुए मनुष्यों को मजा चखाने के लिए, जो ऊपरी मंजिलों में बैठे अन्तिम श्वास ले रहे थे और जीवन तथा मृत्यु के बीच उस क्षणिक काल में सिसिकियां भर रहे थे।

"पकड़ लो, पकड़ लो। जाने न पाएँ।" एक ओर से आवाज आई।

जनसमूह आवाज की ओर बह निकला। चार घायल मनुष्य एक गली में से निकले। उनकी छातियों से रक्त बह रहा था। वे श्वेत वस्त्र धारण किए थे।

"हमें मत मारो। हमने किसी का कुछ नहीं बिगाड़ा। हमारा सब कुछ लुट चुका है। हमें मत मारो।"

"तुम्हारा कौन मजहब है?"

"वही जो तुम्हारा"

"खोलो धोती!"

"विश्वास करो। सौगंध खाकर कहते हैं।" वे हाथ जोड़कर और दुहरे होकर बोले। मृत्यु का भय उन्हें खाए जा रहा था।

एक दम लाठियां, छुरे और सलाखें उनकी ओर बढ़ीं। और क्षणमात्र में वे चलती-फिरती प्रतिमाएँ मिट्टी में मिल गईं। जनसमूह ने आकाशभेदी नारे बुलन्द किए। शायद देवताओं ने इन नारों को सुना, कानाफूसी की और कान बन्द करके रह गए।

जनसमूह छत की ओर लपका। विजयी नारे लगाता हुआ वह आगे बढ़ा। छत पर खड़े निःशस्त्र इन्सानों को उन्होंने ललकारा। स्त्रियों और बच्चों ने चीखें बुलंद कीं। मनुष्यों ने मिन्नत की। नाक रगड़ी। परमात्मा का वास्ता दिया। नोटों के पुलन्दे हजूम पर बिखेर दिए। आभूषणों की वर्षा करदी। लोग उनपर पिल पड़े। लोलुपता और भी बढ़ गई। क्षुधा और भी तेज हो गई। छतवालों ने अपने घरों की चाबियां भी फेंक दी। सब धन लुटाने का लोभ दिया। केवल प्राण रक्षा के लिए। परन्तु यही तो कड़ी शर्त थी।

कुछ मनुष्यों ने जो परनाले के रास्ते छत पर चढ़ गए थे, चालाकी से सदर दरवाजा खोल दिया। फिर क्या था। हजूम के लोग छतों पर चढ़ गए और शिकार पर पिल पड़े। चीखें, पुकारें, नारे, आहें वातावरण में गूंज उठीं। नि-शस्त्र इन्सान शस्त्रधारी इन्सानों के हाथों शहीद हो रहे थे। उनकी चीखें और आहें न परमात्मा को मोम कर सकीं और न सरकार को। इन्सानी लाशों के टुकड़े हवा में बखेरे जाते। शिशुओं को ऊपर उछाल कर उनके नीचे तलवार रख दी जाती और बिजयी तालियां हवा में गूंज उठतीं। स्त्रियों को पकड़कर उनका खुले आम सतीत्व नष्ट कर दिया जाता और फिर उनके शरीर के टुकड़ों को हवा में बिखेर दिया जाता; जैसे दानी माल लुटा रहा हो। इन्सानी लाशों के ढेर बाजारों में, सड़कों पर, गलियों में, चौराहों पर और मकानों के भीतर जमा थे। कई दिन वहीं पड़े रहे। पुलिस और फौज की लारियां आतीं और उनको रौंदती हुई गुजर जातीं। वर्षा प्रतिदिन पड़ती। कुछ दिन पश्चात् शव फूल गए। उनकी दुर्गन्ध सारे वातावरण पर छा गई। नाक सड़ने लगी। किसी शव का कोई वारिस न बनता था। सबको अपने प्राण प्रिय थे। जब किसी ने भी उन लाशों को न सम्भाला तो गिद्धों को लाज आ गई।

लोग रात को भी न सोते। शत्रु के भय ने उनकी निद्रा को भगा दिया था। विरोधी समूहों के शस्त्रधारी जत्थे बाजारों, सड़कों और गलियों का चक्कर काटते। वे केवल यह ध्यान रखते कि शत्रु के शस्त्रधारी जत्थों को न ललकारते। उनकी दृष्टि निःशस्त्र मनुष्यों, भाग्यहीन स्त्रियों और असहाय शिशुओं पर होती।

तब सरकार को सूझी कि मखौल बन्द होना चाहिए। नादिरशाही बध के पश्चात् उसे लोगों को बचाने की चिन्ता हुई। उसे लोगों के इस कार्यक्रम पर क्रोध आ गया और दण्ड के लिए उसने शहर को सेना के हवाले कर दिया। गोरी फौज ने वहां अपना पूर्ण प्रभुत्व जमा लिया। उन्हें भी बल प्रदर्शित करने का सुअवसर मिल गया। गोरे सैनिक किसी पर भी गोली चला सकते थे। निःशस्त्र मनुष्य क्या कुछ नहीं सहन कर सकते?

फिर उनके पास टैंक थे। जब वे चलते, धरती का हृदय कांप उठता। मकानों की बुनियादें हिल जातीं और छतें कांप उठतीं। साथ ही गोलियों की ध्वनि आकाश में गूंज उठती।

रात को टैंक खुर्राटे भरते। गोलियां दनदनातीं और विद्रोही समूह गगनभेदी नारे बुलंद करते।

आधी रात बीते अकस्मात् शोर बुलंद हुआ।

'पकड़ो दौड़ो। शत्रु जाने न पाए।'

टैंक और गोरे सैनिकों से भरी हुई लारियां घटनास्थल पर पहुंच गई। गोलियां वायु में शोर मचा रही थीं।

एक छत से आवाज आई—

"साहिब।"

"क्या है ?" गोरे अफसर ने गर्ज कर पूछा।

"भांगा बाड़ी ते दो चोर लुकिआचे।" (उस टूटे मकान पर दो चोर छुपे बैठे हैं।")

"अभी देखते हैं।"

एक दम बन्दूकें सम्भाले गोरे सैनिक आगे बढ़े। फायर गूंजने लगे। मकान की दीवारें कांप उठीं।

"आदमी ऊपर हैं।" किसी ने आवाज दी।

"कौन है ऊपर ? नीचे आ जाओ।" एक हिन्दुस्तानी पुलिस कर्मचारी ने उच्चस्वर से वायु में परामर्श दिया।

"ठा। ठा। ठा।" एक दम राइफलों ने शोर मचा दिया।

"मार्च बैक।" कमांडर का आदेश उस निस्तब्ध वातावरण में गूंज उठा।

दूर शत्रुदलों के गगनभेदी नारे वायु में चीख रहे थे। वे परमात्मा को चिढ़ा रहे थे, "देखो हम क्या नहीं कर सकते ? तेरे विधान का विध्वंस कर सकते हैं। तेरी सृष्टि को मटिया-मेट कर सकते हैं। क्या अब भी तू हमारी शक्ति से प्रभावित नहीं होता ?"......

और ईश्वर के लिए एक घोर समस्या थी कि पराजय स्वीकार करले अथवा एक और प्रयत्न कर देखे। मनुष्य ने उसे परेशान कर रखा था। उसकी अन्वेषण-पिपासा ने उसका नाक में दम कर रखा था। विज्ञान के आविष्कर्ता आज उसके विधान ही से युद्धासक्त थे। ऐटम का आविष्कर्ता आज उसे ही चुनौती दे रहा था। सिर संसार की सृष्टि उसने अनगिन शताब्दियों में की थी, आज एक मुट्ठी भर इन्सान उसका ध्वंस करने पर व्यग्र थे। उसका शासन डांवाडोल था। और उसका राज्य अन्तिम श्वासों पर। वह कांप उठा। ....

टर्.........टर्... टर्...टर्..... मेंढक फिर चीख उठा।

"चुप रह बदजात। बन्द कर इस अकालिक गीत को।" उसने आगबबूला होकर उसके पत्थर दे मारा।

१९४८

❀ ❀ ❀

नौ सौ नवदम्पतियों का संकट

(मालवा की एक किंवदंती के आधार पर)

श्री राम अवतार चौरसिया

अत्याचारों की विभीषिका में मानवता की ज्योति सदैव से प्रज्वलित होती रही है। जीवन की मुसकान का महत्त्व जिन्होंने समझा, उन्होंने अपने जीवन का मोह नहीं किया। अपनी अभिलाषाएँ इस तरह न्योछावर कर दीं जैसे वे अभिलाषाएँ लेकर जन्में ही नहीं थे।

× × ×

बात मध्ययुग की है, जब मालवा की शस्य-श्यामला भूमि पर सुलतानों का राज्य था। धार का एक सुलतान उस समय कुष्ट-रोग से पीड़ित था। उसने रोग-मुक्त होने के लिए न जाने कितना धन पानी की तरह बहा दिया, किन्तु कुछ लाभ न हुआ। वह अपने रोग से बहुत ही परेशान था। उसके पास अनेक वैद्य-हकीम आते किंतु असफल होकर लौट जाते।

उसकी बेगमें उससे घृणा करने लगी थीं। उसके पास आने में हिचकती थीं। सुलतान को विश्वास हो गया था कि उसका रोग असाध्य है। इसलिए उसे निराशा ने घेर लिया था।

एक दिन वह दुश्चिंता में डूबा हुआ कुछ विचार कर रहा था कि चोबदार ने उसे एक हकीम के आने की सूचना दी। सुलतान ने सुना तो वह झल्ला उठा—"तो क्या करूँ ? मुझे हकीमों से कोई वास्ता नहीं है। कितनी बार मैंने कहा कि मेरा यह रोग इस जिन्दगी में ठीक नहीं होने का.

फिर तुम लोग रोज-ब-रोज किसी हकीम-वैद्य के आने का जिक्र क्यों करते रहते हो?

"मगर जहाँपनाह!" सैनिक बोला—"वह हुजूर के पास आने के लिए अड़ा हुआ है। उसका कहना है कि मैं सिर्फ सुलतान से मिलना ही चाहता हूँ। वह रुपया-पैसा कुछ नहीं चाहता है। जहाँपनाह! बड़ी दूर से आया है।" सैनिक चुप होकर सुलतान के उत्तर की प्रतीक्षा करने लगा। सुलतान चुपचाप बैठा रहा। उसकी आँखों में आशा की क्षीण ज्योति झलकी, किन्तु वह फिर बुझ गई। सैनिक ने फिर कहना प्रारम्भ किया—"जहाँपनाह! उसका कहना है कि वह सुलतान को जरूर अच्छा कर देगा। वह और हकीमों से भिन्न मालूम होता है।"

थोड़ी देर सन्नाटा रहा। सुलतान ने अन्यमनस्क भाव से कहा—"अच्छा बुलाओ।"

और थोड़ी देर बाद हकीम सुलतान के सामने खड़ा मुसकुरा रहा था। उसने फकीर की तरह कपड़े पहन रक्खे थे। हाथ में तसबीह (माला) थी, जिसे वह उँगलियों के सहारे गिनता जा रहा था। उसके चेहरे से क्रूरता झलक रही थी। उसकी आँखें जलते अंगारों की तरह चमक रही थीं। सुलतान कुछ देर उसका चेहरा देखता रहा फिर बोला—"आप मेरा रोग अच्छा करना चाहते हैं, मगर यह नामुमकिन है। आज तक न जाने कितने मशहूर हकीम मेरा इलाज करने आए, मगर वे ठीक न कर सके। मुझे अब यकीन नहीं कि मेरा रोग अच्छा हो सकता है।"

हकीम मुसकुराया, फिर गहरी आवाज में बोला—"जहाँपनाह! दुनिया में कोई चीज भी नामुमकिन नहीं है। इंसान को हिम्मत नहीं हारनी चाहिए। आपका यह रोग मैं बहुत जल्द अच्छा कर सकता हूँ।"

सुलतान के मानस पटल पर पुराने हकीमों के चेहरे घूम गए। उसे याद आया कि उन्होंने भी यही कहा था कि आपके रोग को मैं बहुत जल्द अच्छा कर सकता हूँ। उसके चेहरे पर वितृष्णा अंकित हो गई। उसने उपेक्षा से कहा—"यह अल्फाज मैं हजारों बार हजार आदमियों से सुन चुका हूँ, और उन्हीं में शायद एक आप भी हैं।"

उसने मुसकुराते हुए कहा—"असलियत के आगे झूठी बात नहीं ठहर सकती। मैं आपको यकीन दिलाता हूँ।" उसने कुछ ऐसे आकर्षक स्वर में कहा कि सुलतान की आँखों में आशा की ज्योति पुनः जगमगाने लगी। उसे पहचानकर वह बोला—"जहाँपनाह! अगर मैं दावे के साथ कहूँ कि आप इस छोटे से रोग से अच्छे हो जाएँगे, तो...?"

"तो!" वह तुरंत बोल उठा—"मैं तुम्हें अपनी आधी सल्तनत का वारिस बना दूँगा, और उसके बाद फिर और कुछ।"

वह ठहाका मारकर एक जोर की हँसी हँसा। सारा दीवानखाना उसकी हँसी से गूँज उठा। सुलतान चकित रह गया। वह बोला—"अल्लाह आपको सलामत रखे! मुझे दौलत की चाह नहीं है। मैं तो फकीर हूँ, और फकीर को दौलत से क्या मतलब?"

सुलतान ने कहा—"फिर आप क्या चाहते हैं?"

वह बोला—"मैं चाहता हूँ दीन के बंदों की भलाई! मैं तो इस्लाम का झंडाबरदार हूँ।"

"तो क्या मैं दरअस्ल ठीक हो सकता हूँ?"

"इंशाअल्लाह!" वह जोर-जोर से माला फेरने लगा—"अल्लाह की इनायत पर आपको शक न होना चाहिए। मगर...."

वह खामोश हो गया। थोड़ी देर तक दीवानखाने में निस्तब्धता छायी रही। फिर अपनी तीक्ष्ण दृष्टि से सुलतान को देखता हुआ बोला—"वह इलाज आप करेंगे, इसमें मुझे शक होता है। बड़ा ही खौफनाक इलाज है, जहाँपनाह!"

"कौन सा इलाज?" उसकी उत्सुकता दबी न रह सकी।

"बहुत ही माकूल इलाज है। एक ढेले से दो निशाने। मगर मुझे डर है कि आप उसे नामंजूर कर देंगे, और शायद मुझे भी कुछ तकलीफ उठानी पड़े।"

सुलतान गंभीर हो गया। फिर बोला—"नहीं, नहीं आप साफ साफ कहिए, बगैर किसी हिचकिचाहट के।"

"जो हुक्म!" उसने कहा—"आपको किसी के खून में नहाना होगा....."

"खून में!" वह चौंक पड़ा। फिर बोला—"किसके?"

"नौ सौ नए शादीशुदा जोड़ों के खून से भरे हौज में

आपको नंगे नहाना होगा, जिसमें मैं नहाने से पेश्तर एक दवा मिलाऊँगा। अल्लाह चाहेगा...."

"चुप रहो!" वह चीख उठा—"तुम क्या बक रहे हो? अपनी जबान बंद करो। वर्ना मैं तुम्हारी जबान खिंचवा लूँगा।" उसने कानों पर हाथ धर लिया। फिर मायूसी से बोला—"नौ-सौ नए शादीशुदा जोड़ों के खून से भरे हौज में नहाना...."

"इसमें क्या मुश्किल है? वह भी एक सुलतान के लिए?" वह बोला—"आपको क्या दिक्कत है। आप अगर चाहें तो हौज क्या, समुद्र भरा जा सकता है....."

"मैं आगे नहीं सुनना चाहता।" वह चीखा।

फकीर कहता गया—"लड़ाई में सैकड़ों-हजारों को मौत के घाट उतारना और खून में नहाना, क्या दूसरी चीजें हैं। सोच लो, काफिरों का खात्मा, और इस मनहूस बीमारी से नजात। एक ढेले से दो शिकार...." और वह ठठाकर हँसा—"सोच लो सुलतान! जल्दी नहीं।"

उसकी हँसी गूँजती रही। सुलतान ने मारे घृणा के सर झुका लिया।

और जब सुलतान ने मुँह ऊपर उठाकर देखा तो फकीर जा चुका था, और उसके स्थान पर एक कुप्पीनुमा डिबिया रक्खी थी।...

एक साल समाप्त हो गया—

फकीर की कुप्पीनुमा डिबिया ताख में रक्खी हुई मैली पड़ चुकी थी।

सुलतान का रोग और जोर पकड़ गया था। बेगमें तो उसके पास आती ही नहीं थीं फिर दूसरे लोगों की क्या बात? लोग उससे दूर रहने का प्रयत्न करते, उसके विषय में कानाफूसी करते। वह सब कुछ देखता-सुनता। वह इस पीड़ा से पागल सा होता जा रहा था। कभी-कभी उसके कानों में फकीर की बातें गूँज जातीं—"सोच लो, काफिरों का खात्मा, और बीमारी से नजात।"...और ताख में रक्खी कुप्पीनुमा डिबिया पर जब उसकी निगाह जाती, तो वह मन मसोस कर रह जाता। वह सोचता—जिन्होंने जिन्दगी के मिठास का एक बार भी लुत्फ नहीं लिया, उनके अरमान कितने सुनहले होंगे। ओह! उनके खून में नहाना! कितना भारी पाप है! वे बेकसूर जानें, जिनकी हसरतों के फूल भी नहीं खिल पाए, उन जवान लड़के-लड़कियों के खून में नहाना! वह इस पाप के ओढ़ने की हिमाकत कैसे कर सकता है! इस रोग से अच्छा होकर वह उस रोग में फँस जाएगा! उसकी सजा की मुआफी पाक परवरदिगार के वहाँ भी नहीं है।... उसके कानों में फकीर की आवाज फिर गूँजती—सोच लो! खूब सोच लो, एक ढेले में दो शिकार।... और वह सोचता—और अगर वह अच्छा न हुआ तो?...

जब कभी किले की ऊँची-ऊँची बुर्जियों पर वह जाता, तो वह सोचता—आत्महत्या कर ले। ऐसी जिन्दगी से मौत ही अच्छी। जिस जिन्दगी में जिन्दगी का लुत्फ नहीं, वह किस काम की? सभी से छुटकारा मिल जायगा।

एक दिन—

सुलतान ऊँची-ऊँची बुर्जियों की सैर कर रहा था। आज उसका चित्त बहुत उद्विग्न था। एक बार वह आत्म-हत्या के विचार से बुर्ज की निचाई देखने लगा। तभी शहनाई की मधुर ध्वनि ने उसे आकर्षित किया। वह उस आनन्दमय स्वर को थोड़ी देर और सुनने के लोभ से रुक गया। शहनाई की ध्वनि वातावरण में मादकता की सृष्टि कर रही थी। उसे याद आया कि ऐसी ही, बल्कि इससे भी बढ़िया शहनाइयाँ उसके निकाहों के अवसर पर बजती थीं। कितना जश्न होता था? रंग-बिरंगी आतिशबाजी से रात्रि चमक उठती थी। गोलों और बानों के छूटने से समस्त वातावरण कोलाहलमय हो उठता था, और फिर एक बेगम उसके पास होती थी। नई-नई और फिर... । उसका हृदय अकस्मात् गुलनार बेगम के प्रति घृणा से भर उठा। जब वह उसके पास गया (यह आश्चर्य ही था कि वह बेगम के पास गया। वैसे हरम में घुसते ही उसे बेगमें घेर लेती थीं) तब वह उससे कितनी बेरुखी से पेश आई! उसका सौंदर्य दिए की रोशनी में चमक रहा था। उसे बड़ा क्रोध आया—यह बेगम, इतनी शोख हो सकती है! वह सुलतान है, चाहे जो कुछ कर सकता है। जब उसने क्रोधपूर्वक उसे अपने बाहु-पाश में भरकर चूम लिया, तो वह रो पड़ी, 'बदजात!' अपने को आलिंगन से छुड़ाती हुई बोली—

"मुझ पर रहम करो, या अल्लाह ! तुम ऐसे हो गए हो तो दूसरे को ऐसा क्यों करते हो ?" और, वह पलंग पर गिरकर उसकी ओर उपेक्षापूर्वक देखकर सिसकने लगी थी। सुलतान ने उसकी बाहें पकड़कर उसे उठाया। उस समय उत्तेजना से उसके अंग-प्रत्यंग में सरूर भरा हुआ था। तभी बेगम चीख पड़ी—"कोढ़ी सुलतान !" सुलतान ने उसे तुरन्त छोड़ दिया। उसके गाल पर जोर का एक तमाचा मारकर वह हरम से चल दिया। ओह !... उस ने निराशा भरी एक लम्बी साँस छोड़ी।—कितना अभागा है वह...वह यदि चाहता तो बेगम उससे ऐसा व्यवहार कर सकती थीं ? मगर वह किसी का दिल नहीं दुखाना चाहता था। जब अल्लाह उसका ही दिल दुखा रहा है तो वह किसी और का दिल दुखाकर दोहरा पाप अपने सिर क्यों मोल ले ? वह बदकिस्मत है ही...तभी उसके कानों में फकीर के शब्द पुनः गूँजे—"सोच लो ! काफिरों का खात्मा और बीमारी से नजात..." उसका समस्त शरीर एक आवेग से भर उठा। उसने एक सैनिक को बुलाकर पूछा—"यह शोर-गुल कैसा है ?"

"हिन्दुओं की शादियों के दिन आ गए हैं। इसीलिए ये शहनाइयाँ बज रही हैं ? वह बोला !

उसे ऐसा मालूम पड़ा—वह सैनिक, नहीं नहीं, फकीर है जो उससे कह रहा है—"सोच लो। काफिरों का खात्मा और बीमारी से नजात। एक ढेले से दो शिकार।"

उसके हृदय में अकस्मात् पैशाचिकता की ज्वाला भड़क उठी। वह कुटिलता भरी मुसकान से मुसकुरा उठा। बोला—"हमीर खाँ कहाँ है ? बुलाओ। उससे कह दो दीवानखाने में हाजिर हो।"

सैनिक चला गया। सुलतान सीढ़ियों से उतरकर दीवानखाने में आ बैठा। उसके दिमाग में अनेक तर्क-वितर्क उठ रहे थे। सामने ताख पर रक्खी हुई कुप्पीनुमा डिब्बी पर जब एकाएक उसकी दृष्टि पड़ी, तो उसे देखकर वह मुसकुरा उठा। फिर अपनी मूँछे ऐंठता हुआ, दाढ़ी सहलाता हुआ, आईने के सामने जा खड़ा हुआ।

हमीर खाँ ने कोनिश की; सुलतान ने उससे जो कुछ कहा, उससे हमीर खाँ की आँखें आश्चर्य से खुली ही रह गईं।

और फिर थोड़ी देर बाद वह कुछ सैनिकों को लेकर नगर की ओर चला गया, कारण कोई भी न जान सका। सुलतान पुनः बुर्जियों पर उद्विग्नता से टहलने लगा।

थोड़ी देर बाद हमीर खाँ ने प्रवेश किया। उसके साथ दो बंदी थे। एक युवक और एक युवती। सुलतान उन्हें गौर से देखता रहा—वे दोनों ब्याह की वेश-भूषा में चकित तथा डरे हुए खड़े थे। सभी शृंगार यथाविधि यथास्थान पर सजे थे। आभूषणों की चमक बता रही थी कि वे वर-वधू सीधे विवाह-मंडप से पकड़ लाए गए थे। कोई भी सोच नहीं पा रहा था कि वे क्यों पकड़े गए हैं।

उसने कहा—"इन्हें अलग-अलग कमरों में बन्द कर दो।"

हमीर खाँ भी चकित हो गया। मुँहलगे होने के कारण वह बोला—"हुजूर ! वह फूल-सी अल्हड़ छोकरी जेल में रक्खी जाय ? इसे तो हरम में रखना चाहिए।"

"चुप रहो।" सुलतान ने डाँट दिया।

और फिर उस दिन से हमीर खाँ का दैनिक कृत्य हो गया—नव-दंपतियों को बंदी बनाकर लाना।

समस्त राज्य में हलचल मच गई। जहाँ मंगल-गीत के स्वर मुखरित होते वहीं मौत की छाया तड़प जाती। कोई भी यह जान न पाता कि सुलतान को क्या हो गया है। किस तरह उस पर पैशाचिकता का भूत सवार हो गया ? किन्तु वे उसका विरोध करें तो कैसे ?

× × ×

आधी रात बीत गई थी। किले पर पहरेदारों की आवाजें गूँज जातीं और रात्रि की निस्तब्धता को भेदने का असफल प्रयत्न करती थीं। प्राचीर-प्रकोष्ठ के अन्तराल में जलते हुए दीपक की झिलमिलाती ज्योति को रतन तेज करने जा ही रहा था कि उसके कानों में घोड़ों की टापों की आवाज सुनाई पड़ी, जो क्रमशः तीव्र होती जा रही थी। वह बुर्ज पर तुरंत चढ़ गया। उसने अनुमान लगाया कि जो घोड़े भागे चले आ रहे हैं वे कुछ ही देर में दुर्ग-द्वार पर आ पहुचेंगे। उसने उचटी हुई दृष्टि चारों ओर डाली। समस्त सैनिक निद्रा-मग्न थे। युद्ध की आशंका न होने से कोई सतर्कता नहीं थी। वह उनकी बाट जोहता खड़ा रहा। दुर्ग-द्वार के पास आकर

घोड़ों की टापों की आवाजें रुक-सी गईं, क्योंकि भीतर घुसने की शीघ्रता में सिर्फ उनके पैर चंचल हो रहे थे। उसने ऊपर से निस्तब्धता की छाती फाड़ते हुए पुकारा—"कौन है?"

"हमीर खाँ।" नीचे से आवाज आई।

"परवल।" नियमानुसार उसने संकेत किया।

"सुलतान।"

"आफरीं।" वह नीचे उतरा। खटपट सुनकर साथी जग गए थे। पूछा—"कौन है?"

"हमीर खाँ।"

"शिकार लाए होंगे।"

"हूँ।" वह हँसकर चुप हो गया।

द्वार खुला। घोड़े अन्दर आ गए। उसने मशाल के प्रकाश में देखा—घोड़ों की पीठों पर युवक-युवतियाँ बँधी थीं। बंदियों के पीछे भी अश्वारोही थे। सभी के चेहरों पर धूल जमी हुई थी। घोड़ों के मुँहों से फेन निकल रहा था जिससे स्पष्ट हो रहा था कि उन्होंने लम्बी यात्रा की है।

द्वार बंद हो गया। तभी एक सैनिक ने आखिरी घुड़सवार से धीरे से पूछा—"अब कितने हुए, मोहन?"

"आज पूरे हो गए।" वह फुसफुसाया।

"हूँ।" पूछने वाला सैनिक चुप हो गया। कुछ देर बाद वह रतन से बोला—"दादा! हमारा सुलतान कितना बेवकूफ है।"

रतन ने कोई उत्तर नहीं दिया।

वह कहता गया—"हमीर खाँ आज जिन्हें लाया है, तुमने उन्हें देखा? कितने सुन्दर हैं! चाँद के टुकड़े हैं, चाँद के टुकड़े! कितना बड़ा मूर्ख है सुलतान! इन निरपराधों को मारकर क्या वह अमर हो जायगा?"

रतन ने कोई उत्तर नहीं दिया। एक दीर्घ निश्वास खींचकर वह उधर अंधकार में देखने लगा जहाँ पर घोड़े दुर्ग की चढ़ाई पर जा रहे थे। पथरीली चढ़ाई पर उनकी नालें खड़खड़ा रही थीं। वह पुनः पहरा देने लगा, और उसके जूतों की चर्र-मर्र गूँजने लगी।

दीर्घ निश्वास खींचकर वह बुदबुदाया—"नौ सौ! नौ सौ! यानी अठारह सौ, ये अभागे जिनके खून में सुलतान नहायेगा! छोटे से ताप को दूर करने के लिए इतना भारी पाप......"उसकी आँखें मशाल के प्रकाश में कुछ खोजने लगीं।

× × ×

"तुम विवाह को कहती हो माँ!" वह झुँझला पड़ा—"देखती नहीं हो, सारे मालवे में जहाँ ब्याह की शहनाइयाँ बजती हैं वहाँ मृत्यु की दुंदुभियाँ भी बजने लगती हैं। यह जानते हुए भी कि सुलतान नौ सौ नव विवाहित दम्पतियों के रक्त में नहाने वाला है, तुम इधर रोज ब्याह की चर्चा छेड़ देती हो।"

माँ चुप हो गई। उस बूढ़ी की एक ही कामना थी। वह चाहती थी कि बुढ़ापे में पोते का मुँह देख ले। उसकी जिन्दगी का क्या ठिकाना, नदी किनारे का पेड़। और इसी लिए वह रह-रहकर रतन से ब्याह की चर्चा छेड़ देती थी। माँ ने लम्बी साँस लेकर कहा—"बेटा! ऐसे सुलतान का नाश हो। कितना नीच है वह?"

रतन ने कोई उत्तर नहीं दिया। माँ ने भोजन परोस दिया। वह खाने लगा। खाते-खाते वह सोचने लगा—"क्या मैं मनुष्य नहीं हूँ? क्या मेरी इच्छाएँ नहीं हैं?" उसके मानस पटल पर कुछ मधुर चित्र घूमने लगे। और याद आई वह अल्हड़, यौवन में तीव्र गति से प्रवेश करती हुई छोकरी जिसके मद भरे नयनों को देखने को वह तड़प-तड़प कर रह जाता था। उसकी माँ उसे देख आई है। वह भी तो एक बार छिपकर उसे देख आया था। किन्तु यह सुलतान!... उसका हृदय घृणा से भर उठा। खाते-खाते उसने पूछा—"क्यों माँ, रजपूती धर्म क्या है? यही तो कि यदि दूसरे के प्राण संकट में पड़े हों तो उनकी रक्षा करे?"

माँ आश्चर्य में पड़ गई। आज रतन कैसी बातें कर रहा है! किन्तु उसने सहज भाव से कहा—"बेटा! असहायों की प्राण-रक्षा करना तो मनुष्य-मात्र का धर्म है। उनकी रक्षा के लिए प्राण गँवाना रजपूती धर्म है।"

"हूँ"! करके वह मुसकुराया। उसकी आँखें एक दिव्य ज्योति से आलोकित हो उठीं।

भोजन कर चुकने के बाद उसने अपनी तलवार म्यान से निकालकर देखी। उसे हाथ से साफ करते हुए उसे

चूमा, और फिर म्यान में रख ली। बोला—"माँ! मेरा काम बहुत बढ़ गया है। कल किस समय लौटूं ठीक नहीं। एक बहुत आवश्यक काम करना है।" उसने माँ के चरण छुए।

माँ के मुँह से आश्चर्य सहित आशीर्वाद के शब्द निकल गए—"बेटा, चिरायु हो।"

× × ×

दुर्ग के घण्टे ने ग्यारह बजाये। चारों तरफ सन्नाटा था। झिल्ली का व्यापक स्वर सर्वत्र गूँज रहा था। नगर के पहरेदारों की आवाजें सुन पड़ती थीं। दुर्ग पर लोग सो रहे थे। अचानक रतन हड़बड़ाकर उठ बैठा। उसे ठीक तरह नींद नहीं आई थी। पहरे पर के सिपाही ने कहा—"दादा, अभी से जाग गए? अभी तो ग्यारह बजे हैं। अभी एक घंटा और सो लो।"

"जो सोता है, वह खोता है।" उसने आँखें मलीं। एक जोर की अँगड़ाई लेकर उठ बैठा। हँसकर बोला—"लाओ कमरबंद मुझे दे दो और तुम सो जाओ। मुझे नींद नहीं आ रही है।"

उसने कोई प्रतिवाद नहीं किया। कमरबंद देकर वहीं लम्बा हो गया।

रतन के जूतों की चर्र-मर्र के साथ झिल्ली-रव और सोए हुए सैनिकों के घर्राटे सुर मिला रहे थे!

एक घंटे बाद खासी हलचल हुई क्योंकि पहरे बदले जा रहे थे, और फिर थोड़ी देर बाद वही सन्नाटा। रतन ने दीपक के प्रकाश में देखा—सभी साथी स्वप्नलोक में विचरण कर रहे हैं।

जूते वहीं उतारकर वह नीचे उतरा।

...थोड़ी सी खटपट हुई, और अब वह उस आँगन में खड़ा था जिसके विशाल कक्ष में अठारह सौ प्राण अपने भाग्य पर आँसू बहाते हुए पड़े हुए थे। उसने रुककर थोड़ी आहट ली, और जब उसे विश्वास हो गया कि सब ठीक है तब वह आगे बढ़ा। हाथ का दीपक इस अनहोनी घटना पर मुसकुराहट से झिलमिला रहा था। और दीप-ज्योति पर उनकी आँखें ठहर रही थीं जो जीवन से निराश हो चुके थे, जिनके आँसू गालों पर बह-बहकर सूख गए थे। हाथों-पाँवों में लगी मेंहदी पीली पड़ चुकी थी। उनकी समस्त आशामयी मधु-वीथिका में आग लग चुकी थी। मादक जीवन का मोह उन्हें मृत्यु के बंधन में बाँध चुका था। रतन के मुख पर अकस्मात अपूर्व उल्लास छा गया। उसने सभी की बेड़ियाँ शीघ्रतापूर्वक खोल दीं, वे हतप्रभ होकर कुछ कहें कि रतन ने चुप करा दिया। बोला—"चुपचाप मेरे पीछे आओ।" वे सब उसके पीछे यंत्रवत् निःशब्द चल पड़े।

× × ×

चार घंटे बाद पहरा बदला। हलचल हुई। कैदियों की कोठरी के पास से तभी एक पहरेदार निकला। उसने झरोखे से झाँककर अंधकार में उन अभागों को देखना चाहा जिनकी जीवन-यात्रा सबेरा होते ही समाप्त होने-वाली थी। अंधकार में उसे कुछ दिखाई नहीं पड़ा। तालों को देखा, सब ठीक थे। वह कुछ रुक गया। उसने ध्यान से देखा—फिर भी उसे कुछ नहीं दीख पड़ा। न साँसों की सरसराहट और न सिसकने की आवाजें ही उसे सुनाई पड़ीं। अपूर्व निस्तब्धता छाई हुई थी। उसे संदेह हुआ। वह जल्दी मशाल उठा लाया। झरोखों से प्रकाश में देखा—उस कोठरी में कोई नहीं था। उसने चौंककर अन्य पहरेदारों से कहा और क्षणभर में ही तमाम मशालें इकट्ठी हो गई। लोगों ने आश्चर्य से देखा—ताले मजबूती से बंद थे, मगर कोई भी बंदी अन्दर नहीं था!

उसी समय एक ने सूचना दी—रतन पहरे पर नहीं है। उसके स्थान पर उसके जूते रक्खे हैं।

खतरे का नगाड़ा बज उठा। दुर्ग में एकाएक व्यापक हलचल मच गई। सुलतान ने पूछा—"क्या बात है?

"जहाँपनाह! सब कैदी भाग गए।"

वह मुंह फाड़े आश्चर्य चकित-सा बैठा रहा।

तभी गुप्त मार्ग पर शोर हुआ। मशाल के प्रकाश में रतन की तलवार चमक रही थी। उसके पकड़ने के लिए कोई आगे नहीं बढ़ रहा था। उसके ओठों पर मुसकान थी और आँखों में स्वर्गिक ज्योति!

हमीर खाँ ने कड़ककर कहा—"पकड़ो इस गद्दार को। नमकहराम!"

तमाम सैनिक उस पर टूट पड़े।...

प्रभात के आलोक में सुलतान ने देखा—सैनिकों की लोथों के ढेर लगे हैं। उनमें हमीर खाँ भी पड़ा है, और सबके ऊपर पड़ा है रतन का धड़, जिसके हाथ ने तलवार अब भी मजबूती से जकड़ रक्खी थी और उसका सिर हमीर खाँ की छाती पर गर्व से आलोकित, मुसकुराता हुआ, शांति की रेखा से अंकित, चिर-निद्रा में आँखें बंद किए पड़ा है!

सुलतान की आँखें भर आईं। उसने सिर को उठाकर उसके धड़ से लगाकर चूमा, फिर गोद में रखकर पागल की तरह रो पड़ा।

और इस बलिदान ने सदा के लिए सुलतान के ज्ञान-चक्षु खोल दिए। रतन ने अपनी बलि देकर नौ सौ दम्पतियों को ही जीवन दान नहीं दिया, उसने सुलतान को भी महापाप से बचा लिया!

१९५५

❀ ❀ ❀

ग्वालियर में बबरशेर

कर्नल राजा पंचमसिंह

ग्वालियर के स्वर्गीय शासक श्रीमंत माधव महाराज बड़े अच्छे शिकारी थे। राज्य में शेर (बाघ) तो बहुतायत से मिलते थे, पर सिंह (बबरशेर) नहीं थे। जब उन्होंने शासन सूत्र सँभाला तब उन्हें बाहर से शेरबबर लाकर राज्य के जंगलों में छोड़कर उनकी बढ़वार (वृद्धि) करने की धुन सवार हुई।

एक बार शिकार से लौटकर उन्होंने अपनी मित्र-मंडली में इस विचार को प्रकट किया। उस समय भारत में बबरशेर का प्रायः अभाव था। यह निश्चय हुआ कि लार्ड कर्जन के आगमन के समय उनसे इस संबंध में चर्चा की जाय। सन् १९०४ ई० के आरंभ में लार्ड कर्जन के आगमन के उपलक्ष में शिकार का आयोजन किया गया जिसमें बीकानेर के महाराजा गंगासिंह जी भी सम्मिलित हुए। अति उत्तम शिकार हुआ। भोजन के समय महाराजा माधव राव सिंधिया ने बबरशेरों के ब्रीडिंग का प्रश्न छेड़ दिया। लार्ड कर्जन को यह प्रस्ताव पसंद आया और उन्होंने इसमें सहयोग देने का वचन दिया। माधव महाराज ने अपने महल के तपोवन नामक भाग में ५०,००० रु० की लागत से बबरशेरों के लिए कटहरा आदि बनाने की मंजूरी दी। महाराज ने अपने प्राइवेट विभागों में शिकारखाने के अतिरिक्त एक नवीन विभाग, बबरशेरों को लाकर बढ़ाने के हेतु मिस्टर डी० एम० जाल की देख-रेख में खोल दिया और इस कार्य के लिए १,५०,००० रु० वार्षिक की रकम स्वीकृत की।

कर्नल डा० क्लाफ्ट की देख-रेख में, जो शिकार-विभाग के उच्चतम अधिकारी थे, मिस्टर जाल ने अपना कार्य सन् १९०५ से आरम्भ किया और अफ्रीका में आदमी भेजकर बबरशेर लाने का कार्यक्रम बनाया गया। किन्तु इस बीच प्रिंस आफ वेल्स के आगमन के कारण वह स्थगित करना पड़ा।

उस समय मिस्टर आंगेर नामक अंगरेज, जो अच्छे निशानेबाज थे, महाराजा के शिकारखाने के अधिकारी थे। वे स्वयं इस कार्य के लिए अफ्रीका जाना चाहते थे, किन्तु दूरदर्शी महाराजा साहब ने दो अंगरेजों को एक साथ इस कार्य के लिए नियुक्त करना उचित नहीं समझा। अंत में सन् १९०६ में मिलिट्री के दो दफेदार, पहिले तथा दूसरे ग्वालियर लान्सर्स के अनुभवी शिकारी श्री कासिम अली तथा अजमत खाँ को लेकर श्री जाल कैरो (मिस्र) पहुँचे। वे अपने साथ मिस्र के बड़े लाट जनरल गार्डन के नाम वायसराय का पत्र ले गये थे। जनरल गार्डन ने इनकी बड़ी खातिर की। महाराजा सिंधिया के नाते तथा भारत के वायसराय के पत्र के कारण ऐबीसीनिया के सम्राट् तक ने इनके कार्य में सहायता दी। संयोग से कैरो में जाल साहब की भेंट एक पूर्व परिचित अंगरेज सैनिक

अफसर से हो गई जिसका नाम कैप्टेन स्मिथ था और वह सेकिन्ड हार्स बैटरी, मऊ में रह गया था। कैप्टेन स्मिथ अनुभवी और चतुर थे और उनसे इस कार्य में बड़ी सहायता मिली। तीसरे ही दिन ऐबीसीनियन आर्मी के दस आदमियों के साथ कर्नल गार्डन (जो जनरल गार्डन के पुत्र थे), कैप्टेन स्मिथ, डी० एम० जाल तथा दोनों हवलदार बबरशेरों के रहने के क्षेत्र के लिए रवाना हो गए। एक काफिला इनका सामान ढोकर समय पर सामान पहुँचाने के लिए नियुक्त किया गया। तीसरे ही दिन इनको बड़ी सफलता मिली और पहिले ही हमले में इन लोगों ने बबरशेरनी को मारकर चार बच्चों में से तीन बच्चे अपने काबू में कर लिए। यहाँ यह लिखना असंगत न होगा कि बबरशेर का रहन-सहन देशी शेरों से भिन्न है। जहाँ जेबरा अधिक पाया जाता है वहीं, जंगल के आस-पास, बबरशेर भी पाये जाते हैं क्योंकि वे जेबरा खाना अधिक पसंद करते हैं। दूसरे हमले में पाँचवें दिन इन्होंने दो बबरशेर के बच्चे और पकड़े। अब तो ग्वालियर के दफेदार भी बच्चों पर कम्बल डालने में बहुत सहायक सिद्ध हुए। किन्तु ऐबीसीनियन फौज के एक सिपाही ने जो फुर्ती और दिलेरी दिखलाई उसकी बराबरी कोई और न कर सका। बच्चे पकड़ने की विधि यह थी कि एक साथ शोर करके बबरशेर और शेरनी को बच्चों से दूर ले जाया जाता था। यदि शेरनी दूर न जाती तो उसे मारना पड़ता था क्योंकि बबरशेर की मादा बहुत खतरनाक हमला करती है और पेड़ पर भी चढ़ जाया करती है। वह बड़ी कठिनाई से मार खाती है। इससे उसकी चंचलता बढ़ने के पूर्व ही नर और मादा को साथ आते देख पहिले मादा को मारना उचित है। मादा के मर जाने के बाद तो नर शेर को हटाया भी जा सकता है, परन्तु मादा को मरे हुए शेर के सामने से हटाना, बिना मारे, असंभव ही है। तो, जब उनको दूर हँकारा जाता और कोई मादा रुकने का प्रयत्न करती तो उसे मारना ही पड़ता था। उसके बाद उसके बच्चों को, जो लगभग तीन चार महीने की उम्र के होते थे, कम्बल लेकर आदमी चारों ओर से घेर लेते थे और जिसके हाथ एक बच्चा आता था वह उसे फुर्ती से काबू में करने की कोशिश करता था कि जिससे वह बच्चा गुर्रा न सके, क्योंकि बच्चों की आवाज सुनकर कोई भी मादा शेरनी, अगर पास हुई और उसने बच्चों का कातर शब्द सुना तो, दौड़ पड़ने का अवश्य साहस पर बैठती थी। इस प्रकार ये लोग दस दिन के कैम्प में दस बच्चे पकड़कर वापिस आए।

मिस्र में आकर एक बबरशेर के प्रशिक्षण कैम्प में बीस दिन बच्चों को प्रशिक्षित किया गया जिससे वे पिंजरों के अतिरिक्त सांकल (जंजीर) से बाँधकर आदमियों के साथ सफलता से चलाए जा सकें। दस में दो बच्चे तो प्रशिक्षण काल में मर गए : अतः भारत केवल आठ ही बच्चे आ सके। इस बीच जहाज में इन बबरशेर के बच्चों के भारत ले जाने का प्रबन्ध किया गया, और महाराजा साहब को तार द्वारा बम्बई पहुँचने की निश्चित तारीख भी सूचित कर दी गई। महाराजा सिंधिया अपने मित्र बीकानेर के महाराजा गंगासिंह जी के साथ उन शेरों को उतारने के लिए स्वयं बम्बई पहुँचे। यह दोनों महाराज बड़े घनिष्ट मित्र थे। दोनों ही अच्छे शासक थे और अपने राज्य की उन्नति के लिए सदैव चिन्तित तथा व्यस्त रहा करते थे। दोनों ही रियासत के दौरे के अनुक्रम में शिकार के कैम्प करते थे। रियासत बीकानेर में चिड़ियों का शिकार बहुतायत से पाया जाता है। किन्तु शेर, भालू, चीते और साँभर आदि बड़े शिकार की वहाँ न्यूनता है। अतः महाराज गंगासिंह जी वर्ष में एक दो बार महाराजा ग्वालियर के शिकार में प्रायः सम्मिलित हुआ करते थे। ग्वालियर के जंगलों में ग्वालियर के अतिरिक्त श्योपुर, शिवपुरी, विजयपुरी, पोहरी, चन्देरी, गुना, नीमच, मन्दसौर शेर मिलने के लिए प्रसिद्ध हैं।

निश्चित समय पर इन दोनों महाराजाओं ने शेरों को उतरवाया। इस बीच में एक बच्चा आपस में लड़ने के कारण घायल हो गया और मर गया। अतः सात बच्चे रह गए। बम्बई में उनका नामकरण-संस्कार किया गया। तीन नर शेरों के नाम बाँके, बन्डा और मजनू रखे गए, और मादाओं के नाम बिजली, गेंदी, रसेली तथा रामप्यारी रखे गए। प्रत्येक को सुरक्षित रूप से लाने के लिए अलग अलग रेलवे के डिब्बों का प्रबन्ध किया गया और इसलिए एक स्पेशल गाड़ी छोड़ी गई। इस स्पेशल गाड़ी के रुकने का जहाँ जहाँ प्रोग्राम था वहाँ लोगों को सूचना मिल

थी, और प्रत्येक ठहरने के स्टेशन पर बबरशेर को देखने के लिए दूर दूर की जनता की भीड़ लग जाती थी। ग्वालियर में तो दर्शकों की भीड़ स्टेशन से शेरों के रहने के स्थान तक बराबर उमड़ी पड़ती थी। इन्हें देखने को तपोवन में प्रतिदिन हजारों की संख्या में दर्शक आने लगे। इस बीच में ये बच्चे तपोवन में परवरिश पाने लगे। दूसरी साल इनमें से दो मादाओं ने क्रमश: तीन और दो बच्चे दिये। छ: छ: महीने बाद शेष मादाओं ने भी दो दो बच्चे दिये। अब छ: महीने इन्हें पिंजरों में पालकर अपने जोड़ों के साथ, अर्थात् चार बड़े और आठ छोटे बच्चों के साथ, इन्हें मोहना क्षेत्र में (जो आगरा बम्बई रोड पर शिवपुरी ग्वालियर के बीचों बीच है) पाग नदी के किनारे जंगल में छोड़ दिया गया। इस नदी को कुछ लोग छोटी पार्वती के नाम से भी पुकारते हैं।

१६०६ में इन जानवरों की देखभाल और इनकी गति-विधि की सूचना देने के लिए छः शिकारी और आठ चौकीदार नियुक्त किए गए। साथ ही यह भी आदेश दिए गए कि अगर ये शेर अपने आप शिकार न कर सकें तो इनके निकट बकरा बाँध दिया जाया करे। उनको अपने आप शिकार करने की आदत डालने के लिए बीच बीच में दो चार दिन के लिए बकरा देना बन्द भी कर दिया जाता था। ये शेर जंगल में मवेशी चराने वालों से बिलकुल नहीं डरते थे क्योंकि इनका पालन-पोषण आदमियों के बीच हुआ था। धीरे धीरे ये शेर मवेशी मारने लगे और चौपियों (चरवाही) के रोकने पर वे उन पर भी आक्रमण करने लगे। उन्होंने कतिपय व्यक्तियों को घायल भी कर दिया। शिकारियों और चौकीदारों के रोकने से कुछ दिन तक तो लोग मवेशियों का नुकसान सहते रहे, परन्तु जब उन्होंने अधिक मवेशी मारना शुरू किया तो चौपिए मिलकर उन्हें मवेशियों पर से भगाने लगे। परन्तु सन् १६१० में उन्होंने प्रथम आदमी पकड़कर जान से मारा और सब मिलकर उसे खा गये। तब गाँव के लोग बन्दूकों की आवाज करके उन्हें भगाने का उद्योग करने लगे, किन्तु मारने की आज्ञा न होने के कारण उन पर कोई भी गोली नहीं चला सकता था। सन् १६१२ में इन शेरों ने आठ दस आदमी मार कर खा लिये। तब सन् १६१२ में इनको पकड़ने की आज्ञा हुई और शिकार विभाग का स्टाफ कटहरे, गाड़ी और ठेलों के सहित भेजा गया। इस काम के लिए आंगेर साहब नियुक्त किए गए। कार्य आरम्भ हुआ और लगभग तीन महीने में एक मादा (जो नरभक्षी हो गई थी) के अतिरिक्त शेष सब बबरशेर पकड़ लिए गए। यह शेरनी एक बार कटहरे से बचकर निकल जाने से ऐसी सतर्क हो गई थी कि फिर कई बार प्रयत्न करने पर भी वह हाथ न आई। इन शेरों को पकड़ने में सफलता इस कारण से भी हुई कि बबरशेर संध्या को ही जंगल से निकलकर मैदान में आकर आवाजें लगाकर इकट्ठे होने के आदी थे। ऐसा झुंड जिस मवेशी के झुंड या जिस आदमी के पीछे पड़ जाता, उसको ईश्वर ही बचा सकता था।

उस समय पत्थर का छोटा कठेरा बनाकर तेंदुए, चीते आदि पकड़ने की प्रथा थी, और जंगल में ऐसे पिंजरे दो या तीन दिन में बनाए जा सकते थे। ऐसे पिंजरों में गेंदी नाम की बबरशेरनी दाँव में नहीं आई। शिकारी भी प्रतिदिन फिरते फिरते परेशान हो गए। उधर साहब बहादुर अपने डाक बंगले से हटना भी पसंद नहीं करते थे। कुछ शिकारियों में तो शराब पीने तथा गाँव वालों को सताने की आदत पड़ गई और फलस्वरूप शिकायतें आने लगीं और साहब डाक बंगले पर बैठे बैठे इनका निर्णय करने लगे। किन्तु इस शेरनी का उपद्रव इतना बढ़ गया कि महाराज ने उसे पकड़ने के कड़े आदेश जारी किए। अब इस गेंदी शेरनी को पकड़ने की योजना तेजी से बनाई जाने लगी। उसके रहने के स्थान के पास एक पत्थर का माला बनाया गया। एक बार इस बड़े कठेरे से भी वह बकरा उठा ले गई। उसके घुसने पर ऊपर से खटका तो गिरा किन्तु वह किसी कारण से बीच में टेढ़ा हो गया था। इससे द्वार पूरा बन्द न हो सका और वह अध खुले द्वार से निकल भागी। एक दिन डाक बंगले पर सब शिकारी तथा चौकीदारों को बुलाकर मिस्टर आंगेर ने डाँटा-फटकारा और चेतावनी भी दी। पूरे दल की बदनामी बचाने के जोश में एक मिलिट्री के रिटायर्ड सिक्ख सरदार-जी लोचनसिंह ने इस शर्त पर उस कटहरे के किवाड़ को बन्द करना स्वीकार किया कि उन्हें दो बोतल शराब और गोश्त रोटी खाने को उस माले पर पहुँचा दी जाय और वह उस शेरनी के अन्दर जाते ही किवाड़ डालकर

ऊपर से दबा देंगे, और अपनी रक्षा के लिए दूसरी तरफ खिड़की का किवाड़ देकर बैठे रहेंगे। साहब ने ये शर्तें मंजूर कर लीं। और लोचनसिंह अपने खाने को गोश्त रोटी और पीने की दो बोतल शराब लेकर तथा अपनी जान हथेली पर रखकर लकड़ी के तख्ते के बीच जा बैठे। शेष लोग उसे पहुँचाकर बकरा अन्दर बाँध कर लौट आए। सुनसान होते ही शाम हुई। सरदार जी ने अपना खाना आरम्भ किया और पीने को शराब की बोतल खोली ही थी कि उधर से शेरनी ने अपनी दहाड़ (जैसा कि शाम को बबरशेरों का नियम है) आरम्भ की। सरदार जी वहाँ शान्त होकर बैठे बैठे शेरनी की प्रतीक्षा करते रहे। शेरनी थोड़ी ही देर में उसके आसपास चक्कर लगाने लगी और आदमखोर होने के कारण उसने वहाँ आदमी की उपस्थिति समझ ली। अंधेरा होता ही जा रहा था कि शेरनी ने बकरे पर ताक लगाने के बजाय लोचनसिंह पर ताक लगा दी। उसने पैर पिंजरे पर रखे ही थे कि सरदार जी के भाग्य ने पलटा खाया, और शेरनी की बू पाकर बकरे का कौतूहल इतना बढ़ा कि वह उस पिजड़े में शान्त न रह सका और मृत्यु को निकट देख चिल्लाया। बकरा इतने जोर से चिल्लाया कि गेंदी ऊपर चढ़ना भूल पिंजड़े के अन्दर घुस गई और बकरे को जा पकड़ा। ठीक उसी समय सरदार जी, जो तैयार बैठे थे, किवाड़ गिराकर अपना काम कर गए। सरदार जी ने दो बड़े पत्थरों को, किवाड़ को और दृढ़ करने के लिए, उस पर रख दिया, और संतोष से अपना वांछित भोजन किया और एक किवाड़ का सहारा लगाये तथा उन दो बोतलों के भरोसे प्रातःकालीन सूर्य की प्रतीक्षा करने लगे। पौ फटते ही दो चार बड़े पत्थर उस पर और लगाकर, यह शुभ समाचार देने को चल पड़े। राह में चौकी पड़ती थी। वहाँ से कटहरे की सुरक्षा के लिए शिकारियों को नियुक्त कर, वे उछलते हुए डाक बंगले जा पहुँचे। मोहना से तुरन्त ही महाराजा साहब तथा रेजीडेंट साहब को तार देकर इस सफलता की सूचना दी गई।

इस अनुभव से लाभ उठाकर यह निश्चित किया गया कि इन बबरशेरों को ऐसे जंगलों में रखा जाय जो घने हों और वहाँ आबादी बहुत कम हो। मोहना में आबादी काफी थी और आगरा बम्बई सड़क पर होने के कारण वह स्थान एकान्त नहीं था। इसलिए इन शेरों के लिए श्योपुर के निकट ढोढ़र ग्राम की सीमा के पास के घने और एकान्त जंगल में एक विशाल घेरा बनाया गया। उसमें यत्र तत्र पिंजरे भी बना दिए गए। यह कार्य बैनर्जी को सौंपा गया और उन्होंने इसको सन् १९१४ ई० के अंत तक पूरा कर पाया। प्रथम महायुद्ध प्रारम्भ होने के कारण कार्य की गति कुछ मन्द पड़ गई क्योंकि महाराजा साहब अपनी सेना के एक बड़े भाग को युद्ध के हेतु तैयार करने में व्यस्त हो गए थे। १९१५ के प्रारम्भ में जाल साहब को बबरशेरों के पाँच जोड़े ढोढ़र में छोड़ने की आज्ञा मिली। इधर ग्वालियर में भी किंग जार्ज पार्क में दो जोड़े बबर-शेर के रखे गए और तपोवन को फिर से बाग में परिणत कर दिया गया। जिस समय जाल साहब लकड़ी के मजबूत बक्से में बन्द करके बबरशेरों को रेल से उतार कर ढोढर जा रहे थे उस समय गर्मी के कारण शेर मूर्छित से हो गए थे। यदि उन्हें हवा देने के लिए पिंजरों पर लगे लकड़ी के पटरे खोले जाते तो बैल डर जाते थे और गाड़ी नहीं खींचते थे। जिस जंगल में से होकर इन्हें निकलना था उसमें ऊंची घास थी जिससे उमस और गर्मी बढ़ गई थी। येन केन प्रकारेण शाम तक उन्हें सरिता तट तक पहुँचाया गया, और जैसे ही भगवान भास्कर ने अस्ताचल गमन किया और उन शेरों के ऊपर ठंडा पानी छिड़का गया वैसे ही सब शेर ताजा दम हो गए और पिंजड़ों में दहाड़ मारने लगे। उनकी दहाड़ सुनकर तथा उनकी उछल कूद देखकर गाड़ी के बैल, जो उस समय नदी में पानी पीने गये हुए थे, पगहा तुड़ाकर जंगल में नौ दो ग्यारह हो गए। इनको पकड़ने में अधिक बिलम्ब हुआ और रात को वहीं नदी के किनारे विश्राम करना पड़ा। दूसरे दिन प्रातःकाल ही शेरों को ढोढर पहुँचा कर उन्हें वहाँ बने हुए पत्थर के पिंजड़ों में सुरक्षित रूप से बन्द कर दिया गया। कुछ दिनों बाद उनके पिंजड़े खोल दिए गए और उन्हें उस बन में स्वतंत्र रूप से विचरने को छोड़ दिया गया। धीरे-धीरे इन शेरों की संख्या में वृद्धि होने लगी। सन् १९१८ में जब प्रथम महायुद्ध समाप्त हुआ और महाराजा ग्वालियर की दोनों सेना वापिस आ गई तब उस जंगल के देशी शेरों को समाप्त करने के लिए एक शिकार अभियान आयोजित किया गया। सन् १९२३ ई० में वहाँ देशी शेरों

के शिकार का दूसरा अभियान किया गया। इनमें बबर-शेर मारने की आज्ञा नहीं थी। ये दोनों अभियान देशी शेरों (बाघों) के शिकार के लिए थे जिससे उस जंगल में केवल बबरशेर रह जायें।

सन् १९२५ ई० के मार्च में महाराजा साहब विदेश गये। दुर्भाग्य से विदेश गमन के समय उनके कारबंकल फोड़ा निकला और उसने जहाज में ऐसा उग्र रूप धारण किया कि महाराजा साहब को चिकित्सा के लिए फ्रांस में ही रुक जाना पड़ा। बहुत उत्तम उपचार होने पर भी जून १९२५ ई० में ग्वालियर के भाग्य का चमचमाता सितारा पेरिस में अस्त हो गया। श्रीमंत माधव महाराज बहुत दूर-दर्शी थे। उस समय वर्तमान महाराज नाबालिग थे। उन्होंने अपने जीवन काल ही में राज्य की सुव्यवस्था के लिए उनके अधिकार प्राप्त करने तक के समय के लिए भारत सरकार से अपनी इच्छानुसार प्रबन्ध की स्वीकृति ले ली थी। उसके अनुसार सन् १९२५ ई० जुलाई से बड़ी महारानी चिनकू राजा सिंधिया की अध्यक्षता में काउन्सिल आफ रीजेन्सी बन गई और राज्य का प्रबन्ध करने लगी। उधर बबरशेर के झुंड के झुंड स्वच्छंदता से जंगलों में विचरने लगे। शाम होते ही शेर जंगल को अपनी दहाड़ों से गुंजा देते थे। जहाँ जहाँ इनकी आवाज पहुँचती थी वहाँ वहाँ से जंगली जानवर घबरा कर इधर उधर भागने लगते थे। क्षेत्र में कोई बड़ा गाँव पास नहीं था और उस क्षेत्र में रहने वाले जंगली जाति के थोड़े से लोग जिन्हें सेहरिया या आदिवासी कहते हैं, धीरे धीरे अपने मवेशियों को अपने गाँवों से दूर भेजकर उनके प्राणों की रक्षा करने लगे। शिकायत तो प्रारम्भ से ही थी किन्तु सन् १९२७ ई० में शिकायतें बहुत बढ़ गईं। उनके आदमी मारने के समाचार सैकड़ों की तादाद में आने लगे। जाड़ों में जब गाँव वाले आग जलाकर उसके चारों ओर बैठते, तो ये बबरशेर उन्हें अलाव पर से उठाकर ले जाने लगे। सन् १९२६ ई० में महाराजा साहब बारिया गुजरात से शिकार खेलने के लिए श्योपुर पधारे। उस समय जंगल में जाने को कोई तैयार नहीं होता था। इन बबरशेरों का आतंक इतना बढ़ गया था कि सरकारी अधिकारियों, शिक्षा-निरीक्षकों, रेंजरों आदि ने भी इस क्षेत्र में निरीक्षण करना छोड़ दिया था। इस क्षेत्र में सूर्यास्त से एक घंटे पूर्व से सूर्योदय से एक घंटे बाद तक आवागमन बन्द हो जाता था और लोग घर से निकलने का साहस न करते थे। उस समय बारिया महाराज को केवल दो बबरशेर मारने की आज्ञा प्राप्त हो सकी। बड़े ऊंचे स्थान पर सुरक्षित मचान बनाया गया, और उसके पास एक पाड़ा बाँध दिया गया था। उस मचान पर से महाराज बारिया रात भर उन शेरों का तमाशा देखते रहे। दो चार शेरों ने एक साथ मिलकर उस पाड़े को गिरा लिया और एक साथ संगठित होकर खाना प्रारम्भ कर दिया। उस रात उस स्थान पर २८ बबरशेर तथा शेरनियां आईं और बातों ही बातों में वे सब उस पाड़े को चट कर गये। दूसरे दिन पुनः पाड़ा बाँधा गया। और थोड़ी ही देर में उन शेरों ने उसे भी साफ कर दिया। महाराज बारिया ने अपने दो शेर वहाँ उसी समय मारे क्योंकि वहाँ हाँका असंभव था। लोगों ने परेशान होकर चोरी से शिकारियों को बुलाबुला कर गढ़े खोदकर माले बनाए और इन शेरों को मारना आरम्भ कर दिया। ये शेर कई गाँवों में तो इतने लागू हो गए थे कि रात भर गाँव के आस पास चक्कर लगाया करते थे और जहाँ कोई आदमी या मवेशी बाहर निकला कि उसे मार डाला करते थे। गाँवों में लकड़ियों की दृढ़ खिड़कियां बना बनाकर उनके भीतर से लोग इन पर गोलियाँ चलाते। इस प्रकार प्रतिदिन दो चार शेरबबर जान से मारे जाने लगे। कोई भी शिकारी भय के कारण उनका चमड़ा या नाखून इत्यादि नहीं निकाल सकता था। इस बीच इन शेरों में मजनू और बंडा नामक दो शेर आदमखोर (नर-भक्षी) हो गए थे। काउन्सिल आफ रीजेन्सी ने उन्हें मारने का आदेश दिया, किन्तु उन दोनों के बहाने लोगों ने उस भाग में ५०,६० से भी अधिक बबरशेर मार दिए। इस संहार के कारण कुछ शेर दूसरे जंगलों में चले गए, और श्योपुर के ये बबरशेर दूर दूर जा पहुंचे। एक शेर नीमच के बन में मारा गया, एक पन्ना के जंगल में मारा गया, दो पोहरी के जंगल में मारे गए, तीन पहाड़गढ़ के बन में मारे गए और एक बिचोला के जंगल में मुरैना के पास मारा गया। लोगों को इनसे इतनी हानि हुई थी और उनका इतना आतंक छा गया था कि लोग उन्हें तत्परता से मारने लगे। संध्या के समय जब तक उन्हें शिकार नहीं मिलता तब तक अधिकतर वे दहाड़ते रहते हैं। इसीलिए लोग

उन्हें सरलता से पा लिया करते थे और उनका शिकार सरलता से हो जाता था। इस प्रकार जिस श्योपुर के वन में सैकड़ों बबरशेर हो गए थे—उस वन में १९५३ के अन्त तक उनका नाम निशान शेष न रहा किन्तु उनके लिए पत्थरों के जो विशाल भवन बनाए गए थे वे आज भी खड़े हैं। उनकी उपस्थिति, पुराने किलों की तरह, उनकी स्मृति आज भी हरी कर देती है। उनकी अनुपस्थिति में उनके लिए निर्मित किलेनुमा भवनों में देशी शेरों ने अपना अधिकार कर लिया है। इस प्रकार ३०,३५ वर्ष के अल्प समय में ग्वालियर राज्य में बबरशेरों का आगमन, उत्कर्ष और पतन हुआ। यही उनका संक्षिप्त इतिहास है।

अब भारत सरकार ने भारतीय बबरशेरों की वृद्धि की ओर ध्यान दिया है। और वह टीकमगढ़ के जंगलों में उनकी वृद्धि करने की योजना बना रही है। यदि इस योजना को कार्यान्वित करना है तो टीकमगढ़ की अपेक्षा श्योपुर का जंगल अधिक उपयुक्त है जहाँ उनके किलों पर अनधिकार रूप से देशी शेरों ने अधिकार कर रखा है। वे किले पुनः उनके निवास से आबाद किये जा सकते हैं। यदि सुविधा के दृष्टिकोण से भी देखें तो टीकमगढ़ की अपेक्षा श्योपुर का वह क्षेत्र, जहाँ पर उनके विशाल भवन स्थित हैं, अधिक अच्छा है क्योंकि वहाँ आसपास कोई गाँव भी नहीं है और वहाँ घना जंगल भी है जिसमें पानी की भी सुविधा है।

भारत सरकार बबरशेरों की वृद्धि की योजना की ओर आज आकर्षित हुई है किन्तु श्रीमंत माधव महाराज ने पचास वर्ष पहिले ही उसे सोचकर अपनी दूरदर्शिता का परिचय दिया था। किन्तु उनके निधन के बाद उनके परिश्रम का परिणाम यह हुआ कि मध्य भारत में आज बबरशेरों का केवल नाम ही रह गया है।

१९५५

हाय रे, बाघ, बाघ ?

श्री मनोहरदास चतुर्वेदी आई० एफ० एस० (रिटायर्ड)

वैसे तो इस घटना को कई बरसें हो गईं, मगर आज भी इसकी याद आते ही मेरे रोंगटे खड़े हो जाते हैं। मेरे ३० वर्ष के शिकारी जीवन में यह घटना उन भीषण घटनाओं में से है जिनके घाव याद आते ही आज भी हरे हो उठते हैं। यह वह कहानी है जो कहते नहीं बनती; जिसका वर्णन करना कठिन है। मनुष्य के हृदय की कोई भी तीव्र वेदना, भाषा में व्यक्त नहीं की जा सकती; भाषा केवल उसको सीमित करती है।

सन् १९४८ में, जब मैं उत्तर प्रदेश के वन-विभाग का प्रमुख अध्यक्ष था, मैं तराई का दौरा कर रहा था और ठिकाला नामक स्थान में ठहरा था। ठिकाला रामगंगा के किनारे घोर वन मे एक रमणीक स्थान है। पत्थरों से टकराती हुई रामगंगा की स्वच्छ धार बँगले से केवल दिखाई ही नहीं देती, प्रत्युत वहाँ से वह 'सुनाई' भी पड़ती है। सायंकाल को जंगली जीव-जन्तु इस नदी में पानी पीने आते हैं। यहाँ रात भर बाघ दहाड़ते हैं और अन्य जन्तुओं का कोलाहल भी सुनाई पड़ता है। यह वह स्थान है जहाँ से मनुष्य और उसकी आधुनिक सभ्यता तथा नवीन प्रवीणता अभी कोसों दूर है।

मेरे साथ लन्दन की एक प्रसिद्ध लेखिका, श्रीमती एथिल मैनिन (Ethel Mannin) ठहरी हुई थीं। उस समय वे भारतवर्ष के वनों में भ्रमण कर अपनी प्रसिद्ध पुस्तक की सामग्री एकत्रित कर रही थीं। थोड़े दिन मेरे साथ रहने के बाद, जब एथिल जाने लगीं, तो मैं उन्हें रामनगर रेलवे-स्टेशन तक पहुँचाने गया। रामनगर, ठिकाले से, लगभग ४० मील होगा। यह मुरादाबाद से छोटी लाइन पर अन्तिम स्टेशन है।

एथिल को बिदा कर जब मैं रामनगर से जंगली रास्तों से होता हुआ ठिकाले पहुँचा तो रात के दस बज

रहे थे। मैं अपनी मोटर से अभी उतर भी न पाया था कि वहाँ के वनाधीश (शौकत हुसैन) ने एक भीषण दुर्घटना का हाल सुनाकर मेरा स्वागत किया। मैं दिन भर का थका-माँदा और भूखा-प्यासा, डेरे पर पहुँचा था। मुझे क्या मालूम था कि ऐसी अवस्था में डेरे पर पहुँचते ही ऐसी अनहोनी घटना सुनने को मिलेगी।

शौकत मियाँ ने बताया कि उनके पास, मेरे दुपहर में एथिल के साथ रामनगर जाने के बाद, बुकसार से यह समाचार आया कि वहाँ से कोई तीन मील पर चार पहाड़ी स्त्रियाँ प्रातःकाल जंगल में घास काटने गई थीं। किन्तु उनमें से केवल तीन ही लौटीं। चौथी को बाघ ने दबोच लिया। बुकसार ठिकाने से लगभग १२ मील होगा। यह भयंकर समाचार वहाँ के वन-रक्षक ने भेजा था। यह दुर्घटना कैसे हुई, बाघ ने क्यों अचानक आक्रमण किया, वह अभागी स्त्री मरी कि बची, इसका कोई विवरण न था। वन-रक्षक ने जैसा सुना, वैसा लिख दिया। उसे स्वयं ही पता नहीं था कि वास्तव में क्या हुआ।

यह भयंकर समाचार सुनकर मुझे पसीना आ गया। मेरे पास उन दिनों दो हाथी थे। दोनों के हाथीवानों को बुलाया, अपने शिकारी की भी सम्मति ली। बहुत देर तक सोच-विचार करने के बाद यह तय हुआ कि दोनों हाथी रात को कूचकर पौ फटते ही बुकसार पहुँचकर मेरी प्रतीक्षा करें।

मुझे रात भर नींद नहीं आई। रह-रहकर मुझे यह बात कोंचती कि यदि मैं रामनगर न गया होता तो उस अभागी स्त्री की सहायता के लिए दिन रहते ही पहुँच जाता। अब सिवाय हाथ मलने के मैं कर ही क्या सकता था। चार बजे के लगभग ही मैंने पलँग छोड़ दिया। चाय पी, शिकार का सामान जुटाया जिसमें बन्दूक, रायफिल, कम्बल, दवाइयाँ, चना-चबैना, पानी, टार्च इत्यादि सभी कुछ था। मोटर से मैं बुकसार कोई ६ बजे ही पहुँच गया। वहाँ मेरे दोनों हाथी, गोट के लोग, तीनों स्त्रियाँ, चौथी अभागी स्त्री का पति और वन-रक्षक मेरी बाट जोह रहे थे।

मैंने उन तीनों स्त्रियों से जो पूछ-ताछ की तो जान पड़ा कि वहाँ से कोई तीन मील पर वे सब अपने ढोरों के लिए एक विशेष प्रकार की हरी घास, जो नदी-नालों में होती है, लेने गई थीं। यह घास पहाड़ी नालों में हल्के-हल्के पानी के किनारे होती है, और बीमार ढोरों को दी जाती है। जिस नाले में वे घास काट रही थीं वह छोटा ही था, और उसमें थोड़ी-थोड़ी दूर पर घूम (चक्कर के मोड़) थे। घास कहीं-कहीं ही मिलती थी। इस कारण यदि एक स्त्री कहीं घास काटने बैठ जाती थी तो दूसरी को अगले घूम पर, तीसरी को उससे आगे और चौथी को और भी आगे जाना पड़ता था। घूम इतने पास-पास थे, और घास इतनी दूर-दूर, कि घास काटते समय बहुधा एक स्त्री दूसरी को देख नहीं सकती थी।

नाले के दोनों ओर घोर जंगल था। मगर ये स्त्रियाँ निडर होकर वहाँ बराबर घास काटने जाया करती थीं। डर की कोई बात ही नहीं थी। जो लोग बाघ के जंगलों में घूमते-फिरते हैं, उनका यह अनुभव है कि बाघ किसी से कुछ नहीं कहता। आदमी को देख, बाघ अपनी राह लेता है। मुझे सैकड़ों बार जंगलों में बाघ आते-जाते मिले, पर किसी ने चूँ तक नहीं की। सच पूछो तो बाघ आदमी की उँचाई से चौंकता और दबता है। हाँ, यह बात दूसरी है कि किसी जंगल में ऐसी बाघिन मिल जाय जो अपने बच्चों के साथ हो। तब वह आते-जाते आदमी पर झपट बैठती है, और किसी को अपने बच्चों के पास नहीं फटकने देती।

गोली खाए हुए घायल बाघ बड़े भयंकर हो जाते हैं। जंगली जानवरों का शिकार करने में असमर्थ हो जाने के कारण वे बहुधा आदमी पर आक्रमण कर बैठते हैं। और, जब एक बार उन्हें आदमी की दुर्बलता की पोल मालूम हो गई, तब तो फिर आते-जाते, भूले-भटके लोगों की ही ताक में ऐसे बाघ लगे रहते हैं। जिस जंगल में दो-चार आदमी मारे गए, उस जंगल में फिर कोई आदमी जाने का एकाएक साहस नहीं करता।

इस जंगल में, जहाँ ये स्त्रियाँ घास काटने गई थीं, कभी बाघ द्वारा आक्रमण की कोई घटना नहीं हुई थी। इसी कारण वे प्रतिदिन बेखटके उस जंगल में आती-जाती थीं। यदि कभी कोई बाघ मिल भी गया तो वह

चुपचाप अपने रास्ते चला जाता था, और ये अपनी राह।

उस दिन भी ये चारों स्त्रियाँ, और दिनों की तरह, घास काट रही थीं। दिन प्रायः ढल चुका था। जब सबसे पीछे बैठी घास काटने वाली स्त्री, अपने स्थान से उठकर अपनी तीनों साथिनों को छोड़, आगे के घूम पर गई तो उनकी आँखों से ओझल हो गई। यह कोई नई बात नहीं थी। नई बात यह थी कि थोड़ी देर के बाद उसकी पुकार सुनाई पड़ी, "हाय रे बाघ! हाय रे बाघ! बाघ, बाघ! इसके बाद न कोई आवाज आई, और न कोई खटका हुआ।

बाघ का नाम सुनते ही, उसकी तीनों सहेलियाँ सिर पर पैर रखकर भाग दीं और उन्होंने अपने डेरे पर आकर ही साँस ली। इनमें से किसी ने न तो बाघ ही देखा, न अपनी साथिन को ही। केवल उसकी पुकार से उनका यह अनुमान था कि उनकी साथिन को बाघ ने दबोच लिया। यह थी उन स्त्रियों की कहानी।

अब तक दिन चढ़ आया था। देर करना ठीक नहीं था। हम लोग हाथियों पर चढ़, बाघ से मोरचा लेने चल पड़े। एक हाथी पर वन-रक्षक के साथ उन तीनों स्त्रियों और चौथी स्त्री के पति को बिठा दिया। दूसरे हाथी पर मैं और मेरा शिकारी था। संयोगवश बुकसार में उन दिनों एक डाक्टर साहब भी ठहरे हुए थे। उनके बहुत अनुरोध करने पर मैंने उनको भी अपने साथ बिठा लिया। ऐसा मुझे कभी न करना था। बाघ के शिकार में किसी नए अज्ञात और अनुभवहीन व्यक्ति को साथ ले जाना बड़ी भारी भूल है। इस शिकार में इस भूल का परिणाम मुझे प्रत्यक्ष रूप से देखने को मिला।

मुझे यह आशा थी कि वे तीन स्त्रियाँ, जो दूसरे हाथी पर थीं, हम लोगों को उस नाले तक पहुँचाने में सहायता देंगी। पर हाथी पर सवार होने के कारण वे स्वयं रास्ता भूल गईं। उनके कहने पर जब उनको हाथी पर से उतारा तो थोड़ी ही देर में उन्होंने अपने पैरों के चिह्नों को खोजकर रास्ता ढूँढ़ लिया। वे चिह्न हाथी की उँचाई से नहीं दिखाई देते थे।

इसके बाद हम लोग कोई घंटे भर ही में बाघ-

वाले नाले पर पहुँच गए। नाले में दो-चार घूम चलने के बाद ही बाघ के पंजों के चिह्न दिखलाई पड़ गए। अचंभे की बात यह थी कि ये चिह्न बाघ के पंजों के थे न कि, जैसा हम सोचे बैठे थे, बाघिन के। बाघ और बाघिन के पंजों में बड़ा अन्तर होता है। जिस प्रकार उस अभागी स्त्री पर आक्रमण हुआ था उससे यही जान पड़ता था कि यह किसी बच्चों वाली बाघिन का काम है। इसी कारण हम लोग अपने साथ कम्बल ले गए थे कि यदि बाघिन मारी गई तो उसके बच्चे पकड़ने में सुगमता हो। नर के पंजे देख हम लोग असमंजस में पड़ गए। नर बाघ का आक्रमण तो बड़े अचरज की बात थी।

बाघ की खोज मिलने के बाद, पहली बात तो हमने यह की कि दूसरे हाथी को जिस पर स्त्रियाँ थीं, वहीं रोक दिया। अब इनको साथ ले जाना अपनी कठिनाई बढ़ाना था।

राइफिल में गोली भर, मैंने अपने महावत से कहा कि अपनी हथिनी को आगे धीरे-धीरे बढ़ाओ। हमारी हथिनी, जिसका नाम बिजली था, फूंक-फूंककर पैर रख रही थी। मेरी और लताफत की निगाहें नाले में बाघ को खोजने में लगी हुई थीं।

कोई ४-५ घूम आगे गए होंगे कि एकाएक डाक्टर साहब चिल्ला उठे, "वह रहा बाघ!" बाघ, हमारे दाहिने पर, नाले के बाएँ किनारे खड़ा हुआ चुपचाप बिजली को देख रहा था। उसके मुंह में उस स्त्री की टाँग की हड्डी थी। यदि डाक्टर साहब बोल न पड़ते तो वह खड़ा ही रहता। भला बाघ को क्या मालूम कि हाथी की पीठ पर कोई बैठा है! डाक्टर साहब की आवाज सुनते ही बाघ छूमन्तर हो गया। मैं हाथ में राइफिल लिये ही रह गया। बिजली ने किनारे पर चढ़ बाघ का पीछा भी किया, पर अब क्या होता था? बाघ निकल गया।

डाक्टर साहब से मैंने समझाकर कहा कि चुप्पी साधे बैठे रहें। उन्हें भला क्या मालूम कि बाघ के शिकार में बोलना वर्जित है? मेरे आदेश का उन पर यह प्रभाव पड़ा कि वे जब मुंह से बोलना बंद करते तो उनका गला

बोलने लगता और उन्हें खाँसी आ जाती जो बोलने से भी बुरी थी।

हम लोगों ने नाले का सारा बायाँ किनारा छान डाला। पर बाघ न मिला। हारकर हताश हो, यह तय किया कि वहाँ चला जाय जहाँ बाघ ने उस स्त्री पर आक्रमण किया था।

नाले नाले, जब हम उस स्थान पर लौटे तो देखा कि वहाँ उस स्त्री की घास काटने की दराँती पड़ी हुई है। पास ही बाघ की झपट के चिह्न थे। दो-चार मुट्ठी घास भी कटी पड़ी थी। यहाँ नाले का किनारा ढाल में था, उँचाई में नहीं। ढाल पर लाश की घसीट की खोज की। हाथी ने आगे दो-चार डग लिये तो लोहू पड़ा हुआ मिला। घसीट के सहारे जो आगे बढ़े तो उस स्त्री के कपड़ों के चिथड़े और लोहू की बूँदें भी जगह-जगह दिखलाई पड़ीं। ऐसा मालूम पड़ा कि बाघ कहीं तो लाश खींचकर ले गया था, और कहीं मुँह में पकड़कर ले गया था। हम लोग इसी प्रकार झाड़ी-झंकाड़ में होते हुए, घसीट तथा लोहू के चिह्नों के सहारे कोई २०० गज चले होंगे कि वहीं फिर आ निकले जहाँ बाघ नाले के किनारे, मुँह में हड्डी लिये, खड़ा हुआ मिल चुका था। रास्ते में, कहीं कोई बाघ का खटका नहीं हुआ। हाँ, डाक्टर साहब जरूर खाँसते रहे। उन्हें हर झाड़ी में बाघ दिखाई देता था।

अचम्भे की बात यह थी कि एक टाँग की हड्डी के अतिरिक्त, लाश का और कोई अंग कहीं नहीं दिखाई दिया। यह तो असंभव था कि बाघ ने सारी लाश खा ली हो। बाघ ने लाश कहाँ दुबकाई, हम इसी असमंजस में पड़े थे कि एकाएक नाले के दाहिने किनारे पर एक कौआ काँव-काँव करने लगा। यह मानी हुई बात है कि जंगल में कौआ मांस ही देखकर बोलता है। यह सोचकर कि संभव है उधर लाश की कोई खोज लगे, लताफत ने बिजली को नाले के दाहिने किनारे पर चढ़ाकर कौए की ओर बढ़ाया।

हाथी के दस-बीस डग बढ़ने के बाद, लोहू की बूँदें फिर मिलीं। इन बूँदों के सहारे हम लोग और आगे बढ़े। कोई सौ गज जाने के बाद लोहू के चिह्न बन्द हो गए। हाथी रोककर हम यह सोच रहे थे कि अब किधर जायँ कि लताफत ने कहा कि संभव है कि नीचे उतरने पर कोई और खोज मिल जाय।

लताफत हाथी की गर्दन से उतर ही रहा था कि मेरी आँख अकस्मात् बाघ पर जा पड़ी। वह पास की ही झाड़ी में छिपा खड़ा हम लोगों को देख रहा था। मैंने फुर्ती से लताफत के कोट का कालर पकड़कर उसे ऊपर खींच लिया। खैर हो गई, क्योंकि लताफत बाघ के मुँह में ही झाड़ी में उतर रहा था।

इस खींचा-तानी में बाघ फिर ओझल हो गया। लताफत ने जब हाथी बढ़ाया तो एक जगह बाघ पर फिर निगाह पड़ी। मगर इस बीच में डाक्टर साहब फिर खाँस दिये। बाघ ने दहाड़ लगाई, और भाग गया। दहाड़ से बिजली भी काँप गई।

हम लोगों ने यह अनुमान किया कि बाघ फिर बाएँ किनारे गया जहाँ वह पहले-पहल मिला था। हम लोग हाथी बढ़ा, नाला पार कर, वहाँ जा पहुँचे पर बाघ का कोई पता न चला। घंटों घूमते रहे।

हताश हो, हम लोगों ने सोचा कि कहीं ऐसा न हो कि बाघ नाले के दाहिने किनारे ही रह गया हो और हम लोग इधर टक्करें मार रहे हों। लाचार फिर दाहिने किनारे पहुँचे तो क्या देखते हैं कि बाघ उसी झाड़ी के बाहर खड़ा बिजली को देख रहा है जहाँ थोड़ी देर पहले लताफत हाथी से उसके मुँह में उतर रहा था। परन्तु, इस बार बाघ केवल लताफत को ही दिखाई दिया, मुझे नहीं। जंगली जीव-जंतु, यदि स्थिर रूप से जमकर खड़े रहें, तो झाड़ी में इस प्रकार घुल जाते हैं कि वे दिखाई नहीं पड़ते।

बिजली ने धीरे-धीरे डग रखकर फिर झाड़ी पकड़ ली। परन्तु जब तक हम लोग वहाँ पहुँचे, बाघ फिर लुप्त हो गया था। हम लोग झाड़ी के चारों ओर घूमते रहे। पर बाघ ऐसा दुबका बैठा था कि वह दिखाई न देता था। बिजली अपनी सूँड से बार-बार बताती थी कि बाघ इसी झाड़ी में है। मेरी साँस ऊपर की ऊपर और नीचे की नीचे थी।

हाथी को लताफत ने झाड़ी के पीछे, एक पेड़ के नीचे खड़ा कर लिया। दिन के दो बज रहे थे। हम लोग निराश होकर यही सोच रहे थे कि अब क्या करें। इतने ही में, एकाएक, बाघ झाड़ी से निकलकर सामने की पहाड़ी पर धीरे-धीरे चढ़ने लगा। मैंने राइफिल की मक्खी उसके ऊपर मिला ली, और लताफत का कंधा दबाया। लताफत ने मेरे संकेत पर बड़े जोर से 'हाँव' की, और डाक्टर साहब बड़े जोर से खाँसे। बाघ ने खड़े होकर मुड़कर देखा। इतने ही में मैंने लबलबी दबाई, और बाघ गोली खाकर गिर गया। मैंने दो गोलियाँ और लगाईं। बाघ ठण्डा हो गया। जैसा खोज से जान पड़ता था, यह नर ही निकला, मादा नहीं। यह बाघ कोई ५ वर्ष का होगा। इसकी लम्बाई ६ फुट ४ इंच थी। कहीं कोई घाव का चिह्न न था।

राइफिल से गोलियाँ चलने पर दूसरा हाथी भी तुरन्त आ पहुँचा। हम सब लोग हाथी से नीचे उतर आये और कन्धा लगवाकर एक हाथी पर बाघ लाद लिया।

मैं और मेरा शिकारी जब उस झाड़ी में गए जिस पर बार-बार बाघ घूम-घूमकर पहुँचता था, तो देखा कि बाघ ने उस स्त्री की लाश वहीं दुबका रक्खी थी। नीचे का सारा धड़ खा लिया था। केवल ऊपर का धड़ बचा था। यह बची-खुची लाश हम लोगों ने उस स्त्री की क्रिया-कर्म करने के लिए, उठाकर मरे बाघ के ऊपर रख ली। उस स्त्री के आभूषण अभी उसके गले व हाथों में थे। मैंने उसके पति से उसकी एक अँगूठी इस भीषण घटना के स्मृति-चिह्न के रूप में माँग ली।

लौटने से पहले हम लोग एक बार फिर वहाँ गए जहाँ बाघ ने उस स्त्री पर आक्रमण किया था। पंजों की खोज के अध्ययन से जान पड़ा कि बाघ जंगल की पगडंडी से धीरे-धीरे आ रहा था। जब वह नाले की ढाल पर पहुँचा तो उसने इस स्त्री को नाले में बैठे देखा। इसकी पीठ बाघ की ओर थी। घास काटने में इसका सारा शरीर हिल रहा था। हिलती हुई, बैठी स्त्री को जंगली जीव-जन्तु समझकर यह बाघ उस पर ऐसे कूद पड़ा जैसे पालतू बिल्ली चलती गेंद को जीवित समझ झपट पड़ती है। मुझे दृढ़ विश्वास है कि बाघ ने उसको मनुष्य समझकर नहीं मारा। यदि वह खड़ी होती तो बाघ उससे कुछ न कहता। हाँ, यह बात तो मानी हुई है कि यदि यह बाघ मारा न जाता तो सदा के लिए नर-भक्षी हो जाता। जहाँ एक बार मनुष्य का मांस बाघ के मुँह से लगा, तो मदिरा की तरह फिर नहीं छूटता।

लौटते समय बुकसार पहुँचने में कोई दो घंटे लगे। इस बीच में डाक्टर साहब को एक बार भी खाँसी नहीं आई।

१९५५

कोदों की रोटी

श्री यमुनादत्त वैष्णव "अशोक"

नैपाल के दुर्गम पहाड़ी प्रदेश में हमारी वह दूसरी रात थी। खाना खा चुकने पर जब मैं अपने साथी अमेरिकन कर्नल के पास आया तो वह उस गाँव के उस उजड़े खँडहर के आँगन में, जिसमें हमने डेरा जमाया था, कैम्प-कॉट पर लेटा पाइप सुलगा रहा था। हमारी सफरी लालटैन के मन्द प्रकाश को रात के निबिड़ अन्धकार ने मानो दबोच लिया था।

मैंने पूछा—"कर्नल, आज का भोजन कैसा रहा ?"

कर्नल ने अकारण ही अन्धकार में विलीन होती मेरी छाया की ओर देखकर कहा—"बहुत बढ़िया, बिलकुल सिपाही के माफिक।"

"सिपाही के माफिक" ये तीन उर्दू शब्द कर्नल ने न जाने कब सीख लिए थे। वह प्रत्येक साहसिक कार्य के लिए इन्हीं तीन शब्दों का उपयोग करता था। मैंने पूछा—

"तुम्हें वह रोटी पसन्द आई थी कर्नल ? वही इन पहाड़ी लोगों का 'स्टेपल फूड' (मुख्य खाद्य) है।"

कर्नल ने पाइप को अँगूठे पर ठोंक कर किंचित् विस्मय से मेरी ओर देखा कि कहीं मैं उसका उपहास तो नहीं कर रहा हूँ।

उसे उस भाँति अपनी ओर घूरते देख मैंने समझ लिया कि कर्नल को उसकी गलती से अवगत कराने का यह अच्छा अवसर है। मैंने कहा—"कर्नल, यदि तुम मेरे कहे अनुसार कुछ खाद्य पदार्थ, डिब्बों में भरे फल आदि साथ ले आए होते तो इन जंगलों में तुमको इतना कष्ट न होता।"

कर्नल ने कहा—"मुझे उस बात का किंचित् भी पश्चात्ताप नहीं। इस यात्रा में बिलकुल सिपाही के माफिक जीवन यापन करने का जो अवसर मिला उससे मुझे कम आनन्द नहीं आया। मैं तो यह याद कर रहा हूँ कि उस बुढ़िया ने आज मुझे भोजन में कोई रोटी दी थी कि नहीं।"

"दी क्यों नहीं ?" मैंने कहा—"रोटी तो मैंने विशेष रूप से कहकर भिजवाई थी। यह बिचारी डर रही थी कि तुम उस मोटी रोटी को चखोगे भी कि नहीं। मैंने ही उसे रोटी ले जाने को विवश किया था, बस एक रोटी थी।"

"तब रोटी कहाँ गई ?" कर्नल ने कहा—"मुझे तो थोड़ा-सा चावल और सब्जी ही खाने को मिली। मुझे याद है कि मेरे खाने में रोटी थी ही नहीं।"

मुझे कुछ सन्देह हुआ। पहले तो सोचा कि कर्नल मेरा ही उपहास न कर रहा हो, किन्तु उसकी मुद्रा पर झलकती परेशानी को देखकर मुझे भास हुआ कि इसमें अवश्य कुछ भेद है।

मैंने पूछा—"कर्नल, तुमने खाना खाकर पत्ते कहाँ गिराए ? जरा मैं देखूँ तो।"

कर्नल ने कहा—"आज भोजन पत्तल में नहीं, प्लेट में रखकर लाया गया था।" यह और भी आश्चर्यजनक बात थी। द्विजों के उस गाँव में कर्नल को कोई अपने बर्तन छूने भी न देता था। उसके खाए जूठे बर्तन को उठाने-वाला तो वहाँ तत्काल जातिच्युत हो जाता।

मैंने पूछा—"उस प्लेट को उठाने कौन आया था ?"

कर्नल ने कम्बल की ओर संकेत करके कहा—"वह रहा प्लेट।"

यह घटना दिसम्बर १९३४ की है जब मैं अपने स्कूल के अध्यापनकार्य से मुक्ति पाकर, रिक्रूटिंग अफसर बनकर, अवैतनिक कैप्टन का पद पा गया था। मुझे इस बूढ़े कर्नल साइमन के साथ, जो मेरी ही भाँति युद्ध से पूर्व एक साधारण नागरिक था और न्यूयार्क के नगर में अपना छोटा मोटा होटल चलाता था, नैपाल के डोटी नामक इलाके में गोरखों की भर्ती करने जाना पड़ा था। डोटी मध्य हिमालय की गर्भ-शृंखला में बसा दुर्गम इलाका कुमाऊँ की पहाड़ियों के उपरान्त आता है। पहाड़ी शहरों में ग्रीष्मकाल में जो डोटचाल कुली दीख पड़ते हैं वे इसी क्षेत्र के वासी हैं। ये लोग तीन-तीन चार-चार मन बोझ आसानी से उठा लेते हैं। शारीरिक बल और दुर्द्धर्ष कार्य के लिए ये लोग इतने प्रसिद्ध हैं कि कुमाऊँ में "डोटचाल" शब्द दैत्य (या जाइंट) का पर्याय समझा जाता है।

युद्ध में लम्बे मार्च के लिए ऐसे भारी बोझ ढोने के अभ्यस्त सैनिक बड़े महत्त्व के होते हैं। इसी हेतु पर्वतों के अन्तराल में जाकर इन विशेष प्रकार के रंगरूटों की भर्ती करने का भार मुझे और इस कर्नल साइमन को सौंपा गया था। रंगरूटों की भर्ती के कुमाऊँ के बागेश्वर, कर्णप्रयाग, कपकोट और जोशीमठ जैसे स्थान ही बड़े दुर्गम समझे जाते हैं, किन्तु डोटी तो उन सबसे दुर्गम है। वहाँ जाने के लिए रस्सी के झूले पर शारदा नदी पार करनी पड़ती है। उस पार नैपाल राज्य है। वहाँ घोड़े, खच्चरों के चलने योग्य सड़कें भी नहीं हैं। छोटी बड़ी अनेक सीढ़ियों को पार करके किसी पहाड़ की चोटी पर पहुँचा जाता है। वैसी ही सीढ़ियाँ यत्र तत्र सभी सड़कों में हैं। इन सड़कों के निर्माताओं की कल्पना में यह बात कभी नहीं आई कि कभी पहिएवाली गाड़ी भी इस देश में आ सकती है।

मैंने चलने से पूर्व कर्नल से खाने-पीने की पूरी सामग्री साथ ले चलने को कहा था। चार डोटचाल कुली भी इसी हेतु मैंने नियुक्त कर लिए थे। लेकिन कर्नल ने जिद की और कहा कि हमें यह यात्रा अपने मनोरंजन का साधन न समझना चाहिए, नैपाल में रंगरूट भर्ती करने

के लिए हमें पर्याप्त नकद रुपया साथ ले चलना होगा। कुलियों का उपयोग इसी हेतु किया जायगा। वहाँ कागजी नोटों का प्रचलन न था और अँगरेजी भारत का रुपया, जो वहाँ अब भी "कम्पनी" कहलाता था, हमें तीन बड़े बोरों में भरकर ले जाना पड़ा। कुल पन्द्रह हजार रुपया था। मार्ग में रुपए की रक्षा के लिए दो बन्दूकधारी सन्तरी और सामान ढोने के लिए एक और डोटचाल, सब मिलाकर हम छः आदमी चले। मैं कुछ बिस्कुट के डिब्बे, कर्नल के लिए उसकी प्रिय सूखी मछलियाँ तथा कुछ सूखे मेवे और कुली की पीठ पर ले जाना चाहता था, किन्तु कर्नल ने मेरी यह बात भी बिलकुल न मानी और कहा—"जो खाना मार्ग में मिलेगा वही हम भी खायेंगे, बिलकुल सिपाही के माफिक।" यही नहीं, कर्नल ने अपनी बीस पाउंड की रायफल, कारतूस और दवा आदि का झोला स्वयं ले चलने का आग्रह किया। उसके कथनानुसार इस सामान को किसी दूसरे को ढोने देना असैनिक कार्य था।

जब तक हम भारत की सीमा के अन्दर पहाड़ी मार्गों पर चलते रहे, खाने-पीने में तनिक भी असुविधा नहीं हुई। कर्नल बड़ा शिकारी था। वह मार्ग में चलते चलते जंगलों में घुसकर उस प्रदेश के पहाड़ी जन्तुओं का शिकार कर लाता। "कांकड़" और "घुरड़" कही जाने वाली लाल और काली जंगली बकरियों का उस प्रदेश में बाहुल्य था। हमारे साथी इन मृत जन्तुओं को खाल सहित आग पर भून लेते। ऐसा ही भुना मांस बिना पकाए खा लिया जाता। कर्नल को भी ऐसा मांस रुचिकर था। कभी कर्नल मार्ग में अपनी अनोखी तरकीब से दो चार चिड़ियों को भी पकड़ लाता।

शारदा को पार करने पर नैपाल का क्षेत्र आ गया। यहाँ वन-विभाग व्यवस्थित न था। मार्ग में टिकने के लिए डाक बँगले भी नहीं बने थे। यहाँ तक कि सड़क के किनारे कुमाऊँ की भाँति चाय या आटे-चावल की दूकानें भी न थीं। कांकड़-घुरड़ जैसे जानवर यहाँ मिलते ही न थे। गाँव में कौणी, सवाँ या मडुवा (कोदों) जैसे अन्न ही मिलते। ये अन्न कर्नल के कथनानुसार उनके देश में मुर्गियों को खिलाए जाते थे। वहाँ कुलियों के मांस के शौक की संतुष्टि के लिए एक बार तो कर्नल को बीस रुपया व्यय करके बकरा खरीदना पड़ा।

एक सप्ताह की नैपाल देश की यात्रा के उपरांत हम निर्दिष्ट गाँव में पहुँच गये। इस दो सौ मवासों के गाँव में सभी मकान दुमंजिले थे। मकानों के नीचे के खंडों में गाय, भैंस आदि पशु रहते थे और दुमंजिलों में नर-नारी। अन्न, वस्त्र तथा जीवन की अन्य आवश्यकताओं के अभाव के कारण सारा गाँव निपट दीनता की जीती-जागती मूर्ति था। स्त्रियाँ मोटे-मोटे ऊनी कम्बलों के चोगे पहनती थीं। पुरुष भांग के पेड़ के रेशों से बने कोट और पाजामे, जिनका कपड़ा टाट-सा खुरदरा और मोटा था। समूचे गाँव में कोई चारपाई या पलंग तक न था। जाड़े की उस ऋतु में लोग उन लम्बी ठंडी रातों को अपने कमरों में दिन में पहिने कपड़ों को ओढ़कर बिता देते थे। पीने का पानी गाँव से आधे मील दूर हजारों सीढ़ियों उतर कर नाले में से लाया जाता था। सिर पर भरे घड़े लिए इन सीढ़ियों को पार करके गाँव तक पहुँचना साधारण व्यक्ति का काम न था। किन्तु उस गाँव में बच्चे तक उस गहराई से पानी लाते दीख पड़ते थे।

रंगरूटों की भर्ती आरंभ की गई। प्रत्येक रंगरूट के छाँट लिए जाने पर उसके परिवार के लोगों को उसका दो मास का वेतन पेशगी दिया जाता था। इस प्रकार प्रत्येक रंगरूट के लिए लगभग अस्सी रुपया व्यय करना होता था। गाँव द्विजों का था। छुआछूत की प्रथा इतनी प्रबल थी कि ब्राह्मण का भोजन छू देने पर सरकार की ओर से अपराधी को पचास रुपया दंड दिया जाता था। वर्ण-व्यवस्था के अनुसार यह दंड कम होता जाता था। क्षत्रिय की रसोई छूने पर पच्चीस रुपया और वैश्य की रसोई छूने पर पन्द्रह रुपया पड़ता था। कर्नल जैसे विदेशी गोरे म्लेच्छ माने जाते थे। उसके लिए कोई खाना पकाने के बर्तन तक देने को राजी न था। हमारे डोटचाल साथी जो मार्ग में हमारे साथ निस्संकोच भोजन कर रहे थे, इस गाँव में अपने सजातीय लोगों के मध्य पहुँचकर उन्हीं का-सा व्यवहार करने लगे थे, किन्तु कर्नल को इसकी कुछ भी चिन्ता न थी। उसे जो भी वस्तु खाने को दे दीजिए वह उसी की प्रशंसा करता था। चिड़ियों के चारे के लिए उपयुक्त सवाँ, कोणी या झुंगर मिलने पर वह उसी का "सूप" बना लेता। इसके लिए उसे केवल मेरे लोटे के सिवाय और किसी बर्तन की आवश्यकता भी न रहती।

डोटचाल लोग क्या भोजन करते हैं—यह जानने के लिए आज एक पुराने सैनिक की माँ से कर्नल ने भोजन मँगवाया था। उसी भोजन में वह रोटी थी। कर्नल ने तवे के आकार की कत्थई रंग की जिस गोल गोल भारी वस्तु को प्लेट समझकर सिरहाने रख दिया था वह वास्तव में मडुए (पहाड़ी कोदों) की रोटी थी। बीच में किंचित् गहरी होने के कारण वह प्लेट-सी लगती थी। उसी रोटी के ऊपर चावल और सब्जी भी रख दी गई होगी जिससे कर्नल को उसके प्लेट होने में सन्देह न रहा होगा। सचमुच दूर से यह काठ की पतली कठौती-सी ही लग रही थी।

मैंने कहा—"कर्नल यही तो वह रोटी है, इन पहाड़ी लोगों का मुख्य भोजन।" "हो-हो" करके अपने प्रचंड अट्टहास से उस खँडहर की दीवारों को कँपाता हुआ कर्नल रोटी पर झपट पड़ा। एक ग्रास तोड़कर मुँह भर कर चबाता हुआ बोला—"इसे खाते खाते मुझे मास्को की राई की रोटी याद आ रही है। वैसा ही काला रंग और वैसा ही स्वाद। ऐसी स्वादिष्ट वस्तु को भोजन में पाकर भी रात भर भूखे रहना कैसा दुर्भाग्य होता! गेहूँ की चपाती इसके सम्मुख निकृष्ट है। ओह, देखते नहीं यह ठोस है, ठोस, बिलकुल सिपाही के खाने माफिक!"

तीन दिन उस गाँव में बिताकर डेढ़ सौ बलिष्ठ नैपाली युवकों को भर्ती करके हम लोग लौट आए। उस कोदों की रोटी की बात को लेकर मैं कई दिन तक कर्नल का उपहास करता रहा। डोटी से लौट आने पर जब कभी हम दोनों सैनिक "मेस" में साथ ही भोजन करने बैठते तब मैं किसी भारी प्लेट को छूकर संकेत करता—"कर्नल खाओगे इसे? सिपाही के माफिक!"

बूढ़े कर्नल का चेहरा मुस्कराहट से जगमगा उठता। वह कहता—"इसमें उतना मिठास कहाँ?"

(२)

युद्ध के समाप्त होने पर मेरा वह स्फूर्तिमय जीवन भी समाप्त हो गया। मैं फिर अपने पुराने पद पर स्कूल में अपना नीरस अध्यापन-कार्य करने लगा। मेरे नाम के आगे अब कैप्टन शब्द जुड़ा हुआ था। इस विशेषण के कारण स्कूल में पूर्ववत् सम्मान न होता था। विद्यार्थी मुझे अवकाश-प्राप्त सैनिक समझकर ड्रिल कराने वाले अनपढ़ सूबेदार के समान मूर्ख समझते। नये प्रिंसिपल ने जब मुझे स्कूल में सैनिक-शिक्षण की कक्षाएँ खोलने को कहा तब तो मेरी निराशा सीमा उल्लंघन कर गई। मैं नौकरी छोड़ने का बहाना ढूँढ़ने लगा। मैं अध्यापन-कार्य से पूर्व धातुसंकरों (भरतों) पर कुछ प्रयोग कर रहा था, और मेरे दो लेख भी इस संबंध में छप चुके थे। इसी विषय पर अनुसंधान-कार्य करने की अनुमति माँगकर मैंने विश्वविद्यालय की एक छात्रवृत्ति के लिये आवेदन-पत्र भेज दिया और स्कूल के नये सत्र से अध्यापन-कार्य को तिलांजलि देकर लगभग सात वर्ष बाद मैं फिर विश्वविद्यालय में आ गया। भरत धातुओं पर किये गये प्रयोगों से मेरी ख्याति शीघ्र बढ़ गई। दो वर्ष के भीतर मुझे अपने अनुसंधान-कार्य के लिये अमेरिका जाना पड़ा। इस दो वर्ष की अवधि में मैं अपने मित्र कर्नल साइमन के साथ के सारे अनुभव भूल चुका था। तभी अचानक कर्नल साइमन से भेंट हो गई।

बात इस प्रकार हुई कि मैं अपने नये होटल में न्यूयार्क की टेलीफोन की डाइरेक्टरी के पन्ने यों ही उलट पलट कर मन बहला रहा था कि मेरी दृष्टि होटलों की सूची में "वान डिवार साइमन एण्ड सन्स" शब्दों पर आकर टिक गई। वान डिवार साइमन तो उसी मेरे साथी कर्नल का नाम था। मैंने देखा कि कर्नल शब्द भी कोष्ठ के अन्दर होटल के स्वामी के नाम के अन्त में दिया गया है। हो न हो, वही कर्नल इस संस्था का कर्ता-धर्ता हो। मैंने यह सोचकर धड़कते हृदय से टेलीफोन के डायल पर वह नम्बर मिलाया और जब उस सिरे पर घंटी की आवाज सुन पड़ने लगी तो मेरा हृदय और भी जोरों से धड़कने लगा कि मैं यह क्या गलती कर बैठा। सम्भवतः सुननेवाला वह कर्नल न हो, अथवा वह मेरी बात का उत्तर न दे। बात कैसे आरम्भ की जाय मैं इसी दुविधा में था कि मेरे कानों में सुनाई पड़ा—"यस, साइमन हियर।" यह स्वर—यह शब्द मेरे ही साथी कर्नल का था। मैंने पुलकित होकर टेलीफोन पर कहा—"मैं कर्नल साइमन से मिलना चाहता हूँ ठीक सिपाही के माफिक।" टेलीफोन कर्नल की चिरपरिचित हँसी से गूँज उठा। फिर कर्नल की

टेलीफोन पर आवाज आई—"ओह, तुम कप्तान रामसिंह हो, या मैं स्वप्न देख रहा हूँ ?"

मैंने कहा—"हाँ, मैं रामसिंह हूँ।" कर्नल ने झट पता पूछ लिया और यह कि वह तीन मिनट के अन्दर मेरे पास पहुँच रहा है मुझे उसके साथ चलना और साथ टिकने के लिए तैयार रहना चाहिए, कहकर टेलीफोन रख दिया।

मैं इस अचानक मुलाकात से ऐसा उत्तेजित हुआ कि अपनी ही सुध-बुध न रही। कर्नल के पास जाने के लिए क्या पहनूँ, क्या उतारूँ इसी उधेड़ बुन में वे थोड़े-से मिनट समाप्त हो गए। कर्नल मेरे कमरे में आ धमका। मैंने उसके चेहरे की ओर देखा तो वही सैनिक-सुलभ स्वस्थ मुद्रा थी, वही गहरी भूरी आँखें थीं, वही तीक्ष्ण कुशाग्र बुद्धिवाले लोगों में पाई जानेवाली स्वस्थ दृष्टि। सुन्दर चौड़े माथे पर वही तीन झुर्रियाँ थीं, नंगे सिर पर महीन कटे श्वेत बाल थे। कर्नल साइमन में किंचित् भी परिवर्तन न हुआ था। सफलता, कर्मण्यता और स्फूर्ति की वह जीती-जागती मूर्ति मेरे सम्मुख पूर्ववत् एक सुमधुर वातावरण का सृजन कर रही थी।

मुझे ज्ञात हुआ कि कर्नल का व्यवसाय खूब पनप रहा है। उसके होटल में यात्रियों के टिकने के दो सौ सुसज्जित कमरे थे। इसके अतिरिक्त उस नगर के हजारों मनुष्यों के भोजन करने की व्यवस्था थी। सुबह के नाश्ते, दोपहर के लंच और रात के डिनर के विशाल कमरों में दस हजार से भी अधिक व्यक्ति प्रतिदिन भोजन करते थे। भोजनालय के बाहर तथा भीतर कमरों में बड़ी बड़ी तख्तियों में बी० डी० बी० नामक एक विशेष भोजन के गुणों के अनेक विशाल विज्ञापन यत्र-तत्र लगे थे। संभवतः यह उस भोजनालय द्वारा निर्मित कोई विशिष्ट खाद्य था।

मैंने पूछा—'कर्नल! यह बी० डी० बी० क्या बला है?' कर्नल ने बात टालते हुए कहा—"पहले यह बताइये कि आप क्या पिएँगे ह्विस्की, अंगूरों की मदिरा या केवल फलों का रस?"

"फलों का रस ही ठीक रहेगा"—मैंने कहा। कर्नल ने मेज के पास एक बटन दबाया। एक मिनट के अन्दर छोटी-सी गाड़ी में लाल लाल फलों का रस भरा गिलास और धानी रंग की पीने की खोखली नली थी।

मैंने एक चुस्की लेकर कहा—"कर्नल, यह रस तो बड़ा सुन्दर है। ठंडा भी इतना कि एक साँस में इसे पीना संभव नहीं।"

होटल की विशालता को देखकर चकित होकर मैंने कहा—"कर्नल, सेना के अनुभव का आपने यह अच्छा उपयोग किया। इस भोजनालय को चलाने के लिये आपको नौकरों की एक पूरी बटैलियन की आवश्यकता रहती होगी?"

कर्नल ने कहा—"ऐसा नहीं है। मैं, मेरा सहायक, तीन भोजन-विशेषज्ञ और एक अकाउण्टेण्ट, बस छः ही व्यक्ति इस संस्था को चलाते हैं। जब ग्राहक विभिन्न मशीनों में सिक्के डालते हैं तो इच्छित वस्तु स्वतः उनके सम्मुख पहुँच जाती है।"

"लेकिन कर्नल", मैंने कहा—"प्रतिदिन हजारों व्यक्तियों द्वारा प्रयुक्त लाखों जूठी प्लेटों और छूरी-काँटों को बटोरने और फिर उन्हें यथास्थान रखने को तो सैकड़ों नौकर होंगे।"

कर्नल ने कहा—"यहाँ भारत की भाँति घरेलू नौकर आसानी से नहीं मिलते। मुझे यहाँ अपना पुराना होटल अनिवार्य सैनिक भर्ती के कारण नौकरों के अप्राप्य होने से ही युद्ध के आरंभ में बंद करना पड़ा था। अब तो मैंने इस समस्या का हल निकाल लिया है।"

मैंने अधीरता से पूछा—"कर्नल, मैं पूछ रहा था कि उन हजारों जूठी प्लेटों को जो मेजों पर बिखरी पड़ी रहती हैं, तुम कैसे मशीन तक पहुँचाते हो।"

"यही तो बता रहा हूँ," कर्नल ने कहा—"आपके लिये एक गिलास रस और मँगाऊँ? इसे शीघ्र समाप्त कीजिये।"

मैं अब एक साँस में उस अति स्वादिष्ट पेय को गटक गया। गिलास के खाली होते ही उस पारदर्शक गिलास में इन्द्रधनुष के से सात रंग झलक आये। फिर वे सात पंक्तियों में परिवर्तित होकर अँगरेजी के इन वाक्यों में चमचमा उठे थे—"बी० डी० बी०—बैलेन्स्ड डाइट ब्रैड। इस गिलास

में जो पेय अभी आपने पिया वह कैलिफोर्निया के प्रसिद्ध अंगूरों से बना था। इस पेय में फल-शर्करा.... ग्राम, श्वेत-सार...... ग्राम, अम्ल...... ग्राम तथा अमुक पदार्थ अमुक अमुक मात्रा मे हैं (पूरे विवरण अब मुझे स्मरण नहीं हैं।) खाद्य पदार्थों की यह मात्रा आपके शरीर के प्रतिक्षण टूटते हुए रक्त सैलों के निर्माण के लिये अपर्याप्त थी। इस पेय में अम्ल की मात्रा आपके शरीर के लिये अहितकर थी। अतः उस पेय को आपके शरीर के योग्य संतुलित भोजन के रूप में परिणत करने के लिए इस गिलास को जो बी० डी० बी० नामक विशेष जिलेटिन का बना है, प्रस्तुत किया जाता है। इसे चखिये। यह...... ग्राम फासफोरस,... ग्राम लौह,... ग्राम क्षार तथा... इकाई अमुक अमुक विटामिनों से बना है। उस पेय को 'बैलेन्स्ड' (संतुलित) करने के लिये हमारे द्वारा प्रस्तुत यह रोटी उस पेय की पूरक है। इसे अवश्य चखें।"

मैंने गिलास को दाँतों से काटा। वह अति सुन्दर चाकलेट सा मीठा और सोंधा था। उसको मुँह में लेकर छोड़ने को जी न करता था। जब मैं उसे खा चुका तो पीने-वाली नली पर उसी भाँति के शब्द झलक आये—"यह नली आपके मुँह, दाँत और भोजनप्रणाली को सुवासित करके उसे रोगकारक कीटाणुओं से सुरक्षित रखेगी। इसे भी खाइये।"

सचमुच वह नली किसी बढ़िया बनारसी पान से भी बढ़कर सुस्वादु थी। मैं यह सब व्यापार देखकर आश्चर्य-चकित था।

कर्नल ने कहा—"ग्राहक द्वारा माँगे गये खाद्य की कमी का हम इसी प्रकार उसे ज्ञान कराकर जिस बर्तन में वह खाद्य दिया जाता है उस बर्तन को भोजन रूप में प्रस्तुत करके उस कमी की पूर्ति करते हैं। हमारे भोजनालय की बी० डी० बी० नामक पूरक इसी प्रकार खाद्य जिलेटिनों से निर्मित होती हैं—हमारे छूरी-काँटे-चम्मच ऐसे ही कृमि-नाशक सुवासित पदार्थों से बनते हैं। खाद्य पदार्थों में कहीं भी मनुष्य का हाथ नहीं लगता। सच पूछो तो नैपाल की उस यात्रा में कोदों की रोटी में परसे भोजन को पाकर ही मुझे यह तरकीब सूझी थी।"

ऊबड़ खाबड़ पर्वतों के अन्तराल में उस बूढ़े कर्नल को तिरस्कृत समझकर ग्रामीण लोगों ने उसका अनादर किया था। वह तिरस्कार तो उसे छुआ तक नहीं, उल्टे कोदों की रोटी से सूझी वह तरकीब उसके उर्वर मस्तिष्क में किस गहराई तक पहुँचकर दुनिया के दूसरे छोर पर किस रूप में पनप उठी! नैपाल और न्यूयार्क में यह भेद मेरे अन्तर को अब भी मथता ही रहता है।

१९५६

❀ ❀ ❀

लालफीताशाही

श्री चिरंजीलाल पाराशर

फकीरासिंह क्लर्क चैकिंग के लिए हाथ में रजिस्टर लिये खड़ा था। रजिस्टर के ऊपर दो-तीन जगह नीली स्याही के फैलने से दाग पड़ गये थे। उन्हें देखकर हेडक्लर्क दिलावरसिंह चैकिंग करना तो भूल गये, लगे धब्बों की कैफियत तलब करने, "यह क्या हुआ मिस्टर?"

'श्रीमान् जी, रात को किसी चूहे ने स्याही गिरा दी" फकीरासिंह ने मुख मलीन करके कहा।

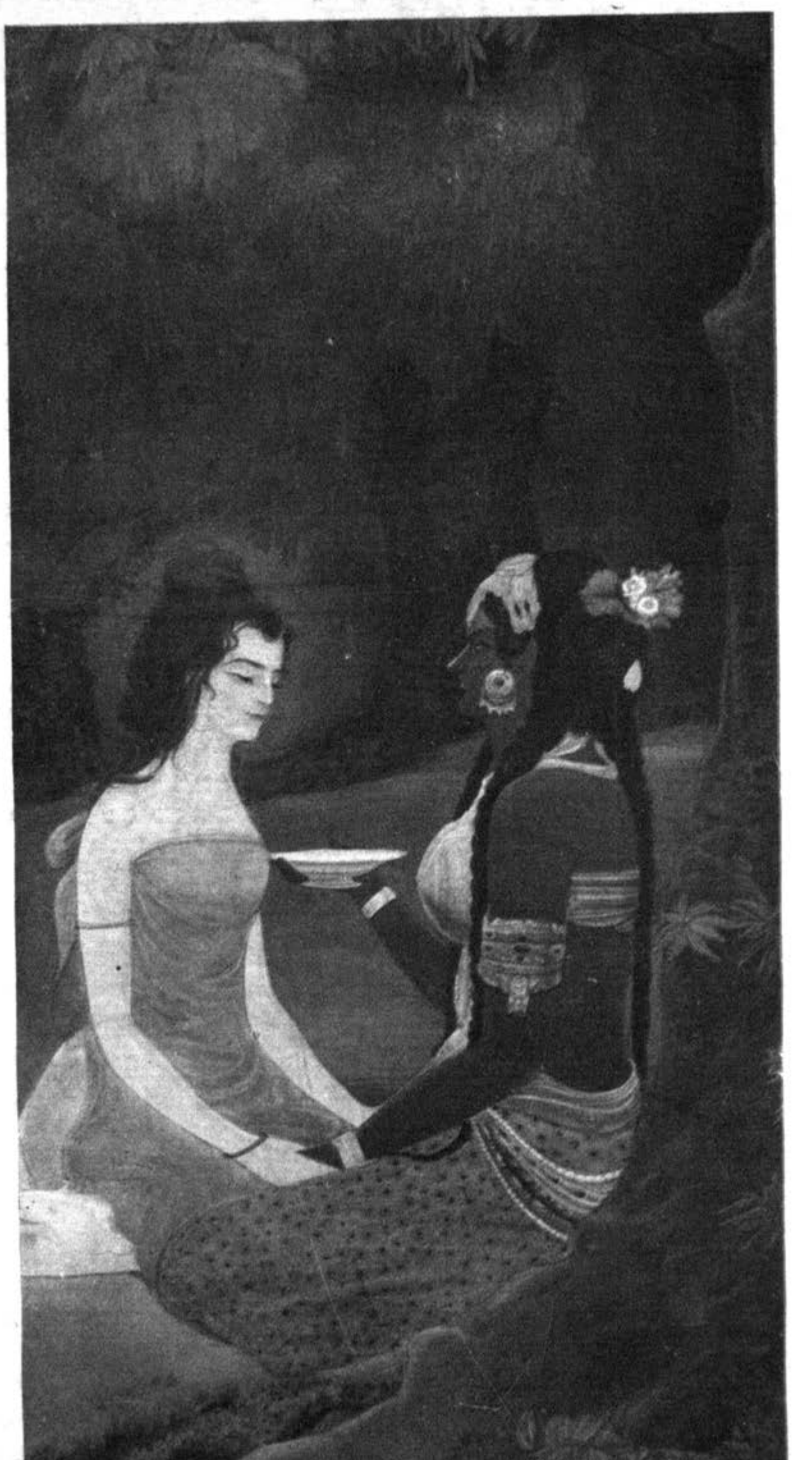
"यह आलमारियाँ उद्घाटन-विभाग का सरकारी रिकार्ड रखने के लिए बनी हैं अथवा चूहों की मटरगश्त के लिए?"

"जी, मैं तो शाम को रजिस्टर ठीक हालत में छोड़-कर गया था। यह काम तो चौकीदार का है कि उन्हें आलमारियों में अच्छी तरह रखे।"

"मैं कुछ नहीं सुनना चाहता, जो कुछ कहना है लिखकर दो।"



शिव का मोह
(चित्रकार--रामगोपाल विजयवर्गीय)



बन्दिनी सीता

(चित्रकार--प्रमोदकुमार चट्टोपाध्याय) [१६३२

फकीरासिंह चुपचाप सिर झुकाये चला गया और अपनी मेज पर जाकर उसने एक कागज पर लिखा:—

"श्रीमान् हेडक्लर्क साहब, निवेदन है कि कल शाम दफ्तर से जाने के पहिले मैंने अपने रजिस्टर ठीक हालत में अपनी मेज पर छोड़ दिये थे। मेरे जाने के बाद चौकीदार ने उन्हें आलमारी में बन्द कर दिया। आज जब मैंने आलमारी से उन्हें निकाला तो मुझे रजिस्टरों पर स्याही गिरी हुई मिली।

फकीरासिंह
क्लर्क
३। ६

अर्जी पढ़ते ही हेडक्लर्क ने घण्टी बजाई और चपरासी को आज्ञा दी कि चौकीदार को बुलाओ। चौकीदार के आते ही उससे जवाब तलब हुआ कि रजिस्टर पर स्याही कैसे गिरी ?

चौकीदार ने आलमारी में चूहे के आवागमन की तो पुष्टि की, परन्तु यह नहीं माना कि उसने चूहा स्वयं देखा था। अतः उसे भी अपना बयान लिखकर देने की आज्ञा मिली।

चौकीदार ने अपना बयान एक क्लर्क से लिखाया:—

श्रीमान् मान्यवर हेडक्लर्क साहब! बाबू फकीरासिंह की रिपोर्ट के सम्बन्ध में आज्ञानुसार विनीत निवेदन है कि मैंने नित्य के अनुसार आलमारी में रजिस्टर और लिखने का सामान बन्द कर दिया था। रात किसी चूहे ने आल्मारी में घुसकर रजिस्टर पर स्याही गिरा दी। वाजिब जान अर्ज किया।

रामनगरसिंह,
चौकीदार
३। ६

क्लर्क की अर्जी और चौकीदार की अर्जी को हेडक्लर्क ने एक साथ नत्थी किया और उनके ऊपर एक अलग कागज पर अपनी टिप्पणी लिखी। उसमें उन्होंने लिखा:—

"श्रीमान् आफिस सुपरिंटेंडेन्ट

कल रात सरकारी रिकर्ड के एक रजिस्टर को चूहों से बहुत हानि पहुँची। सम्बन्धित व्यक्तियों के बयान साथ में नत्थी हैं। कृपया उचित कार्रवाई की आज्ञा प्रदान करें।

सरदार दिलावरसिंह,
हेडक्लर्क
३। ६

आफिस सुपरिंटेंडेन्ट ने तीनों अर्जियों को ध्यान से पढ़ा और पढ़ने के बाद हेडक्लर्कवाली अर्जी की खाली जगह पर एक नोट में लिखा:—

"मान्यवर डिप्टी सेक्रेटरी महोदय, कल रात एक चूहे ने ब्लाक नम्बर ३ के दफ्तर में सरकारी रिकर्ड को हानि पहुँचाई। सम्बन्धित क्लर्क और चौकीदार के बयान पताका च और ख पर नत्थी हैं। आदेशार्थ।

बलवन्तसिंह राठौर,
आफिस सुपरिंटेंडेन्ट
७। ६

अब चारों कागज केवल कागज-मात्र न रहकर ब्लाक नम्बर ३ की एक फाइल के रूप में आ गयीं और उसका नम्बर पड़ा $\frac{\text{xxxiv iv B}}{\text{xix–6–59}}$ यह फाइल डिप्टी सेक्रेटरी की मेज पर पेश हो गई। उन्होंने बलवन्तसिंह का नोट पढ़ा। शेष बयानों को पढ़कर समय नष्ट करना उन्होंने उचित न समझा।

एक नए कागज पर उन्होंने अपनी आज्ञा लिखी—

"आफिस सुपरिंटेंडेन्ट, सम्बन्धित व्यक्तियों को तुरन्त मुअत्तिल किया जाय और पूरी जाँच करके रिपोर्ट की जाय कि दफ्तर के अन्दर तकरीबन कितने चूहे होंगे और कितना सरकारी रिकर्ड खराब हो चुका है, जिससे नुकसान के लिए जिम्मेदार लोगों को उचित सजा दी जाय। यह भी बतलाया जाय कि रिकर्ड सुधरवाने में कितना समय लगेगा और क्या व्यय होगा।

एस० के० खान,
डिप्टी सेक्रेटरी
१५। ६

फाइल लौटकर पुनः सुपरिंटेंडेन्ट के पास आई। उन्होंने

डिप्टी सेक्रेटरी की आज्ञा के नीचे ही अपनी आज्ञा भी चिपका दी—"हेडक्लर्क, आज्ञा पर तत्काल कार्रवाई की जाय।"

बलवंतसिंह राठौर,
आफिस सुपरिंटेंडेन्ट
१५। ६

हेडक्लर्क ने तुरन्त आज्ञा का पालन किया। चौकीदार और क्लर्क मुअत्तिल कर दिये गये। कई दिन बाद उन्होंने अपनी दिव्य दृष्टि द्वारा छानबीन करने के बाद लिखा—

"आज्ञानुसार क्लर्क और चपरासी मुअत्तल कर दिए गए। जाँच से पता चला है कि तकरीबन दो दर्जन चूहे दफ्तर में आ घुसे हैं लेकिन अभी उन्हें अधिक नुकसान पहुँचाने का अवसर नहीं मिला। जो नुकसान अभी हुआ है वह दो क्लर्क एक सप्ताह में ठीक कर सकेंगे। चूँकि यह पता नहीं चल सका कि चूहों के दफ्तर में लाने की जिम्मेदारी किसकी है, इसलिए अपराध का उत्तरदायित्व निश्चित करने में असमर्थता है।

सरदार दिलावरसिंह,
हेडक्लर्क"
२।७

फाइल फिर ऊपर चढ़नी आरंभ हुई। जब सुपरिंटेंडेन्ट साहब के पास पहुँची तो उन्होंने अपना नोट पुनः लिखा—"श्रीमान् असिस्टेंट सेक्रेटरी साहब, श्रीमान् के १५।६ की आज्ञा के संदर्भ में कृपया पेज ३ से देखने का कष्ट करें। आज्ञानुसार जाँच का रिकर्ड सेवा में उपस्थित है।"

बलवंतसिंह राठौर,
आफिस सुपरिंटेंडेंट।
६।७

डिप्टी सेक्रेटरी ने आफिस की जाँच का रिकर्ड पढ़ा और इस गम्भीर घटना की सूचना अपने अफसर को देना उचित समझकर लिखा—

"सेक्रेटरी, ब्लाक नम्बर ३ के दफ्तर में सरकारी रिकर्ड को चूहों से नुकसान पहुँचा है। संबंधित व्यक्तियों को मुअत्तिल कर दिया गया है। वास्तविक अपराधियों का पता नहीं लग सका क्योंकि हमारे विभाग के कर्मचारी दफ्तर में चूहों के प्रवेश के संबंध में जाँच करने में असमर्थ हैं। उन्हें इस काम की ट्रेनिंग नहीं दी गई।"

एस० के० खान,
डिप्टी सेक्रेटरी २०।७

उद्घाटन-विभाग के सेक्रेटरी श्री धौंकलसिंह आई० सी० एस० को मीटिंगों, चर्चाओं, मिनिस्टरों की हाजिरी, लंच, डिनर, पार्टीज के कारण समयाभाव था। उनकी मेज पर पूरे ६ महीने फाइल को आराम मिला। बाद में एक दिन उन्होंने फाइल को उलट-पलट कर देखा और तुरन्त जेब से फाउन्टेनपेन निकालकर लिखा—

"डिप्टी सेक्रेटरी,

जाँच अधूरी है। इससे स्थिति का पूरा चित्र शासन के सामने नहीं आता। चूहों के आने का कोई कारण होना चाहिए। क्या क्लर्क अपनी 'लंच' आल्मारी में रखता था? यदि नहीं तो चूहों के आने का क्या कारण है? मामले की दुबारा जाँच की जाय और यह बताया जाय कि चूहों के अतिरिक्त और कौन-कौन से जानवर दफ्तर में घुस सकते हैं।"

ध० स० १५।१

डिप्टी साहब ने जैसे ही साहब की आज्ञा पढ़ी फौरन उसके नीचे लिख दिया—

"आफिस सुपरिंटेंडेंट, फौरन ही आज्ञा पालन किया जाय।"

एस० के० खान,
डिप्टी सेक्रेटरी २०।१

तीसरे दिन सुपरिंटेंडेंट साहब ने डिप्टी सेक्रेटरी की आज्ञा पर अमल किया। उनकी आज्ञा के नीचे अपनी आज्ञा और टाँक दी—"हेडक्लर्क, तीन दिन में कार्रवाई करके फाइल मेरे पास भेज दी जाय।"

बलवंतसिंह राठौर,
सुपरिंटेंडेंट २२।१

फाइल सीढ़ी का एक-एक डंडा चढ़ते हुए जैसे-जैसे ऊपर गई थी उसी प्रकार पुनः उतर कर हेडक्लर्क के पास आ गई। अतः अब हेडक्लर्क को पुनः दिव्य दृष्टि का

आह्वान करना पड़ा। कई दिन बाद दिव्य दृष्टि ने उनसे लिखाया—

"सुपरिंटेंडेंट, जाँच से पता चला कि क्लर्क घर से खाना खा के आता था और शाम को कैंटीन में चाय पीता था। इसलिए आल्मारी में खाने का कोई सामान नहीं रखा जाता। रेंगने वाले जन्तु यथा चूहे, साँप-बिच्छू, कनखजूरे, नेवले, दफ्तर में घुस सकते हैं। गत वर्ष एक साँप दफ्तर के बाहर मारा गया था। इनके अतिरिक्त रोशनदानों से उड़ने वाले पक्षी भी आ जाते हैं जो कार्निस पर बैठते हैं। कभी कभी वे बाबुओं के कपड़ों और सरकारी कागजों पर बीट भी कर देते हैं।"

सरदार दिलावरसिंह,
हेडक्लर्क २।२

अब फाइल फिर ऊपर चढ़नी आरंभ हो गई। जब सुपरिंटेंडेंट साहब के पास पहुँची तो उन्होंने उसके नीचे फिर लिखा—"जाँच का परिणाम (पताका 'प') आदेश के लिए सेवा में प्रस्तुत है। मैं इससे सहमत हूँ।"

—बलवंतसिंह राठौर,
सुपरिंटेंडेंट १५।२

जाँच का परिणाम डिप्टी सेक्रेटरी के पास पहुँच गया। उन्होंने भी अपनी कलम चलाई :

"सेक्रेटरी, जाँच का सारा रिकर्ड सेवा में भेजा जा रहा है। कृपया पताका 'प' देखिए। सरकारी रिकर्ड को इन जानवरों से सुरक्षित रखने की आवश्यकता है।"

एस० के० खान,
डिप्टी सेक्रेटरी २७।२

सेक्रेटरी साहब ने खान साहब और पताका 'प' पर हेडक्लर्क की टिप्पणी पढ़ी। उन्होंने इस प्रकरण को महत्त्व-पूर्ण समझा और इसे माननीय मंत्री के सामने रखने का निश्चय किया। अतः उन्होंने टिप्पणी लिखी—

"माननीय मंत्री जी, उद्घाटन-विभाग,

ब्लाक नम्बर ३ के कार्यालय में कुछ चूहे घुस आये हैं जो सरकारी रिकर्ड को नष्ट कर रहे हैं। जाँच से मालूम हुआ कि मौजूदा हालत में दफ्तर में कुछ पक्षी भी घुस सकते हैं। इसके लिए आवश्यक है कि कुछ बिल्लियाँ पाली जायँ। श्रीमान् की आज्ञा होने पर उनके व्यय के लिए वित्त विभाग को प्रस्ताव भेज दिया जायगा।"

ध० सिंह
सेक्रेटरी १५।३

उद्घाटन के मंत्री के पास 'चूहा' फाइल पहुँच गई। उस पर 'तुरंत' 'आज ही' 'आवश्यक' आदि कोई पट्टी नहीं लगी। मंत्री महोदय का कार्यक्रम अत्यन्त व्यस्त था क्योंकि वह उद्घाटनों और बजट की ऋतु थी। अतएव कई महीने बाद उस साधारण फाइल की पारी आई और उन्होंने उस पर लिख दिया—

"सेक्रेटरी, कृपया बोलें,"

क० च० म० ६।७

सेक्रेटरी साहब कई दिन बाद पेशी की फाइलें लेकर मंत्री महोदय के कक्ष में हाजिर हुए। उस फाइल को देखकर मंत्री महोदय बोले—"अरे, इस विभाग में तो इतिहास की अमूल्य निधियाँ हैं! वहाँ वित्त-विभाग के या शिक्षा-विभाग के ऐसे-वैसे कागज तो हैं नहीं। यदि इस विभाग के कागज नष्ट हो गए तो भावी संतान को इस गौरवमय युग का हाल कैसे मालूम होगा? जो जाँच हुई है इससे कोई बात स्पष्ट नहीं होती। पहले एक ही चूहा आया था, या अनेक आये? स्वयं ही आये अथवा किसी राजनीतिक दल द्वारा सरकारी रिकर्ड नष्ट करने के लिए घुसाये गये?" सेक्रेटरी साहब ने कहा कि "हेडक्लर्क से मामले की जाँच कराई गई थी। किन्तु इस पहलू पर वह जाँच नहीं कर सका।" मंत्री महोदय ने फरमाया—हेडक्लर्क से यह जाँच कैसे हो सकती है? इसके लिए एक जाँच-समिति नियुक्त होनी चाहिए। वही ठीक-ठीक पता लगा सकती है कि चूहे कहाँ से, कैसे और क्यों आते हैं और किसके द्वारा भेजे जाते हैं। वह यह भी पता लगावेगी कि वे किस नस्ल के हैं।"

सेक्रेटरी साहब ने सहमत होते हुए कहा—"समिति निर्माण करने के लिए कैबिनेट की आज्ञा आवश्यक है। मैं उसके लिए शीघ्र ही प्रस्ताव भेज दूंगा।" मंत्री महोदय फिर बोले—"जाँच-समिति में मेरी राय में एक अमेरिकन

विशेषज्ञ रखा जाय जो पक्षियों का विशेषज्ञ हो। दूसरा रूसी विशेषज्ञ हो तो ठीक रहेगा क्योंकि जमीन के कीड़ों के बारे में उनकी जानकारी अच्छी है। वे अंडरग्राउंड कामों में उस्ताद होते हैं। और तीसरा होना चाहिए ब्रिटिश। वह इसलिए कि यहाँ की जलवायु का पता उन्हें हमसे भी ज्यादा है। शायद इसीलिए वे यहाँ से पुरानी हस्तलिपियाँ ले गये हैं क्योंकि वे जान गये हैं कि ऐसे रिकर्ड के लिए यहाँ के बजाय लन्दन की जलवायु अच्छी है।"

सेक्रेटरी साहब ने शीघ्र ही आज्ञा पालन करने का वचन दिया। मंत्री महोदय ने फाइल पर लिख दिया—

"सेक्रेटरी साहब बोल गए"

क० च० म० १७।७

मंत्री जी ने फाइल उन्हें लौटा दी। जब सेक्रेटरी साहब चलने लगे तो मंत्री महोदय फिर बोले—'इतना अच्छा हुआ जो प्रेस के भूतों को पता नहीं चला। अब जल्दी ही यह कार्रवाई हो जाय।"

दूसरे दिन समाचार-पत्रों में यह समाचार छपा—"विश्वस्त सूत्र से ज्ञात हुआ है कि उद्घाटन-विभाग के एक क्लर्क फकीरासिंह ने उच्च न्यायालय में एक प्रार्थना-पत्र देकर माँग की है कि चूहा-गड़बड़-कांड में हुई उसकी मुअत्तिली अवैधानिक है। अतः उसे पुनः कार्य पर बहाल किया जाय और १३ मास का बकाया वेतन दिया जाय। ज्ञात हुआ है कि न्यायालय ने प्रार्थनापत्र स्वीकार करते हुए सरकार को नोटिस दे दिया है।"

मंत्री महोदय का विभाग ही ऐसा था कि समाचारपत्रों का आधा पेट उसी के समाचारों से भरता था। अतएव वह समाचार प्रथम पृष्ठ पर ही छापा गया था। उक्त समाचार पढ़ते ही मंत्री महोदय ने सेक्रेटरी को तलब किया।

"देखा जिस बात का डर था आखिर वही सामने आया।" यह कहकर उन्होंने समाचार-पत्र सेक्रेटरी के आगे सरका दिया।

"ये संवाददाता तो......" सेक्रेटरी ने कुछ कहना चाहा, किन्तु मंत्री महोदय चतुर थे, और तुरन्त निर्णय करने के अभ्यासी थे। उन्होंने सेक्रेटरी की बात काट कर कहा—"आज ही शाम को चार बजे प्रेस कांफ्रेंस का प्रबन्ध कीजिए। सूचना-विभाग से तुरन्त संपर्क स्थापित कीजिए। देखिए, चाय आदि का अच्छा प्रबंध रहे। 'मृदंग मुखलेपेन, करोति मधुरध्वनिम्।"

आज्ञा पालन हुआ। प्रेस कांफ्रेंस आरंभ हुई। मंत्री महोदय बोले—"मित्रो, कुछ अर्सा हुआ कि सरकारी रिकर्ड को क्षति पहुँचाई गई, और वह भी आश्चर्यजनक वैज्ञानिक ढंग से। उस क्षति में लोगों ने विस्फोटक पदार्थों का प्रयोग न करके चूहों का प्रयोग किया।" एक संवाददाता ने आश्चर्य से पूँछा—"चूहों का?" मंत्री महोदय ने सिर हिलाते हुए कहा—"जी हाँ, चूहों का! इसी कारण कुछ संदिग्ध व्यक्तियों को मुअत्तिल करना पड़ा ताकि होने वाली जाँच में बाधा न पड़े। इसकी जाँच के लिए एक समिति बनाने का विचार है। अंतिम निर्णय जाँच के बाद होगा।"

संवाददाताओं ने जाँच-समिति के संबंध में प्रश्न किए किंतु मंत्री महोदय ने कहा कि "समिति बन जाने पर ही उसके संबंध में जानकारी दी जा सकेगी।"

दिन भर के थके पत्रकारों ने उदारतापूर्वक सरकारी आतिथ्य के साथ न्याय किया। चायपान के बाद कांफ्रेंस समाप्त हुई और दूसरे दिन समाचारपत्रों में सारी प्रेस कांफ्रेंस का हाल बड़े-बड़े शीर्षक लगाकर प्रकाशित हुआ। अच्छा खासा नमक-मिर्च लगाकर समाचार छापा गया। कई पत्रों ने संपादकीय टिप्पणियाँ लिखीं और सरकार से यह माँग की गई कि वह इस चूहा-कांड की शीघ्र जाँच कराये।

इस चूहा-कांड के समाचारों को जैसे ही विरोधी दल के सदस्यों ने पढ़ा वैसे ही उनकी बाँछें खिल गयीं। उन्होंने इस बारे में अपना एक सम्मेलन करके निश्चय किया कि इस मामले को लेकर सरकार को बदनाम किया जाय।

दूसरे दिन विधानसभा के अधिवेशन में विरोधी दल के सदस्यों ने उद्घाटन-विभाग के मंत्री से अल्पकालीन प्रश्नों की झड़ी लगा दी।

"क्या मंत्री महोदय बतायेंगे कि चूहा-कांड में लगभग कितने रिकर्ड को क्षति पहुँची?" एक सदस्य ने पूँछा।

"जनहित में इसका बताना उचित नहीं" मंत्री महोदय बोले।

"क्या यह ठीक है कि कुछ कर्मचारियों पर विभागीय कार्रवाई की गई है ?" दूसरा सदस्य।

"इसके बारे में मैं जो कुछ प्रेस कांफ्रेंस में कह चुका हूँ उससे अधिक कुछ भी कहने की स्थिति में नहीं हूँ।"

"क्या अन्य विभागों में भी चूहों से हानि पहुँचती है ?"

"इसके लिए नोटिस चाहिए।"

"चूहे कहाँ से आये, क्या मंत्री महोदय बतायेंगे ?" तीसरा सदस्य।

"इसके लिए सरकार शीघ्र ही एक जाँच-समिति नियुक्त करेगी ?

"क्या मंत्री महोदय का विचार कुछ पागलों को भी इस समिति में लेने का है ?" चौथा सदस्य।

"यदि माननीय सदस्य सुझाव दें तो उनके कुछ सहयोगियों को लेने पर विचार किया जा सकता है।" (शासन दल के सदस्यों द्वारा करतल-ध्वनि)

केबिनेट ने जाँच-समिति के निर्माण करने की स्वीकृति दे दी। कई महीनों के निरन्तर पत्र-व्यवहार के बाद तीनों विदेशी विशेषज्ञ आये और आकर उन्होंने पूरे एक महीने अपनी यात्रा की थकान उतारी और दर्शनीय स्थानों की सैर की। उनमें से एक-दो ने तराई के जंगलों में शेर का शिकार भी किया। बाद में तीनों ने जाकर दफ्तर के भवन और आल्मारियों को देखा। जमीन की जाँच की। दफ्तर के कमरों और बाहर की कई जगह की मिट्टी खुदवाकर उसके नमूने लिये। दफ्तर और आल्मारियों और बैठकों के नकशे बनवाये। उनके फोटो लिये। बाबुओं से पूँछ-ताँछ की। कई दिन यह सब करने के बाद जाँच-रिपोर्ट तैयार करने के लिए वे एक फैशनेबल पहाड़ी नगर के लिए रवाना हो गये जहाँ उन्होंने पाँच मास में अपनी रिपोर्ट लिखी।

रिपोर्ट के कुछ अंश ये हैं : "यह भवन जिस भूमि पर बना है उसकी मिट्टी में चूहे आनन्द का अनुभव करते हैं और उसमें रहने से उनका प्रजनन बढ़ जाता है। यदि सावधानी न बरती गई तो एक दिन वह आयेगा कि दूसरे देशों के चूहे भी यहाँ आने लगेंगे।"

"जहाँ भोजन का सामान हो वहाँ चूहों का आना कोई विशेष घटना नहीं है, किन्तु यहाँ चूहों के आने के लिए ऐसा कोई प्रलोभन नहीं था। अतएव इसका कारण भूमि की विशेषता है। कार्यालय की सुरक्षा के लिए पश्चिमी नस्ल की बिल्लियों का पालना आवश्यक है; देशी बिल्लियाँ इन चूहों को ठीक तरह से समाप्त नहीं कर सकतीं। समिति का यह भी मत है कि इस भवन के निर्माण में जिस गारे का उपयोग हुआ था वह आवश्यकता से अधिक गीला था और उसमें क्षार तत्त्व अधिक थे। इससे ईंटों के बीच में दराजें हो गईं। अतः चूहों को घुसने में आसानी रही। भविष्य में ध्यान रखा जाय कि दीवालें और फर्श सीमेंट के बनाए जायँ।"

रिपोर्ट देने के बाद जाँच-समिति के सदस्य अपने अपने देशों को लौट गए। शासन ने उदारतापूर्वक उनका व्यय जो केवल डेढ़ लाख रुपये था, उन्हें दिया और साथ ही उनके परिश्रम और उनकी महत्त्वपूर्ण रिपोर्ट के लिए धन्यवाद भी।

जाँच-रिपोर्ट के बाद फिर मंत्री-सेक्रेटरी सम्मेलन हुआ। तय यह हुआ कि नया भवन २॥ लाख से बनवाया जाय।

इस तरह से ४ लाख के बाद चूहों से सुरक्षा पाई गई। साथ ही ३ हजार रुपये क्लर्क को और २ हजार रुपये चौकीदार को देकर बहाल किया गया। जब क्लर्क अपनी बहाली की प्रसन्नता की मिठाई लेकर हेडक्लर्क के पास गया तो सरदार जी हँस पड़े और चाय की चुस्की लेते हुए बोले—"वाह रे चूहे !"

१९५६

❀ ❀ ❀

मंगल ग्रह की पहिली यात्रा

डाक्टर नवलबिहारी मिश्र

मनोविज्ञान के विचित्र तथा आश्चर्यजनक पहलुओं के अध्ययन के अवसर जितने डाक्टर के लिए सुलभ हैं, उतने शायद और किसी के लिए नहीं।

मुझे ऐसे पिता से मिलने का अवसर मिला है जो अपने काल्पनिक रोगों की चिकित्सा केवल इसलिये कराना चाहता था कि पुत्र का रुपया खर्च हो जाय। एक ऐसी माता से मैं परिचित हूँ जो अपने बड़े बेटे से इतना स्नेह करती है कि छोटे बेटे की मृत्यु की कामना करती है।

प्रस्तुत कहानी में मैं एक ऐसे व्यक्ति का आश्चर्यजनक विवरण दे रहा हूँ जिससे बहुत बड़ी मजबूरी में एक अपराध हो गया था। उस अपराध को छिपाने के लिए उसने मृत्यु पर्यन्त अपने इतने बड़े काम को छिपा रक्खा जिसके सामने तेनसिंह अथवा आइनस्टीन के कारनामें बच्चों के खेल हैं।

× × ×

घटना आज से चार वर्ष पूर्व की है। मई का महीना था। मैदान की झुलसानेवाली गर्मी से परेशान होकर मैंने कुछ दिनों के लिए पहाड़ की शरण ली। एक शपथ द्वारा ठीक-ठीक स्थान का पता बतलाने के सम्बन्ध में मेरा मुँह बन्द कर दिया गया है, इसलिए समझ लीजिये कि मैं रानीखेत गया था।

रहने के लिए उपयुक्त स्थान तथा नौकर तय करने में दो-तीन दिन लग गये। परन्तु उसके बाद, रोग तथा रोगियों की कल्पना से भी दूर, अपने दैनिक कार्यक्रम को टहलना, खाना तथा सोना, इन तीन अध्यायों में बाँटकर मैं निश्चिन्त कालयापन करने लगा।

मेरा नौकर चन्द्रसिंह अधेड़ अवस्था का दुबला-पतला व्यक्ति था, तथा जूते साफ करने से लेकर खाना बनाने तक के सभी काम निःसंकोच कर देता था। ढाई तीन मील दूर एक छोटे से गाँव में उसका परिवार था। चन्द्रसिंह यों तो चौबीसों घण्टे मेरे साथ ही रहता था, पर चौथे-पाँचवें दिन छुट्टी लेकर घर भी हो आता था।

घर से निकलते समय स्टेथस्कोप अनायास ही डाक्टर के हाथ में आ जाता है। सम्भवतः वह इसी प्रकार पहाड़ के लिए चलते समय मेरे ट्रंक में आ गया था, यद्यपि मैं प्रतिज्ञा करके चला था कि प्रवास के समय रोगियों से बिलकुल दर रहूँगा।

किसी दिन मेरे स्टेथस्कोप पर चन्द्रसिंह की दृष्टि पड़ गई होगी, क्योंकि वह उसके बाद मुझे डाक्टर साहब कहकर संबोधित करने लगा।

एक दिन चाय का सामान मेज पर सजाते-सजाते चन्द्रसिंह ने अपने एक पड़ोसी की बीमारी का हाल बतलाया तथा मुझसे अनुरोध किया कि मैं उसे देख लूँ। मैं उस समय एक दिन पूर्व का समाचार पढ़ने में व्यस्त था, इसलिए अन्यमनस्क भाव से किसी दिन उसकी अनुरोध-रक्षा करने का वचन देकर चाय पीता रहा।

चाय पीकर मैं टहलने निकल गया। लौटते समय देखा कि रास्ते में चन्द्रसिंह एक पत्थर के ढोंके पर बैठा ऊँघ रहा था। मुझे आते देखकर वह सावधान होकर खड़ा हो गया। उसकी बात से ज्ञात हुआ कि जहाँ से मैं गुजर रहा था, वह स्थान उसके गाँव से अत्यन्त निकट था, तथा वर्तमान अवसर रोगी को देखने के लिए नितान्त उपयुक्त था। मेरे एकमात्र बहाने के जवाब में उसने मेरा स्टेथस्कोप भी अपनी जेब से निकालकर दिखा दिया।

रोग तथा रोगियों से बिलकुल दूर रहने के अपने दृढ़ निश्चय को इस प्रकार टूटते देखकर मुझे थोड़ी झुँझलाहट तो अवश्य हुई, पर मैं चन्द्रसिंह की बात टाल न पाया।

छोटी, परन्तु साफ, कोठरी में एक व्यक्ति तखत पर कम्बल ओढ़े लेटा था। दूर से ही बतलाया जा सकता था

कि वह पंजाबी है तथा कुछ दिनों पहले काफी स्वस्थ रहा होगा। चेहरे तथा आँखों के पीलेपन तथा पेट का आकार देखकर थोड़ी ही परीक्षा के बाद यकृत के कैंसर का निदान निश्चित करने में कोई कठिनाई नहीं पड़ी। स्पष्ट था कि दित्तामल के जीवन के बहुत थोड़े दिन शेष हैं।

यह कटु तथा निराशापूर्ण निदान दित्तामल को बतलाने की आवश्यकता नहीं पड़ी। वह स्वयं सब समझता था। दूर से आती हुई मृत्यु की पग-ध्वनि वह स्पष्ट सुन रहा था, और जो अवश्यंभावी है उसके लिए अपने को संयत किये हुए था।

रोगी का कष्ट कम करने के लिए जो कुछ थोड़ा बहुत उपाय बतलाया जा सकता था, वह बतलाकर मैं वापस चला आया। परन्तु उसके व्यक्तित्व का कुछ ऐसा प्रभाव मेरे हृदय पर पड़ा कि उस दिन के बाद प्रायः नित्य ही घूमकर लौटते समय मैं उसकी कोठरी में बैठ जाता।

× × ×

मैं अपने को मनोविज्ञान का विशेषज्ञ समझता हूँ—कम से कम मरीज मुझे ऐसा ही समझते हैं, क्योंकि अन्तरतम की छिपी भावना को समझने और मानसिक कष्टों को दूर कर सकने की क्षमता मुझमें बतलाई जाती है।

परन्तु दित्तामल का मस्तिष्क, उसकी छिपी भावनाएँ तथा उसका चेहरा समझने में मुझे प्रारम्भ से कठिनाई का अनुभव हुआ। उसकी प्रत्येक बात में, प्रत्येक चाल-ढाल में, विरोधाभास था।

परिचय के प्रारंभिक सप्ताह में मुझे ऐसा जान पड़ता था कि मेरा बार-बार आना तथा चारपाई के पास रक्खे हुए ट्रंक पर बैठ जाना उसे अच्छा नहीं लगता था। परन्तु जैसे ही मैं उठकर जाने का उपक्रम करता वैसे ही उसके चेहरे पर ऐसी कातरता छा जाती कि मैं बहुधा फिर बैठ जाता।

'अकेला छोड़कर चले जाओगे तो शायद लौट कर जीता न पाओगे', यह बात उसके शिकन पड़े हुए मस्तक पर लिख सी जाती।

कभी तो ऐसा जान पड़ता था कि अपने पिछले जीवन के सम्बन्ध में कोई रहस्य उसकी जबान की नोक पर ही है। परन्तु कहते-कहते वह कस कर मुँह बन्द कर लेता और छत की ओर निर्निमेष दृष्टि से ताकने लगता।

कई दिनों के परिचय के बाद वह कुछ अधिक खुलकर बात करने लगा, परन्तु उसकी बातें बिलकुल पहेलियाँ होती थीं। अपने विषय में एक बात कहता, परन्तु दस मिनट बाद बिलकुल विरोधी बात कह जाता। स्पष्ट ही वह झूठ बोलता था, परन्तु झूठ का तारतम्य कायम रखने योग्य स्मरणशक्ति का उसमें अभाव था।

परिचय के तीसरे सप्ताह में उसके विषय में जो कुछ धारणा बना पाया वह यह थी कि वह पंजाबी था, यद्यपि उसने कई बार अपने को मराठा कहा। अधिक शिक्षित न था, परन्तु उसका यांत्रिकज्ञान अद्भुत था। कभी तो जान पड़ता था कि शायद किसी जहाज में खलासी रहा होगा, परन्तु कभी-कभी भौतिक विज्ञान के गहन प्रश्नों पर अधिकार प्रदर्शित करता था। पंजाबी तथा पहाड़ी का विचित्र मिश्रण बोलता था, परन्तु मुझे निश्चय है कि उसे अँगरेजी, फ्रेंच तथा जर्मन भाषाएँ बोलने का कामचलाऊ अभ्यास था। ऐसा मालूम होता था कि उसने कोई बहुत बड़ा काम किया है जिसका उसे गर्व है, तथा वह उसे दुनिया को बताने को उत्सुक भी है, पर साथ ही उस पर किसी अपराध की छाया भी ऐसी गहरी पड़ी हुई थी कि वह नितान्त किंकर्तव्यविमूढ़ था। उसका नाम साईं दित्तामल था और वह जिला मुलतान का निवासी था, यह बात तो मुझे बहुत बाद—उसकी मृत्यु के बाद—ज्ञात हुई।

× × ×

अँगरेजी में मरीज को 'पेशेण्ट' कहते हैं, जिसका शाब्दिक अर्थ है 'धीर' या 'धैर्यवान्'। परन्तु यथार्थ में उससे बढ़कर इम्पेशेण्ट अर्थात् अधीर और कोई नहीं होता। ऐसे मरीजों की संख्या कम नहीं होती जो अपने नियमित डाक्टर को भगवान् से थोड़ा ही घटकर समझते हैं। इसी प्रकार के कई भक्त मरीज मुझसे तुरन्त घर लौटने का निरन्तर आग्रह कर रहे थे। वर्षा भी प्रारंभ हो गई थी, इसलिए मैंने अपना शैल-प्रवास समाप्त करने का निश्चय कर लिया।

दित्तामल की दशा भी अब तेजी से बिगड़ती जा रही थी। भोजन से एकदम अरुचि हो गई थी। पानी भी पीने से वमन हो जाती थी। रक्ताल्पता खतरे की लाइन पार कर चुकी थी। अब उसका जीवन प्रदीप बुझने में देरी न थी।

दित्तामल को जब मेरे जाने का निश्चय ज्ञात हुआ तो वह बहुत उदास हो गया। बड़ी देर तक रोता रहा। समझाने बुझाने पर जब जरा शान्त हुआ तो ऐसा जान पड़ा कि अब मुझे कुछ बतलाने ही वाला है, पर पहले जैसा नाटक फिर हुआ और बात फिर जहाँ की तहाँ रह गई। चलते समय उसने कहा 'डाक्टर साहब, एक अर्ज करती है। मेरे ऊपर रहम कीजिये और सिर्फ एक दिन और रुक जाइये।'

मेरा असबाब बँध चुका था। सब लेना-देना चुकता कर चुका था, पर न जाने क्यों दित्तामल की बात टाल न सका। दूसरे दिन जब उसके पास पहुँचा तो वह शान्त था। तबीयत भी कुछ अच्छी जान पड़ती थी। मैं भी जानता था कि अब फिर भेंट न होगी, और वह भी इस बात को समझता था। साधारणतः जितनी देर बैठता था, उससे अधिक बैठकर जब चलने लगा तो उसने अपने बिस्तर के नीचे से कपड़े में लपेटा, सील किया एक पैकेट निकाला और मुझे देकर कहा 'डाक्टर साहब, इसे अपने पास रख लीजिये।'

मैं असमंजस में पड़ गया। एक नितान्त अपरिचित व्यक्ति, जिस पर दया चाहे जितनी आवे, पर जिसका चरित्र निश्चय ही संदेहास्पद था, और जो निश्चित रूप से शीघ्र ही मरने जा रहा था, मेरे ऊपर अकारण विश्वास करके एक धरोहर मुझे दे रहा था। बड़ी दुविधा में पड़ा कि लूँ अथवा न लूँ।

पैकेट प्रायः दस इंच लम्बा, आठ इंच चौड़ा तथा तीन इंच मोटा होगा। कपड़े के आवरण के नीचे एक जिल्ददार—रजिस्टर सा जान पड़ता था। मोटे चारखाने के पुराने कपड़े में सावधानी से लपेटा हुआ था। जोड़ सिले हुए थे, तथा उन पर लाख की मुहरें लगी थीं। एक ओर कापीइंग पेंसिल से अँगरेजी में लिखा था—"मेरी मृत्यु का निश्चित प्रमाण मिलने ही पर खोला जाय।"

क्षण भर में मेरे मस्तिष्क में कितने ही विचार बिजली की तरह चमक गये। इस पैकेट में चोरी के नोट अथवा अन्य बहुमूल्य कागज पत्र तो नहीं हैं जो कहीं मुझे अकारण झगड़े में फँसा दें। इत्यादि।

फिर भी अन्त में दित्तामल की करुण दृष्टि ने मुझे, उसका अन्तिम अनुरोध पालन करने के लिए विवश कर दिया, और उसे आश्वासन देता हुआ, (जिन्हें दित्तामल भी झूठ जानता था, और मैं भी) उससे विदा लेकर पैकेट लिए हुए अपने डेरे पर वापस आया।

उसी संध्या को काठगोदाम में रेल पर सवार होकर मैं घर चल दिया। चलने के पूर्व तीन पोस्टकार्डों पर अपना पता लिखकर चन्द्रसिंह को दे आया था, जिसमें वह दित्तामल के 'कुशल समाचार' देता रहे।

× × ×

घर पहुँचकर अपने व्यवसाय की टूटी हुई श्रृंखला जोड़ते हुए मुझे एक सप्ताह भी न बीता होगा कि चन्द्रसिंह के पत्र से दित्तामल का मृत्यु-संवाद मिला। उसने लिखा कि मरने के कुछ समय पूर्व तक दित्तामल के होश हवास बिलकुल ठीक रहे। वह अपना सारा सामान गाँव के लोगों में बाँट गया है, तथा अपने क्रिया कर्म के लिए भी पर्याप्त रुपया गाँव के एक प्रतिष्ठित व्यक्ति को दे गया है। चन्द्रसिंह ने यह भी लिखा कि मरने के पहले अन्तिम बात उसने मुझे यह सूचना देने को कही थी कि अब मैं उसकी डायरी पढ़ सकता हूँ तथा उसका जो भी उचित समझूँ उपयोग कर सकता हूँ।

अपने दैनिक कार्यक्रम से निश्चिन्त होकर रात के समय मैंने पैकेट की मुहरें तोड़ीं। कपड़े के अन्दर एक अखबार में लपेटा हुआ रजिस्टर निकला। चमड़े की बहुत मजबूत जिल्द बँधी हुई थी। जान पड़ता है कि रजिस्टर का काफी इस्तेमाल किया गया था, क्योंकि जिल्द के कोने बहुत घिसे हुए थे और पन्नों का कागज बहुत मैला तथा फटा हुआ था। रजिस्टर में ५६३ पृष्ठ थे तथा उसके लिखने में कई प्रकार की रोशनाई का प्रयोग किया गया था। कई पृष्ठों की लिखावट मिट गई थी अथवा अस्पष्ट हो गई थी।

सारा रजिस्टर एक डायरी के रूप में लिखा गया

था। अधिकांश भाग अँगरेजी में था, परन्तु कुछ स्थल जर्मन में थे। कम से कम दो स्थलों पर फ्रेंच का भी व्यवहार किया गया था।

पूरी डायरी पढ़ने में मुझे तीन सप्ताह से अधिक लग गया। फिर भी एक तिहाई से ऊपर पृष्ठ ऐसे हैं जिनका मैं कोई मतलब न लगा पाया। अस्पष्ट स्थलों में से कुछ तो 'कोड' में लिखे हुए थे और कुछ में गणित, यन्त्रशास्त्र तथा भौतिक विज्ञान की इतनी ऊँची बातें लिखी हुई थीं कि मेरी समझ के बाहर हैं।

डायरी के आकार, उसकी लेखन शैली की बेतरतीबी तथा उसमें वर्णित घटनाओं के बाहुल्य के कारण इस छोटे आकार के वक्तव्य में उसका संतोषजनक विवरण मुझे प्रारम्भ में असम्भव लगा। बहुत सोच-विचार के बाद आगे के वक्तव्य को मैंने तीन भागों में बाँट देने का निर्णय किया। पहले भाग में तो मैं दित्तामल की वह कथा संक्षिप्त रूप में लिख रहा हूँ, जो समूची डायरी पढ़कर तथा टुकड़े-टुकड़े जोड़कर मैं समझ पाया हूँ। कुछ ऐसे आवश्यक स्थल मुझे मिले, जिनको डायरी से जैसे का तैसा उद्धृत करना मैंने उचित समझा। यह दूसरे भाग में मिलेंगे। और अन्त में तीसरे भाग में मैं उन गहन प्रश्नों की ओर संकेत करूँगा जो दित्तामल से मिलकर तथा उसकी डायरी पढ़कर मेरे मस्तिष्क में उत्पन्न हुए हैं।

× × ×

ऐसा जान पड़ता है कि दित्तामल का जन्म पंजाब (अब पाकिस्तान) के मुलतान जिले में हुआ था। जिस वर्ष उसने हाई स्कूल पास किया, उसकी माँ उसे तथा उसकी छोटी बहन राजो को छोड़कर मर गई। पिता ने दूसरा विवाह कर लिया। विमाता के अत्याचार के कारण दित्तामल की पढ़ाई छूट गई और उसे घर से भागना पड़ा। थोड़े दिन तो कराची में उसने नौकरी की, पर अन्त में एक जापानी जहाज "कोकी मारू" पर उसे काम मिल गया। जहाज की नौकरी के सिलसिले में उसे देश-विदेशों की यात्रा का खासा अवसर मिला। डायरी के महत्त्वपूर्ण अंश का प्रारम्भ १९३७ से होता है जब दित्तामल जर्मनी के हैंबर्ग बन्दरगाह के निकट, जहाज बनाने के एक कारखाने में स्थायी रूप से नौकर हो चुका था।

फा० ५३

यह वह समय था जब भारत के ब्रिटिश विरोधी आन्दोलन से सभी प्रवासी भारतीयों को सहानुभूति थी। द्वितीय महायुद्ध के बादल छाये हुए थे। जान पड़ता है कि दित्तामल उन थोड़े से भारतीयों में था जो जर्मनी में रहते हुए वहाँ के अधिकारियों का विश्वास प्राप्त करने में समर्थ हुए थे।

नात्सीवाद के उदयकाल में जर्मनी के तीन बड़े वैज्ञानिकों से हिटलर की अनबन हो गई थी। इनमें से ग्लूटेनबर्ग ऐटमबम बनाने में करीब करीब सफल हो चुका था। यही नहीं अणु-शक्ति के द्वारा मशीनें चलाने का रहस्य भी उसे ज्ञात था। दूसरा वैज्ञानिक फाकेनहोम जेट तथा राकेट का विशेषज्ञ था। तीसरे की विशेषता क्या थी यह दित्तामल की डायरी से स्पष्ट नहीं होती। उसने केवल यही लिखा है कि वह 'मिट्सी-फुंकेन' बनाता था। यह प्रयत्न करके भी मैं समझ न पाया कि 'मिट्सी-फुंकेन' क्या चीज है।

शायद इन तीनों वैज्ञानिकों ने नात्सीवाद स्वीकार करने से इन्कार कर दिया था। पहले तो हिटलर ने इनको कैद कर लिया, पर बाद को इनसे समझौता कर लिया। समझौते के अनुसार इन्हें गुप्त रूप से अफगानिस्तान भेज दिया गया। इन तीन वैज्ञानिकों के साथ ४७ अन्य व्यक्ति भी भेजे गये जिनमें एक दित्तामल भी था।

रूस, अफगानिस्तान, काश्मीर तथा चीन, इन चारों देशों की सीमाएँ काश्मीर के उत्तर में मिलती हैं। वहीं गहरी घाटी में बहुत पहले से जर्मन गुप्तचरों का एक अड्डा था। उसी स्थान पर एक कारखाना स्थापित किया गया था। संभवतः ईरान तथा उत्तरी अफगानिस्तान के निर्जन प्रदेशों में से होकर हजारों मशीनें तथा सामग्री इस कारखाने को पहुँचा दी गई थीं। पता नहीं किस प्रकार इस कारखाने में बना हुआ सामान जर्मनी पहुँचाया जाता था। हिटलर को आशा थी कि जब वह रूस जीत लेगा तब भारत पर आक्रमण करने में उसे इस अड्डे से सहायता मिलेगी।

जान पड़ता है कि अन्त में इन वैज्ञानिकों ने हिटलर को धोखा दिया। कौशल से समझौता करके इन लोगों

ने उसे विश्वास दिला दिया था कि अफगानिस्तान के कारखाने में शान्तिपूर्वक वैज्ञानिक अनुसंधान करके वे युद्ध में हिटलर को सहायता देंगे, पर जैसे ही उनके उपयोग की काफी सामग्री एकत्र हो गई, उन्होंने जर्मनी से प्रायः संबन्ध-विच्छेद कर लिया। थोड़ा बहुत सामान तो जर्मनी अवश्य भेजा जाता रहा, पर कारखाने में अधिकतर राकेट, जेट तथा अणु संचालित इंजनों पर ही काम होता था।

१९४० में जब जर्मनी के प्रबल पराक्रम के आगे फ्रांस ने हथियार डाल दिये, तब कारखाने के प्रमुख शिल्पियों तथा वैज्ञानिकों ने आपस में परामर्श किया। बहुत वाद-विवाद के बाद इस बात पर सब लोग एक मत हुए कि अब जर्मनी की विजय निश्चित है और हिटलर विजय के बाद हम लोगों को कभी क्षमा न करेगा।

फाकेनहोम बहुत दिनों से जेट तथा राकेट से चालित अन्तरिक्ष-यान की सहायता से मंगल ग्रह पहुँचने की योजना बना रहे थे। उन्होंने यह प्रस्ताव रक्खा कि जब हिटलर के हाथों मरना है, तब क्यों न मंगल ग्रह पहुँचने का प्रयत्न किया जाय? यदि जीवित लौटेंगे तो अक्षय कीर्ति मिलेगी और यदि न लौटे तो मृत्यु से अधिक और क्या होगा?

हिटलर का आतंक इतना फैला हुआ था कि इस योजना पर सभी सहमत हो गये और अन्तरिक्ष-यान बनाने का काम तुरन्त प्रारम्भ कर दिया गया। इस बीच में युद्ध की परिस्थिति और भी अधिक भयंकर हो उठी थी। रूसी सेनाएँ तेजी से पीछे हट रही थीं। पर्ल हार्बर के आक्रमण के फलस्वरूप अमेरिका का पौरुष मूच्छित हो गया था। जापानी सेनाएँ सिंगापुर पर अधिकार करके बर्मा में बराबर आगे बढ़ रही थीं।

कारखाने में दिन रात काम होता था, फिर भी यही डर लगा था कि अन्तरिक्ष यान तैयार होने के पूर्व ही हिटलर विजयी न हो जाय।

प्रायः पौने दो वर्ष के अथक परिश्रम के बाद तैयारियाँ पूरी हो गई। काराकोरम पर्वतमाला की गहरी उपत्यका में राइफल की गोली की बनावट का हमारा अन्तरिक्ष-यान खड़ा था। उसकी उँचाई २६३ फुट थी, तथा उसमें एक के ऊपर एक-नौ खण्ड थे। सबसे नीचे का खण्ड सबसे अधिक बड़ा तथा जेट संचालित था। उसके ऊपर राकेट तथा उसके भी ऊपर तीसरा अणु-शक्ति संचालित था। चौथे, पाँचवें तथा छठें में यही क्रम दुहराया गया था। सातवें खण्ड में आवश्यक यन्त्र, मशीनें, खाद्य सामग्री, जगाया हुआ जल, जमी हुई हवा, आक्सीजन तथा दवाइयाँ थीं। आठवें खण्ड में यात्रियों के रहने का स्थान, रेडियो प्रेक्षक, रेडियो ग्राहक, तथा यान संचालन की मशीनरी थी। सबसे ऊपर के खण्ड में ठोकर लगने के कारण यान को टूटने से बचाने के उपकरण थे।

यान इस प्रकार बनाया गया था कि सबसे नीचे जेट का मसाला जैसे ही समाप्त हो जायगा, वैसे ही वह खण्ड कटकर मुख्य यान से अलग हो जायगा। इसी प्रकार तीन खण्डों के जलकर गिर जाने तक हम मंगल ग्रह पहुँच जायेंगे। तथा चौथे, पाँचवें और छठे के सहारे फिर पृथ्वी पर वापस आवेंगे।

समूचा यान फौलाद की दुहरी दीवारों का बना था। दोनों दीवारों के बीच हीलियम गैस भरी हुई थी। यह इसलिए किया गया था जिसमें वायुमण्डल की रगड़ से उत्पन्न गर्मी यान के भीतरी भाग पर प्रभाव न डाल सके।

दित्तामल की डायरी में अन्तरिक्ष-यान के संचालन, तथा मंगल ग्रह के संबन्ध में बहुत सा यान्त्रिक और वैज्ञानिक विवरण है। उसका संक्षिप्त वर्णन भी देने के लिए हमारे पास स्थान नहीं है। अधिकांश तो स्वयं मेरी समझ में नहीं आया है।

इतना बतला देना तो फिर भी आवश्यक है कि अन्तरिक्ष-यान के चलाने के लिए फ्लोरीन तथा आक्सिजन का मिश्रण काम में लाया गया था।

यहाँ पर कुछ विवरण मंगल ग्रह के संबंध में भी दे देना आवश्यक है। मंगल ग्रह सूर्य की परिक्रमा करनेवाले ग्रहों में पृथ्वी से निकटतम ग्रह है। पृथ्वी से उसकी दूरी प्रायः साढ़े तीन करोड़ मील है। मंगल ग्रह पृथ्वी से आकार में छोटा है, तथा उसके वायुमण्डल का घनत्व भी पृथ्वी के वायुमंडल से कम है। इन सब बातों पर गंभीर विचार करके इन सबके प्रतिकार का प्रबंध कर लिया गया था।

जब सब तैयारी हो गई तब यह प्रश्न आया कि कौन कौन मंगल ग्रह की यात्रा करने को तैयार हैं।

६ अक्टूबर १९४१ को कारखाने के पचासों आदमी एक बड़े कमरे में एकत्र हुए।

डा० फाकेनहोम ने अपने भाषण में वर्तमान परिस्थिति पर प्रकाश डाला। उन्होंने कहा कि "आपके सामने दो रास्ते हैं। दोनों में खतरा है। यदि आप लोग यहीं रहते है और जीत जर्मनी की होती है, तो किसी की खैरियत नहीं। यदि जर्मनी की पराजय होती है, तो अँगरेज और रूसी हमारी बात पर विश्वास नहीं करेंगे और घुमा-फिराकर दशा वही होगी। दूसरी ओर यदि आप मंगल ग्रह की यात्रा पर जाते हैं, तो भी खतरा कम नहीं। साढ़े तीन करोड़ मील की यात्रा है। संभावना तो यही है कि हममें से कोई भी मंगल ग्रह जीवित नहीं पहुँचेगा। यदि पहुँच भी गया तो वहाँ क्या दशा होगी और वहाँ से लौटना भी संभव होगा, यह कोई नहीं बतला सकता। हमारे अंतरिक्ष यान में केवल २० व्यक्तियों के लिये स्थान है। फिर केवल वे ही आदमी इस यात्रा में जाने पावेंगे जिनका स्वास्थ्य इस योग्य होगा। जो यहाँ रह जायँगे उन्हें मैं कोई सलाह नहीं दे सकता। उनके लिए भारत, चीन, रूस तथा अफगानिस्तान के मार्ग खुले हुए हैं। हम उन्हें रुपया देंगे तथा भोजन। अपने अपने भाग्य की परीक्षा कीजिए।"

भाषण के बाद कितने ही लोगों ने तरह तरह के प्रश्न पूछे। अन्त में तैंतीस व्यक्तियों ने अन्तरिक्ष यात्रा के पक्ष में मत दिया। परन्तु जब उनकी डाक्टरी परीक्षा हुई, तो केवल सत्रह इस योग्य निकले जो यात्रा के योग्य सिद्ध हुए। दित्तामल भी इन सफल सत्रह व्यक्तियों में था। शेष अपना अपना सामान लेकर जिधर जिसे सुविधा समझ पड़ी जाने को तैयार हो गये।

८ अक्टूबर १९४१ को प्रातः १० बजे सत्रहों यात्रियों ने भोजन किया, भूमि पर लेटकर धरती माता को प्रेम से चूमा तथा अन्तरिक्ष-यान में अपने अपने स्थान पर बैठ गये।

कारखाने में यत्र तत्र टाइम बम लगा दिये गये थे जिससे यान के चलने के घण्टे भर बाद सारा कारखाना ध्वस्त हो गया होगा।

ठीक ग्यारह बजे भयानक शब्द के साथ जेट छूटा तथा यान अपनी अद्भुत यात्रा के लिये चल पड़ा।

× × ×

दित्तामल की अन्तरिक्ष यात्रा, मंगल ग्रह पर पहुँचना तथा वहाँ का विवरण, वापसी यात्रा तथा उसके बाद के हाल के संबंध में, उसकी डायरी के चुने हुए उद्धरण देने से बढ़कर पाठकों के पास उसका संदेश पहुँचाने का और कोई उपाय मेरी समझ में नहीं आता।

८ अक्टूबर १९४१—जेट को ऐसा धक्का लगा है, कि हम सत्रहों चूरचूर हो गये हैं। सबको अपनी अपनी पड़ी है, पर मुझे जान पड़ता है हममें से कम से कम तीन की तो मृत्यु हो गई है।

हीलियम के आवरण के बावजूद सारा यान तप रहा है। क्या हम सब सचमुच जीवित रहेंगे?

९ अक्टूबर—हम दस मील प्रति सेकेण्ड की चाल से जा रहे हैं। एक सेकेण्ड में दस मील तो एक मिनट में ६०० मील और घण्टे में छत्तीस हजार मील। इस हिसाब से साढ़े तीन करोड़ मील पार करने में ९४४ घण्टे लगेंगे-अर्थात् प्रायः चालीस दिन।

अब गर्मी कम हो गई है। पृथ्वी का वायुमंडल केवल साढ़े तीन सौ मील ऊँचा है। उसकी रगड़ की गर्मी से जल जाने का खतरा तो केवल ३५ सेकेण्ड था। अब कोई चिन्ता नहीं।

पाँच यात्रियों की मृत्यु हो गई है। इनमें से चार जर्मन थे तथा एक यहूदी। लाशें फेंकने का कोई उपाय नहीं।

कल हम चन्द्रमा के पास से होकर गुजरे। उस समय होश हवाश ठीक न थे। पाँच सौ मील से अधिक दूर न रहा होगा। लाल लाल तथा कुछ अपरिचित सा दिखलाई पड़ रहा था, जो पृथ्वी से दूर रहता है। पता नहीं हमारी आँखें धोखा दे रही थीं क्या? दूरबीन से कई जगह ज्वालाएँ दिखाई पड़ीं। ज्वालामुखी या जीवित प्राणियों की बस्तियाँ? पृथ्वी की आकर्षण शक्ति के बंधन से मुक्त होने के कारण बड़ा विचित्र लग रहा है। यदि अपनी अपनी आराम कुर्सियों से हम बँधे न होते तो सारे कमरे भर में तैरते फिरते।

२८ अक्टूबर—उल्काओं के कारण बड़ा खतरा उत्पन्न हो गया है। सारे एरियल टूट गए हैं। पृथ्वी का कोई संवाद न पा सकते हैं और न वहाँ भेज ही सकते हैं।

दो और साथी ब्लूशर तथा श्मिट् मृतप्राय हैं। कल से रक्तवमन कर रहे हैं। मुझे भी बार बार मतली होती है। ब्लूशर तथा श्मिट् समाप्त हो गये। बाकी बचे दस।

१४ नवम्बर—मंगल ग्रह निकट है। दो दिन में वहाँ पहुँच जाना चाहिये। चारों ओर गेरुआ ही गेरुआ रंग है। उत्तरी ध्रुव सफेद चमक रहा है। पृथ्वी अथवा चन्द्रमा की तरह पहाड़ कहीं दिखाई ही नहीं पड़ते। उत्तर से दक्षिण की ओर ध्रुव से मध्य की ओर रेखाएँ स्पष्ट दिखलाई पड़ रही हैं। अधिकतर दुहरी हैं। क्या यही नहरें हैं?

१६ नवम्बर—आर्कषण शक्ति का अनुभव अब फिर होने लगा। प्रत्येक वस्तु में भार आ गया है। पृथ्वी छोड़े ४० दिन हो गये। मंगल ग्रह तेजी से हमारी ओर दौड़ा-सा आ रहा है। क्या हम टकरा जायँगे?

फाकेनहोम उलटे राकेट छोड़ रहा है जिसमें हमारा वेग कम हो जाय। अगला क्षण निश्चय करेगा कि हम जीवित उतरेंगे अथवा मृत।

१७ नवम्बर (१ बजे रात्रि)—घना अंधकार, जोर का धक्का लगता है। शायद हम मंगल ग्रह के धरातल पर हैं।

अब पृथ्वी पर जीवित लौटें अथवा नहीं, पर पृथ्वी से बाहर एक ग्रह पर उतरने वाले हम दस पहले जीवित मानव हैं। हम न सही पर हमारा नाम तो अमर हो गया। पर हमारा नाम जानेगा कौन?

१७ नवंबर (८ बजे प्रात:)—हमने अल्यूमिनियम मिले हुए इस्पात के जिरहबख्तर पहन लिये हैं। जलपान कर चुके। आक्सीजन के पीपे पीठ पर बाँधे जा चुके। मास्क भी पहन लिये। अब हम मंगल की भूमि पर पैर रखने जा रहे हैं। ईश्वर रक्षा करे।

हमारे अन्तरिक्ष-यान का 'ट्रैप' दरवाजा खुला तो आँखें चौंधिया गईं। यान बालू में आधा गड़ा हुआ है। कुशल है कि ट्रैप ऊपर रहा नहीं तो निकलना कठिन हो जाता।

बाहर बहुत महीन गहरे गेरुए रंग की बालू है। कहीं कोई हरियाली या बस्ती के चिन्ह नहीं।

दियासलाई जलाने पर बहुत हलकी शिखा निकली। खैर हवा में आक्सीजन है। यद्यपि मात्रा बहुत कम है। वायु एक काँच की बोतल में लेकर यान के अंदर परीक्षा की गई। नाइट्रोजन ५४ प्रतिशत (पृथ्वी पर ७८ प्रतिशत) आक्सीजन १९ प्रतिशत (पृ० पर २१ प्र० श०) कार्बन डाइ-आक्साइड, बहुत ही कम (पृ० पर ·०३ प्र० श०) शेष भाग उन कई गैसों का निकला जो पृथ्वी के वायुमंडल में नहीं होतीं।

कार्बन डाइ-आक्साइड तथा आक्सीजन की कमी इतनी अधिक है कि मनुष्य इस वायुमंडल में जीवित नहीं रह सकता। शायद अभ्यास से संभव हो।

लाशें निकालकर दफन कर दी गईं। जमीन समतल नहीं है, पर पहाड़ भी नहीं हैं। जान पड़ता है युगों की सर्दी-गर्मी और हवा से वे घिस गये हैं।

तीन तीन आदमियों की दो पार्टियाँ उत्तर तथा पश्चिम की ओर चलीं। मैं, ग्लूटनबर्ग तथा यहूदी टिट्स्की उत्तर वाली पार्टी में हैं। हम लोगों के पास छ: छ: घण्टे के लिये आक्सीजन है।

३ व्यक्तियों के साथ फाकेनहोम यान में ही रुके हुए हैं।

२॥ घण्टे बराबर उत्तर की ओर बढ़ते गये। एक भी पक्षी, पशु अथवा वृक्ष नहीं दिखाई पड़ा। दूर—प्राय: ५०-६० मील दूर ऊँचे ऊँचे खँडहर से दिखाई दिये। खंडहर हैं या पहाड़? हम लोग लौट आये।

पश्चिम वाली पार्टी नहीं लौटी। रात भर प्रतीक्षा की गई। उनके पास भी छ: घण्टे का आक्सीजन था। निश्चित है कि वे मर गये। दस में से तीन गये, बाकी रहे सात।

१८ नवंबर—फाकेनहोम, मैं तथा एक और जर्मन पश्चिम की ओर की पार्टी में गये। दो की एक पार्टी दक्षिण गई। दो व्यक्ति यान पर रहे।

दो-ढाई मील आगे चलते ही विशाल पत्थर की इमारत दिखलाई पड़ी। टूट फूट गई थी। पास ही कल की पार्टी के तीनों व्यक्तियों की लाशें मिलीं। संभवतः इमारत के निरीक्षण में उन्होंने अधिक समय लगा दिया। आक्सीजन समाप्त हो जाने के कारण लौट न पाये।

इमारत में कहीं सीढ़ियाँ नहीं हैं बड़ी कठिनता से अंदर प्रवेश किया। पत्थर की दीवारों पर उभरे हुए चित्र। बीच में मूर्त्तियों की एक पंक्ति। ग्लूटनबर्ग का मत है कि यह खँडहर या तो कोई संग्रहालय है जिसमें मंगल ग्रह का इतिहास चित्रित है, अथवा एक विद्यालय। आक्सीजन खर्च हो जाने के भय से अधिक देखे बिना लौटना पड़ा।

दक्षिणवाली पार्टी पहले ही लौट आई थी। उन्होंने रिपोर्ट दी कि एक घाटी में बहती हुई नदी के किनारे उन्हें कुछ गुफाएँ मिलीं जिनमें छः छः फुट ऊँचे, पीले रंग के, जोंक के आकार के प्राणी दिखाई पड़े। वे जीवित थे। हिलते-डुलते थे—जैसे झूम रहे हों। थोड़ी-थोड़ी देर पर उनके मध्य भाग से बिजली जैसी चिनगारियाँ निकलती थीं। अधिक परीक्षण का समय नहीं था। इसलिये वे लोग लौट आये।

जो दशा पृथ्वी की आज है, वह मंगल ग्रह की लाखों वर्ष पहले थी। उस समय वहाँ के निवासियों की सभ्यता आधुनिक पृथ्वी को देखते कई गुना ऊँची पहुँच चुकी थी। जिस इमारत का जिक्र ऊपर किया गया है, उसमें मंगल ग्रह का इतिहास प्रारंभ से लेकर संभवतः एक लाख वर्ष पीछे तक का अंकित था।

× × ×

पाँच दिन मंगल ग्रह पर रहने के बाद बचे हुए सातों यात्रियों का स्वास्थ्य तेजी से गिरने लगा। परन्तु सब प्रबंध करते समय २४ घण्टे लग गये, और २० नवंबर को जब हम चलने को तैयार हुए तब फाकेनहोम, ग्लूटेनबर्ग तथा दो यहूदी जर्मनों के प्राण निकल चुके थे और लौटते समय मेरे साथ केवल दो व्यक्ति शेष बचे थे। मेरी भी तबीयत बहुत खराब थी, परंतु मेरे दोनों साथियों की दशा चिन्तनीय थी।

जैसे तैसे २० नवंबर १९४१ को हम लोग मंगल ग्रह से चल पड़े। रास्ते में कोई ऐसी उल्लेखनीय घटना नहीं हुई जिसे लिखकर इस कथा का कलेवर बढ़ाया जाय। इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि ३८ दिन की अंतरिक्ष-यात्रा के बाद हम लोग पृथ्वी माता के वायुमंडल रूपी अंचल में फिर आ पहुँचे।

दित्तामल इस अवसर पर बड़ी चिन्ता प्रकट करता है कि कहीं अंतरिक्ष-यान समुद्र में न गिर पड़े। परन्तु अन्त में वह मिस्र के रेगिस्तान में गिरा। उन दिनों मिस्र पर जर्मन सेनायें बम वर्षा कर रही थीं, इसलिये सैनिक मोर्चों से सैकड़ों मील दूर गिरे हुए अन्तरिक्ष यान की ओर किसी का ध्यान नहीं गया।

किस प्रकार गिरते पड़ते अपने दो साथियों के साथ दित्तामल कैरो के फौजी अस्पताल में भरती हुआ, तथा किस प्रकार उसे पूर्ण स्वास्थ्य लाभ करने में दो वर्ष लगे, यह लंबी कहानी है। कालक्रम से अस्पताल छोड़कर छः वर्ष के लंबे प्रवास के बाद अपनी जन्म-भूमि मुलतान पहुँचा। अपने दो साथियों के विषय में उसने लिखा है कि एक की मृत्यु का तो उसे पता है, पर दूसरे का कुछ हाल ज्ञात नहीं।

भारत-विभाजन-काल के रक्तपात के अवसर पर वह अपनी छोटी बहन राजो के साथ शरणार्थी रूप में बंबई पहुँचता है। इसके बाद गोल मोल वाक्यों में जो कुछ लिखा है, उससे जान पड़ता है कि बंबई में उसके किसी पड़ोसी ने राजो का किसी रूप में अपमान किया, जिससे क्रुद्ध होकर दित्तामल ने उस पड़ोसी की हत्या कर डाली, और भाग कर छद्म वेष में पहाड़ पर उस स्थान पर रहने लगा जहाँ अन्त में उसकी मृत्यु हुई।

तिलोत्तमा

श्री निरंकुश एम० ए०

घटना पौराणिक काल की है। अष्टाशीति सहस्र ऊर्ध्व-रेताग्रों (अठासी हजार बाल ब्रह्मचारियों) और पंचाशत् सहस्र (पचास हजार) गृहस्थ संतानवान् ऋषियों, वरुण, वासव विभवेश (कुबेर), विसर्गपति (यमराज) एवं वृषकेतु के साथ विरंचि महाराज मध्याह्नाहार (लंच) में संलग्न थे; तभी योगाचार्य सनत्कुमार के मुख में कुटकू बोला। महातपस्वी ने बल प्रयोग द्वारा उसे दबा दिया। आगे चलकर दक्ष, प्रचेता, पुलह, मरीचि, कश्यप, अत्रि, भृगु, वशिष्ठ, गौतम, अंगिरा, पुलस्त्य, क्रतु, प्रह्लाद, कर्दम, आंगिरस, अगस्त्य, मार्कण्डेय, जमदग्नि, भारद्वाज, संवर्त, च्यवन, ऋष्यश्रृंग, असित, देवल, जैगीषव्य, ऋषभ, जितशत्रु, महावीर्य और मणि आदिक सभासदों के दाँत भी रपटे, किंतु शिष्टाचार के नाते वे मुँह बंद किये भोजन करते रहे। मगर जब महाभाग दुर्वासा के निरद संपुट में वज्रकणी छिदी तो वे बम के गोले की भाँति फट पड़े। ब्रह्माजी आप्रच्छन्न, पर हकलाते हुए, बोले "कांबलिकियूष में कुक्कुट बोल रहे हैं।" उनकी इस बेतुकी बात पर सारा खाऊ समाज हँसने लगा। सवा लाख के लगभग मुक्तात्माओं को महर्षि एक साथ शाप देने के लिए जैसे ही उठकर खड़े हुए, तैसे ही चतुरानन महोदय ने ढाई पाव वजन का एक विशाल विंदुमोदक उनके मुख में डाल दिया जिससे भारी अनर्थ बच गया। ज्वालामुखी मुनि लड्डू पर लड्डू सटकते जाते थे तिस पर भी उनकी क्रोधाग्नि शांत नहीं होती थी। अन्य कोई उपाय न देख-कर विधाताजी ने अपने सूपकार (खानसामा) शालिपूप सेन को बुलवाया और सबके सामने मुर्गा बनने का आदेश किया। बेचारा वेतनभोगी, टाँगों के बीच में सिर डाल और दोनों हाथों से अपने कानों को पकड़कर ताम्रचूड़ के समान बद्ध भूमि पर बैठ गया किंतु लम्बोदर होने के कारण उसकी देह का संतुलन अधिक देर तक स्थापित न रह सका और वह कुकड़ू कूँ करने लगा। उग्रजी का क्रोधमान भी पतनोन्मुख हो चला था, अतएव रसोइये को छुट्टी मिलने में अधिक विलम्ब नहीं हुआ। जिस समय अक्षवाट (सर्कस) में यह पाशविक लीला हो रही थी, उसी वक्त पुष्ट नाग-पुरी संतरे के अनुरूप उभरे हुए स्निग्ध गातवाला संतरी झल्लसिंह आया और दोनों पदों को जोड़कर ब्रह्मलोका-धिपति से बोला "प्रभो! निष्कंटक कपाल (घुटी चाँद) पर उत्कंठित शिखा (फुरफुराती हुई चुटिया) वाले वही सज्जन आये हैं जिनका नाम मैं बार बार भूल जाता हूँ।"

"महामना नारद पधारे होंगे। उन्हें सादर लिवा लाओ।" प्राची दिशा में स्थित मुख से विधिराय ने कहा।

कुछ ही क्षणों में नारायण नारायण का नाद करते हुए वीणापाणि आ धमके। सभी लोगों ने खड़े होकर उनका अभिवादन किया और 'कल्याण हो' का आशीर्वाद पाकर पुनः अपने अपने आसनों को ग्रहण कर लिया। नारद बाबा के लिए तत्काल ही एक कूर्म-पृष्ठ-चतुष्पदी (मेज) और उत्शीर्ष चतुष्की (कुर्सी) लगा दी गई और विविध खाद्य पदार्थों से संयुक्त थाल परसकर आ गया। देवर्षि ने गृद्ध दृष्टि से भोजन के अवयवों पर निगाह फेरते हुए कहा "यह बिना छौंक लगी सब्जियाँ किसके लिए आई हैं? न राजिकाक्त (रायता) दिखलाई पड़ता है और न शुंठी प्रपानक (सोंठ)। पर्पट भी अनुपस्थित है। यह क्या माजरा है। शष्कुलियों (पूड़ियों) और माषगर्भाओं (कचौड़ियों) के स्थान पर मोटी-मोटी करपट्टिकाएँ (रोटियाँ) रक्खी हुई हैं। मिष्टान्न में केवल नुकती के दो लड्डू विराजमान हैं। कम से कम मंजिकाशिखरिणी तो मँगाई होती। दाल भी पँच-मेल मालूम पड़ती है। क्या ब्रह्मलोक में साप्ताहिक अवरति दिवस है जो सुरों का आधिक्य और व्यंजनों का अभाव दृष्टिगोचर हो रहा है या कोई पातक-वातक चल रहा है? यह भी समझ में नहीं आता कि इन्द्र, कुबेर, यमराज और इतने सारे योगी, भोगी, सब के सब एक साथ बैठे चुपचाप रोटी कैसे जीम रहे हैं। ऐसा अनाकर्षक भोजन तो स्वर्ग

के अनाथालय में भी नहीं पकता। सदानंद बतलाओ न, क्या बात है।"

प्रजापति के उत्तर देने से पूर्व ही, मार्कण्डेय मुनि बोल उठे, "तुम तो ऐसे बन रहे हो जैसे कुछ जानते ही नहीं। इन्द्रदेव को अमरावती छोड़े हुए पूरे तीन मास व्यतीत हो चुके हैं। समझे! देवलोक की सारी जनता ब्रह्मपुरी की मंदुराओं (अस्तबलों) में टिकी हुई है। सर्वसाधारण के पेट में आधी छटाँक से अधिक जौ के सत्तू नहीं पहुँच पाते। पद्म-योनि बेचारे भी क्या करें। पद्मनाभ की भाँति यह श्रीसंपन्न तो हैं नहीं। इनके भक्तों की संख्या भी अत्यल्प है। जहाँ विष्णु की उपासना के लिए घर घर में लक्ष्मीनारायण की मूर्त्ति विराजमान मिलेगी वहाँ इनकी पूजा के लिए कुल त्रिभुवन में घूमकर एक दर्जन मठ और मंदिर भी खोज निकालना दुर्लभ होगा। ऐसी दशा में यही क्या कम है कि समृद्ध न होते हुए भी, इन्होंने हम लोगों को सहर्ष शरण दे रक्खी है?"

"मैं तो अब भी कुछ नहीं समझा। नारायण नारायण। पहेलियाँ बुझाने से तो यह अच्छा होगा कि आप लोग स्पष्टोक्ति द्वारा मेरी शंका का निवारण कर दें।" धन्याक अवलेह में (धनिये की चटनी में) पोरा डुबोकर उँगली चाटते हुए नारदजी ने कहा।

"बड़े भोले हो न जो कुछ समझ ही नहीं सके। सारे ब्रह्मांड की परिक्रमा लगाते फिरते हो मगर इस मामले में कैसी अविश्वसनीय अनभिज्ञता प्रदर्शित कर रहे हो। भगवद्भक्ति का मुलम्मा चढ़ा होने पर भी तुम्हारी धूर्तता कभी कभी प्रकट हो ही जाती है।" जमदग्नि ने कहा।

"नहीं, यह बात नहीं है। मैं गत पाँच मास से बाहर नहीं निकला, इसीलिए सामयिक घटनाओं से अपरिचित सा हो गया हूँ।" डकार लेते हुए नारदजी ने कहा।

"तो सुनो, सुन्द और उपसुन्द को तो जानते ही होगे।" विष्णुजी बोले।

"वल्दियत भी बतलाते चलोगे तो समझने में आसानी रहेगी।" नारदजी के मुख से निकला।

"अरे भाई! निकुम्भ के लड़के हैं। हिरण्यकशिपु के कुटुम्बी।" अंगिरा ने फरमाया।

"वाह मुनिराज! आपने भी परिचय देने में क्या ग्रेंड कार्ड वाले रूट को पसंद किया है। निगाह के सामने प्रह्लादजी बैठे हैं। इनकी ओर संकेत करके आपका काम नहीं चल सकता था जो इतने दूर की कौड़ी लाए? और यह हिरण्यगर्भ, सी-सी कैसे करते जा रहे हैं। खाने में तो मिर्चों का नाम तक नहीं है फिर इन्हें यार्ड में खड़े इंजिन की भाँति सिसकारने की कौन-सी आवश्यकता आ पड़ी।" नारदजी बोले।

"महामान्य! कल वामकक्ष की एक दाढ़ उखड़-वाई थी। अश्विनीकुमार का हाथ काँपने लगा है। उन्होंने कई झटकों में उसका उन्मूलन किया। अनावश्यक खींचा तानी के फलस्वरूप सारे जबड़े में टीस मच रही है।" ब्रह्माजी ने उत्तर दिशा में स्थित मुख से उत्तर दिया "बिना फीस दिये दाँत उखड़वाने में टीस नहीं तो क्या खीस मिलेगी? आप लोगों के यहाँ रिटायर होने का तो नियम ही नहीं। या तो पद भंग होता है और या प्राण भंग। किसी मध्यम मार्ग का अनुसरण करना उत्तम अथवा अधम पुरुषों को भाता ही कहाँ है। अब तो अश्विनी-कुमारजी को यमराज का कार्यभार सँभालने को दे दिया जावे तो देवलोक के बजट में बचत दिखलाई देने लगेगी। वैसे भी भेषजवृतिकों के लिए कहा जाता है "वैद्यराज नमस्तुभ्यं यमराज सहोदर।" नारदजी बोले।

"आप तो ठठोली करते हैं" आत्म-भू ने कहा।

"यह भी एक ही कही। भला आप जैसे जरद्गवों (बुड्ढे बैलों) से भी क्या मजाक किया जावेगा। अच्छा जाने दीजिए इस बात को। यह बतलाइए सुन्द, उपसुन्द ने क्या किया है।" नारदजी ने पूछा।

"उन दोनों राक्षसों ने इन्द्रलोक, मर्त्यलोक और पाताल-लोक तीनों को जीतकर वहाँ की निरीह जनता को त्रस्त कर रक्खा है। देवता तो ब्रह्मलोक में आकर ठहर गये हैं। उनके पानी-पत्ते का प्रबन्ध ब्रह्माजी ने किसी न किसी प्रकार कर ही दिया है, मगर हम पृथ्वी के वासी क्या करें? हमें तो परलोकगमन के लिए आज्ञापत्र (वीसा) भी सहज नहीं मिलता। दुष्टों ने यज्ञोपवीत पर सेल्स टैक्स लगा दिया है।" एक दग्धकूर्च शरणार्थी ने कहा।

"जनेऊ पर कर तो इतना भारी नहीं मालूम पड़ता क्योंकि उसके बदलने की कौन रोज-रोज जरूरत पड़ती है किन्तु कमण्डल-कर की अवाप्ति से सारे साधु जनों का नाक में दम हो गया है।" एक ऋषि बोले।

"ब्रह्मसूत्र पर बिक्री-कर की क्या दर मुकर्रर की गई है।" नारद ने पूछा।

"दो पैसे रुपया।" एक जटाधारी ने उत्तर दिया।

"और कमण्डल-कर किस प्रकार उगाहा जाता है?" नारदजी ने प्रश्न किया।

"बिलकुल उसी तरह जैसे आय-कर लिया जाता है। भिक्षुक अथवा भिक्षुणी दिन भर में गा-बजाकर या रो-पीटकर जो कुछ नाज-पानी, पैसा-टके इकट्ठा कर पाते हैं, उनका आधा भाग राजकीय कोष में चला जाता है।" एक पार्थिव पुरुषार्थी ने जवाब दिया।

"और क्या परेशानी है?" नारदजी ने पूछा।

"देववाणी का उदारतापूर्वक तिरस्कार किया जा रहा है। हम जटिलों के लिए 'मुर्गकेश' शब्द का निर्माण किया गया है और मुर्गों को 'चन्द्रचूड़' की संज्ञा दी जाने लगी है। इ, ए, ओ और ऋ को अ में मात्रा का आरोप कर व्यक्त किया जाता है। पेटफटे 'ष' को भाषा की सर्विस से निकाल दिया गया है। 'भ' को 'झ' की भाँति लिखने लगे हैं। हर चीज को प्राप्त करने के लिए डपोरशंख बनना पड़ता है। (क्यू लगाना होता है, 'ड' की आकृति के अनुसार पंक्तिबद्ध होना पड़ता है।)" मर्त्यलोक से सद्य पधारे हुए एक मुछंदरनाथ ने उत्तर दिया।

"गौ, ब्राह्मण और यज्ञकर्म आदि की क्या दशा है?" नारदजी ने सवाल किया।

"बस कुछ कहते नहीं बनता। गो-सेवा के स्थान पर महिष-पालन को राजकीय संरक्षण दिया गया है। मत्स्य और मक्षिका और मशक विकास की ओर राज्य पूर्ण रूप से दत्तचित्त है। देवालयों में भगवान् का भोग तक नहीं लग पाता। सुविशाल वनों को काट-कूटकर लहलहाते खेतों में परिणत कर दिया गया है। भागीरथी के पुनीत वक्ष को क्षत-विक्षत कर अनेक वारिवनिताओं (नहरों) की सृष्टि की है। वर्ष भर निरंतर आलू खाने को मिलता है। ऐसे अक्षय भंडारों (कोल्ड स्टोरेज) का निर्माण किया गया है जिनमें रखने से कोई खाद्य सामग्री खराब नहीं होती। इसी कारण अब वहाँ बारहों महीने संतरे मिला करते हैं। वेद-शास्त्रों के अनुकूल पड़नेवाली यज्ञ-व्यवस्था तो समाप्त हो गयी है किन्तु याज्ञिकों की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है।" एक एकाक्षी आचार्य ने कहा।

"यज्ञ करना मना है और यज्ञ करनेवालों की तादाद बढ़ती जा रही है! यह क्या बे सिर-पैर की बात करते हो?" नारदजी ने मुँह बनाते हुए कहा।

"ठीक कहता हूँ श्रद्धेय! वहाँ धूम्र-पान को यज्ञ करना कहा जाने लगा है। धर्म का तो टंडीला नप गया है। प्रकृति को प्राध्यापिका नहीं वरन् प्रतियोगी समझा जाता है। दोनों पांशुल सर्वशक्तिमान होकर शासन करने की महत्त्वाकांक्षा कर रहे हैं। इन आततायियों से कैसे छुटकारा मिलेगा, हमारी समझ में नहीं आता।" लम्बकूर्च तपस्वी ने जवाब दिया।

"आप लोगों के जप-तप पर लानत है जो इन साधारण से पिशुनों तक से पार न पा सके।" नारदजी ने डाँटते हुए कहा।

"हमारे शाप कारगर नहीं होते तो हम क्या करें? उन्हें वरदान ऐसा मिल चुका है जिससे हमें प्रत्येक अवसर पर मुँह की खानी पड़ती है।" एक कनफटे मुनि के मुख से निकला।

"तो चुल्लू भर पानी में जाकर डूब क्यों नहीं मरते! यहाँ शारदापति की छाती पर मूँग दलने के लिए क्यों आ पड़े हो?" नारदजी बोले।

"ब्रह्माजी ने उनको इतना सिर पर चढ़ाया है। अब यह ही उनका मान-मर्दन करने की कोई युक्ति ढूँढ़ेंगे।" वशिष्ठ मुनि ने कहा।

"इसमें कौन सी बड़ी भारी योजना बनाने की आवश्यकता है? क्या पुरुहूत के वज्रास्त्र, यमराज के कालदंड, कुबेर की गदा, वरुण के पाश और विचित्र अशनि, स्कन्द की शक्ति, अश्विनीकुमार की प्रकाशमान औषधियों, धाता के धनुष, जय के मुशल, त्वष्टा के पर्वत और मृत्यु के परश्वध व अर्यमा के भयानक परिघ से उन पामरों का काम तमाम

नहीं हो सकेगा ? क्यों नहीं जुट जाते सब एक साथ ? यहाँ हराम की रोटियाँ तोड़ने में लज्जा नहीं आती ?" फटकारते हुए नारदजी बोले।

"इन आयुधों से कुछ नहीं होगा। ऋषिराज ! आप धैर्य रखें। सुन्द और उपसुन्द किसी के हाथ से नहीं मारे जा सकते। मैं उन्हें वरदान दे चुका हूँ।" ब्रह्माजी ने दाढ़ी खुजलाते हुए कहा।

"आपने ऐसी उम्दा हिमाकत की किस लिए ? क्या देवताओं से अधिक आपको दानवों के हितों का ध्यान रहता है ?" नारदजी ने त्योरी चढ़ाकर पूछा।

"नहीं। बात यह है, उन्होंने बड़ी घोर तपस्या की थी। देवों की ओर से साधना में जितने भी विघ्न पड़े उन्हें, उन लोगों ने पार कर लिया। विष्णुजी का चतुर्मासिक शयन चल रहा था और महादेव भाई भंग के नशे में गुटपट होकर घर से निकल गये थे। केन्द्रीय सरकार में मैं ही इस योग्य बच रहा था जो किसी की अर्जी पर कोई कार्यवाही अमल में ला सकता। जिस वेग से दोनों राक्षसों का तपयान चल रहा था, उससे दो एक दिन के भीतर स्वर्ग का आधिपत्य उनके हाथों में पहुँचने की निश्चित आशंका हो उठी थी। अतएव मुझे उनके पास जाकर मनौती करनी पड़ी। बड़ी चालबाजी के बाद काबू में ला पाया। अमर होने की बात करते थे। मैंने उतना तो नहीं, हाँ इतना अवश्य दे दिया कि मरेंगे तो सिर्फ एक दूसरे के हाथों से ही। वह मेरे वरदान से संतुष्ट भी हो गये क्योंकि दोनों सहोदरों में अभूतपूर्व स्नेह विद्यमान था। उन्हें स्वप्न में भी यह विचार नहीं आ पाया कि वे आपस में लड़कर ही कभी एक दूसरे का नाश कर सकेंगे।" हंसवाहन ने उत्तर दिया।

"तो आप चुप्पी साधे कैसे बैठे हैं ? इन दीन-दुखियों का बेड़ा तो पार लगाइए।" नारदजी ने समस्त शरणार्थियों की ओर से आग्रह किया।

"आप चिन्ता न करें। तरकीब मुझे सूझ गई है। विश्वकर्माजी के आने की देर है। सुबह से तीन बार टेलीफून कर चुका हूँ मगर अब तक उन्होंने सूरत दिखाने का कष्ट नहीं किया। दूर-भाष पर फिर गोहराता हूँ। सम्भव है कि अब फुरसत पा गये हों।" कमलासनजी ने दूरवाणी यन्त्र को प्रयोग में लाने के लिए उठाते हुए कहा।

करीब आधे घण्टे बाद अब सब लोग कुल्ला आदि करके निवृत्त हो चुके तो विश्वकर्माजी ने दर्शन दिये। बहुत से व्यक्ति तो तन्द्रा की पुकार सुनकर रवाना हो ही चुके थे। जो बच गये थे, उनके सम्मुख प्रजाधिप ने पूछा "७६७७ नम्बर की कल पर क्या तैयार हो रहा है ?"

"उर्वशी की देह लटकी हुई है।" विश्वकर्मा ने उत्तर दिया।

"क्या हो गया है अप्सरा को ?" नारद जी ने चौंककर पूछा।

"नृत्याधिक्य के कारण टाँगें कमजोर हो गई हैं। उनके स्थान पर नई फिट की जावेंगी।"

"क्या यह सम्भव है ?" नारदजी ने आश्चर्य-भरी वाणी में पूछा।

"बिलकुल मुमकिन है। हमारे पास तो ऐसी-ऐसी मशीनें हैं जिनमें डालते ही देह के समस्त अंग-प्रत्यंग पृथक्-पृथक् आगारों में जाकर स्वयं एकत्रित हो जाते हैं। उसी प्रकार शरीर के जिस भाग को चाहिए प्रतिस्थापित कर लीजिए। गणेशजी के धड़ में गज-शीर्ष को तोला, माशा और रत्ती तक चौकस बैठाना हमारा ही काम था।" विश्वकर्म्मा ने गर्व से सिर ऊँचा करते हुए कहा।

"उर्वशी की ठुकाई-पिटाई में कितना समय लगेगा ?" नाभिजन्म ने पूछा।

"बहुत जल्दी की गई तो डेढ़ दिन लग जायगा।" विश्वकर्म्मा ने कहा।

"तो उर्वशी को उतार लो। एक जरूरी काम आ गया है। पहले इसे पूरा करने का प्रबन्ध करो।" अब्जयोनि के मुँह से निकला।

"किस वस्तु का उत्पादन करना है ?" विश्वकर्म्मा ने पूछा।

"एक अभूतपूर्व सुन्दरी की सृष्टि करनी है। पहले इसे पूरा करने का प्रबन्ध करो। रचना की सारी कुशलता से काम लेना होगा।" ब्रह्माजी बोले।

"मिट्टी कौन सी लगेगी ?" विश्वकर्म्मा ने पूछा।

"वही चायना १२७२।" स्रष्टा ने उत्तर दिया।

"उसका स्टाक तो चुक गया है। तिब्बत १११ से काम चल जावे तो हाजिर है।" विश्वकर्म्मा ने कहा।

"उसके उपयोग से देह में निखार नहीं आने पाता। यत्र-तत्र काले-काले धब्बे बदनुमा मालूम पड़ते हैं।" ब्रह्माजी ने कहा।

"सज्जी छार ज्यादा डाल दिया जावेगा। उससे चमक आ जायेगी।" विश्वकर्म्मा ने उत्तर दिया।

"यह तुम जानो। अगर चीज भोंडी बनी तो व्यर्थ सिद्ध होगी।" अज ने कहा।

"मैं ज्यादा देखभाल कर लूँगा। लावण्य के लिए लवण किस मात्रा में डाला जावेगा।" विश्वकर्म्मा ने पूछा।

"आम तौर से कितना डालते हो ?" पितामह ने कहा।

"छटाँक पंसेरी का हिसाब है।" विश्वकर्म्मा ने उत्तर दिया।

"इसके निर्माण में तुम छटाँक सेर के अनुपात को स्वीकार करना। बड़ी सलोनी चीज तैयार करनी है।" अण्डज महाशय ने आदेश किया।

"बहुत अच्छा, मगर उत्पादित वस्तु खिल उठेगी। इसका ध्यान रहे।" विश्वकर्म्मा ने आगाह किया।

"इसकी चिन्ता करने की कोई आवश्यकता नहीं। हमें जरूरत भी फूलगोभी की है, बन्द या गाँठगोभी की नहीं।" ब्रह्माजी ने कहा।

"जैसी आपकी मर्जी। चाहिए कब तक ?" विश्वकर्म्मा ने पूछा।

"दो घण्टे के भीतर तैयार करके दे सको तो निहायत अच्छा हो।" इलानाथ ने कहा।

"आप तो मुँह का निवाला समझते हैं। षोड़षवर्षीय नवयौवना को तैयार करने में और लोगों को सोलह साल की जरूरत होती है और आप मुझे केवल दो घण्टे की मोहलत दे रहे हैं।" विश्वकर्म्मा ने जवाब दिया।

"तुम अपनी बात रहने दो। दिल से चाहो तो दो घण्टे क्या आध मिनट के भीतर मनोवांछित वस्तु की सृष्टि कर सकते हो, मगर मैं जानता हूँ जल्दबाजी से काम बिगड़ जाता है। तुम कल सबेरे तक उस अनुपम सुन्दरी को बना लाओ।" वागीश स्वामी ने कहा और "प्रयत्न करूँगा मगर वायदा नहीं करता" कहकर विश्वकर्म्माजी विदा हो गये।

दूसरे दिन गोधूलि की बेला आ पहुँची किन्तु तरुणी नायिका बनकर तैयार न हो पाई। ब्रह्माजी ने विश्वकर्म्मा को बड़ी खरी-खोटी सुनाई। "नाक कटा दी मेरी, सारे देवता और ऋषिगण क्या समझेंगे? यही न कि मैं अयोग्य हूँ, वक्त पर काम पूरा नहीं कर सकता। वायदे पर ग्राहकों के आर्डर सप्लाई करने में असमर्थ सिद्ध होता हूँ। काष्ठ कौशिक को फोरमैन कैसे बना दिया गया, आदि-आदि।" रात के पौने दस बजे नव प्रस्फुटित सुकचनारि को लेकर विश्वकर्म्माजी, इलापति के बँगले पर पधारे। गिराकांत डिनर से निवृत्त होकर ताम्बूल चबा रहे थे। नारदजी हथेली पर चूना रगड़ रहे थे। कंचुकी ने जैसे ही कुसुम कामिनी के आगमन का समाचार दिया तैसे ही दोनों महानुभाव और अनेक उपग्रह दौड़कर सिंहद्वार की ओर लपके और उस रूपसि अलका की ओर कनखियों से निहार-निहार कर सच्चिदानन्द सागर में गोते लगाने लगे। "सिर से चोटी तक एक बार निरीक्षण करके देख लीजिए। जो कुछ कमी होगी, उसका इसी समय सुधार कर दिया जावेगा।" विलम्ब के लिए क्षमायाचना करते हुए विश्वकर्म्माजी ने कहा।

"देखना-भालना क्या है ? जैसी बना लाये ठीक है।" ब्रह्माजी बोले।

"यह क्यों नहीं कहते बुढ़ऊ ! कि तिल भर नुक्ता मारने का मौका नहीं दिया है कुशल कर्मकार ने !" नारद बाबा ने चुटकी लेते हुए लोकेश महोदय से कहा।

"बस रहने दो तारीफ के पुल बाँधना। ऐसी कौन सी वस्तु है जिसमें सुधार के लिए गुंजाइश न रह जाती हो ?" महाश्वेताधिपति ने कहा।

"भाई ! तुम मानो या न मानो। बड़ी-बड़ी मुग्धाओं से मेरा पाला पड़ चुका है, मगर तुम्हारे पिता की सौगन्ध खाकर कहता हूँ कि ऐसी नेत्र-प्रिय रमणी के दर्शन आज तक त्रिलोक के किसी कोने में नहीं हो सके। चिबुक पर बने तिल का निशान कितना मनमोहक प्रतीत होता है, बस कुछ पूछो मत।" नारदजी बोले।

"यह उस मिट्टी का दोष है जो तिल बनकर मुख पर झलक रहा है। आप इसे सौंदर्य का चिह्न समझ बैठे हैं?" विधात्री-भर्तार ने कहा।

"तुम जो चाहो कहते रहो। मुझे तुम्हारी आलोचना से कोई लाभ नहीं पहुँचेगा। मैं तो इस रूप-माधुरी पर मोहित हो गया हूँ। एकदम वशीभूत!" नारदजी कह ही बैठे।

सर्वसम्मति से यह निश्चित हुआ कि सुन्द उपसुन्द का बण्टाधार करने के लिए जिस सुभगा की सृष्टि हुई है, उसके नाम के साथ तिल को अवश्य जोड़ा जावे। नारदजी ने उत्तम तिला तजवीज किया। मगर आदिदेव ने उसमें अश्लीलत्व दोष बतलाकर देवर्षि के प्रस्ताव को ठुकरा दिया। नारदजी से तिल भर भी चुप न रहा गया। उन्होंने वर्ण-विपर्यय करके कहा "तिलोत्तमा तो ठीक रहेगा?" तिलोत्तमा में किसी प्रकार की त्रुटि दिखलाई नहीं पड़ी। निदान तिलोत्तमा ही स्वीकार कर लिया गया और तब से आज तक विधना की शिल्पशाला में विरचित उस देवी का सुनाम तिलोत्तमा ही चला आता है।

तिलोत्तमा देवी के सम्मुख विधाता ने अपनी स्कीम रक्खी और कहा सुन्द उपसुन्द नामक राक्षस भाइयों के बीच विषमता उत्पन्न कर, उनको मौत के घाट उतारना है। पहले तो वह रूपसि बाला कुछ झिझकी किंतु रचयिता के निगाह टेढ़ी करने पर, उनके बतलाये हुए मार्ग पर चलने के लिए उद्यत हो गई। सब संतप्त हृदयों से कल्याण-कारी आशीष के वाक्य निर्गमित हुए।

मर्त्यलोक में विमान द्वारा जाकर तिलोत्तमा ने उस रमणीय स्थल की ओर प्रस्थान किया जहाँ सुन्द और उपसुन्द आखेट के लिए गये हुए थे। एक दिन नियति के कुंकुमित वातावरण में अचानक ही दोनों भाइयों की दृष्टि तिलोत्तमा के नपे-तुले सुघड़ाई से निर्मित गात पर पड़ी। बस फिर क्या था? ऐसी अपूर्व सुन्दरी को देखकर दोनों राक्षस बंगू की तरह उसके चारों ओर नाचने लगे। तिलोत्तमा भी अपनी मनोहर भाव-भंगियों से उन कुर्बानी के बकरों को रिझाने लगी। जब पैरों के साथ साथ दिमाग भी वेग से घूमने लगा तो सुन्द ने उपसुन्द से कहा "भैया! अपनी भाभी का नाम तो पूछ।" उपसुन्द ने उत्तर दिया "भाभी किसकी? मेरी स्त्री का नाम जाननेवाला तू कौन होता है?"

"तेरी स्त्री कैसी? यह तो मेरी पत्नी है। तेरी माँ हुई।" सुन्द ने कहा।

"यह भी खूब कही? बीबी मेरी और बतलाते हैं आप अपनी! भाई साहब! छोटे भाई की औरत बेटी के बराबर होती है।" उपसुन्द बोला।

"आज तक तूने किसी बात में मेरा मुकाबला नहीं किया। इस वक्त तुझे क्या हो गया है? अच्छा इस पर तो राजी हो जावेगा कि यह हम दोनों की भार्या है।" सुन्द ने कहा।

"वाह बिरादर! मालूम होता है कि तुम्हारी अक्ल भैंस चर गई है। कहीं बीबियों में भी साझेदारी चला करती है?" उपसुन्द ने जवाब दिया।

"तो इस बात का निपटारा किस प्रकार होगा कि यह किसकी स्त्री है?" सुन्द ने पूछा।

"जाकर उसी से पूछ लो।" उपसुन्द ने कहा।

सुन्द महोदय तिलोत्तमा के समीप जाकर बोले "हे लावण्यवती! तुम्हीं बतलाओ हम दोनों में से तुम किसकी पत्नी हो।"

तिलोत्तमा ने टका सा जवाब दे दिया "दर्पण कितने सालों से नहीं देखा है? यह मुँह और मसूर की दाल! मैं तुम जाहिलों की बीबी बनूँगी, जिन्हें नारी के अधिकारों तक का बोध नहीं है?"

सुन्द अपना सा मुँह लेकर लौट आये। तब उपसुन्द गये और बोले "हे मधुरिमे! आपको हम दोनों मूर्खों में से कौन-सा पसन्द है?"

तिलोत्तमा ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया "हमें तो दोनों ही बराबर मात्रा में पसन्द हैं। तुम लोग आपस में जल्दी फैसला कर लो तो अच्छा है, वरना हम किसी और के साथ चली जावेंगी।"

"कैसी नादानी की बातें करती हैं आप? अभी लीजिए हम निपटारा करे लेते हैं। जो विजयी होगा वही आपको वरण कर लेगा।" उपसुन्द ने कहा।

तिलोत्तमा के पास से लौटते ही उपसुन्द ने बड़े भाई के मुख पर कस के तमाचा रसीद कर दिया। फिर क्या था? सिंह, शार्दूल का युद्ध आरम्भ हो गया। कभी बड़ा छोटे पर, और कभी छोटा बड़े के ऊपर। लड़ते-लड़ते दोनों भाइयों ने प्राण त्याग दिये। ब्रह्मलोक में जैसे ही यह समाचार पहुँचा, वैसे ही वहाँ मंगल मनाया जाने लगा। ब्रह्माजी

मराल पर बैठकर तिलोत्तमा के पास पहुँचे और उसकी चातुरी की सराहना करने लगे। विशाल जनसमूह के सम्मुख उन्होंने उसे 'पुष्पराज शिरोमणि' की पुष्ट पदवी प्रदान की। नारदजी भी टहलते टहलाते जा निकले और धूमधाम को देखकर बोले "यह तो सब हुआ, अब तिलोत्तमा के भविष्य के विषय में क्या निर्णय करते हो ?"

"तिलोत्तमा कोई बच्ची थोड़ी है जो हमें उसके सम्बन्ध में चिन्ता करने की आवश्यकता प्रतीत हो ? वह अपना भविष्य स्वयं बना लेगी।" पुण्डरीकनाभ ने कहा ?

"मेरा भी मतलब यही था ! मेरा भी मतलब यही था !" कहते हुए नारदजी उठकर चले गये।

"बड़े घिसे हुए मुनि हैं। चाहते कुछ हैं और कहते कुछ और। इनका बस चले तो हम लोगों में फूट डलवा दें।" विधाता बोले।

"कुछ भी करते हों, लेकिन हैं बड़े रसिक जीव। मेरे ऐसे अद्भुत नामकरण में सबसे अधिक योग इन्हीं की ओर से प्राप्त हुआ था।" तिलोत्तमा ने कहा।

कुछ ही दिनों में तीनों लोकों के अन्दर पुरानी व्यवस्था चालू हो गई और सब लोग चैन की बंसी बजाने लगे। यह है तिलोत्तमा के जन्म की सीधी-सादी कहानी।

१९५७

सिफारिशी चिट्ठी

श्री जगदीशनारायण माथुर, एम० एस-सी०

प्रिय चन्द्रकान्त,

कदाचित् वर्ग पहेली के पुरस्कार की सूचना पाकर भी मुझे इतना आश्चर्य न होता जितना चौथे दिन तुम्हारा पत्र पाकर हुआ। मैंने सोचा था कि शायद दो वर्ष को बात टली। परन्तु टली कहाँ ? वह तो सुबह आठ बजेवाली डाक से सशरीर उपस्थित हो गई।

शीर्षक से कदाचित् तुम समझोगे कि यह पत्र तुम्हें मैं किसी व्यक्ति की सिफारिश के सिलसिले में लिख रहा हूँ। पर ऐसा नहीं है, बल्कि इस पत्र की पृष्ठभूमि एक सिफारिशी चिट्ठी है।

तुमने लिखा है कि मेरे पहले पत्र पढ़ने में तुम्हें कहानी का सा आनन्द आता था, तथा अब तक के कुल पत्र तुमने फाइल बनाकर रख छोड़े हैं। परन्तु अब मेरे पत्रों में वह बात नहीं रही। तुम्हारे विचार से अब मेरे पत्र गालियों तथा भर्त्सनाओं से भरे होते हैं; तथा अब मैं सबको अपशब्दों से याद किया करता हूँ। सरकार को, सेठों को, मास्टरों को, स्कूलों को, कालिजों को, पढ़ाई को, लिखाई को, लड़कों-बूढ़ों तथा नवयुवकों को, मित्रों को, शत्रुओं को यहाँ तक कि प्रकृति का शायद ही कोई ऐसा विषय बचा हो जिसको मैंने किसी न किसी रूप में गाली न दी हो।

प्रत्येक मनुष्य की यह इच्छा होती है कि वह ऐसी बात करे जो सबको अच्छी लगे, ऐसी बात लिखे जो सबको मीठी लगे। ऐसी बात न तो वह सुनना चाहता है जो उसे कड़वी लगे, और न ऐसी बात पढ़ना ही। परन्तु फिर भी मैंने तुम्हारा पत्र पढ़ा। पत्र क्या था, पूरा व्यंग लेख समझो ! मैं इस उलझन में पड़ गया हूँ कि ऐसे सुन्दर मुँह से ऐसी ऐसी कड़वी बातें निकलती कैसे हैं ? अगर तुम दोनों (अपने तथा मेरे) पत्रों को एक बार फिर से पढ़ो तो तुम्हें स्वयं मालूम हो जायगा कि गाली और भर्त्सनाएँ किसके पत्र में अधिक हैं। अन्तर केवल इतना है कि तुम्हारे व्यंगवाण केवल एक वृत्त को केन्द्र मानकर छोड़े गये हैं, परन्तु मेरे उछटते हुए सब पर ही पड़ते हैं। कौन अधिक घातक है, यह तुम स्वयं ही समझते होगे।

हाँ, तो मैं बता रहा था कि हर मनुष्य की यह इच्छा होती है कि वह ऐसा लिखे और बोले जो सबको मीठा लगे, परन्तु जब वह ऐसा नहीं करता तो कोई विशेष कारण होता है।

कल ही की बात लो।

एक अनार और सौ बीमारवाली कहावत भी यहाँ ठीक नहीं उतरती, क्योंकि स्थान था एक और प्रार्थना-पत्र थे आठ सौ चार, जिनमें प्रथम श्रेणी में पास हुए एम० ए०

भी थे। मिडिल पास और फेल भी थे, तथा कुछ केवल घर पर ही पढ़े थे। लम्बे चौड़े, गोरे-काले, ठिगने, गेंठे, मोटे-दुबले आदि प्रत्येक तरह के थे। कुल मिलाकर आठ सौ चार थे और स्थान था केवल एक।

तुम सोचते होगे कि इतने प्रार्थना-पत्रों में से एक को छाँटना बड़ा कठिन काम है, और मैंने कदाचित् कई रात देर देर तक जागकर प्रार्थना-पत्र पढ़े होंगे। एक दूसरे का मिलान किया होगा। और जब छँटनी समाप्त की होगी तो देखा होगा कि मैंने सौ से भी अधिक प्रार्थना-पत्र छाँटे हैं क्योंकि एक से एक अच्छा लड़का होगा। फिर इन सौ में से एक आवेदक को छाँटने में भी कई दिन लगे होंगे। और इस कारण अच्छा खासा सिर-दर्द रहा होगा।

परन्तु मुझे यह सब कुछ नहीं करना पड़ा। मुझे उन प्रार्थना-पत्रों को हाथ में लेकर पढ़ना तो दूर रहा, एक बार देखना भी नहीं पड़ा, क्योंकि मेरे सामने चार नाम थे। एक वह जो मिडिल फेल है और मेरे अफसर का साला है। दूसरा वह जो बी० ए० तीसरी श्रेणी में पास है तथा यहाँ के एम० एल० ए० का भतीजा होता है। तीसरा किसी मंत्री के किसी मित्र का लड़का है और पिछले वर्ष मैट्रिक में फेल हो जाने के कारण नौकरी ढूँढ़ रहा था, और चौथा विभागीय मंत्री का सिफारिशी पत्र लाया है और उसने केवल घर पर ही रहकर पढ़ा है।

अब इन चारों में से किसे रक्खूँ ? किसको न रक्खूँ ? योग्यता का क्या माप-दंड बनाऊँ ? मैं एक ऐसे चौराहे पर खड़ा था जिसकी प्रत्येक राह के अन्त में खाई थी। कौन-सी खाई अधिक घातक हो सकती है, यह जान लेना कठिन अवश्य है।

इसी उलझन में पड़ा था कि एक नवयुवक कमरे में धीरे-धीरे आया। मेरे कहने पर वह मेरे सामने की कुर्सी पर बैठ गया।

वह बता रहा था कि उसने हाई स्कूल, इण्टर, बी० ए०, आदि सब प्रथम श्रेणी में पास किए तथा प्रत्येक में कोई न न कोई पोजीशन भी पाई। खेल में भी.... ।

परन्तु मेरे मस्तिष्क में एक और ही ध्वनि गूँज रही थी, "मैं उन विभागीय मंत्री की सिफारिशी चिट्ठी लाया हूँ जो चाहें तो तुम्हें निकाल बाहर कर सकते हैं। अगर वे चाहें तो गंगा बंगाल की खाड़ी में न गिर कर अरबसागर में गिरने लगे। केवल यही नहीं, वे उल्टी गंगा भी बहा सकते हैं। उनकी वक्रदृष्टि होते ही तुम भूखे मर जाओ, तुम्हारे बाल-बच्चे भूखे मर जायँ।" भूखों मरने की बात से मैं चौंक पड़ा। अचानक दूसरी आवाज गूँजी, "परन्तु देखिए तो सही ! मैं मिडिल फेल हूँ। यह कुछ भी पढ़ा-लिखा नहीं। फिर मैं आपके अफसर का साला हूँ। जीजा से सिफारिश कर दूँगा तो आपकी उन्नति जल्दी हो जायगी, फिर योग्यता में इससे अधिक ही हूँ, कम नहीं।" फिर वह आवाज भी दब गई और तीसरी आवाज गूँजी, "तुम तो मिडिल फेल हो, मैं तो जनाब मैट्रिक फेल हूँ और मंत्री जी को तो एक तरह से मेरे चाचा ही समझिए। अगर वे चाहें तो आप तो आप.... ।" मैं चौंक पड़ा उसकी पूरी बात न सुन सका।

"मैं दो वर्ष तक विश्वविद्यालय की क्रिकेट टीम का कप्तान रहा हूँ। जब कि आमतौर पर हर एक लड़का केवल एक वर्ष के लिए ही चुना जाता है। यह देखिए सर्टी...... ।" मेरे आगे बैठा नवयुवक कुछ रुका।

फिर एक मिमियाती हुई सी आवाज गूँजी, "मैं बी० ए० पास हूँ। आपने एम० एल० ए० साहब का पत्र पढ़ ही लिया होगा। ऐसी दशा में आपको अधिक सोचने की आवश्यकता ही कहाँ रह जाती है ? फिर इन सब में योग्य तो मैं हूँ ही। एम० एल० ए० साहब आपके शहर में ही रहते हैं। हर समय उनसे आपका काम पड़ता है। फिर एम० एल० ए० को छोटा न समझिएगा। एक एक ईंट से ही पूरी इमारत बनती है। और क्या पता ये ही अगले चुनाव में मंत्री हो जायें। और फिर...... ।"

"एम० ए० में मेरी पूरे विश्वविद्यालय में प्रथम पोजीशन थी। मैंने पिछले बीस वर्षों के सारे रिकार्ड तोड़ दिये। अस्सी प्रतिशत...... ।" युवक बराबर बोले जा रहा था।

मेरे मस्तिष्क में अजब कोलाहल सा मच गया। प्रत्येक अपनी सिफारिशों को बड़ा बतला रहा था। कोई सिफारिशी चिट्ठी का ढोल पीट रहा था, कोई रिश्तेदारी का।

"और अब मैं रिसर्च करना चाहता था। परन्तु कुछ कारणों से यह सम्भव न हो सका। इस कारण समाचार-पत्र में आपका विज्ञापन पढ़कर कि आपके यहाँ जगह खाली है, मैं आपके पास आया हूँ। अगर मुझे सौभाग्य मिला तो मैं आपकी सेवा करने में कुछ उठा न रक्खूँगा।"

अचानक चारों ध्वनियाँ आपस में लड़ने लगीं। मैं बीच-बिचाव करने की सोच ही रहा था कि मेरे सामने बैठा नवयुवक बोला, "कदाचित् आपने मेरी कोई भी बात नहीं सुनी।"

मैंने कहा, "मैंने आपकी प्रत्येक बात सुनी। परन्तु क्या आप कोई सिफारिशी चिट्ठी भी रखते हैं ?"

"जी, हाँ, यह देखिए कुलपति............।"

"अजी नहीं ! मेरा मतलब उससे नहीं है। क्या आपके पास किसी मंत्री, एम० एल० ए० आदि की सिफारिशी चिट्ठी है ?"

उसने उदासी से सिर हिलाते हुए कहा, "नहीं।"

"तो फिर आपको यह नौकरी नहीं मिल सकती।"

"मगर सुनिए तो।"

मैंने उसे द्वार का रास्ता दिखाते हुए कहा, "मेरी शुभ कामनाएँ तुम्हारे साथ हैं, मित्र ! तुम्हें यह नौकरी देना मेरी सामर्थ्य के बाहर की बात है। अब तुम कृपा कर चले जाओ।"

वह हक्का-बक्का सा रह गया। कुछ देर बैठने के पश्चात् उदास-मुँह उठकर चला गया।

यह तो बताना व्यर्थ है कि मैंने उस जगह पर किसको नियुक्त किया। वह तो तुम स्वयं ही समझ गये होगे। लिखना कि तुम किसको समझे थे ?

तुम मन ही मन सोचते होगे कि इसमें तो मैंने कोई नई बात नहीं बताई। ऐसा तो प्रतिदिन होता ही रहता है। न इसमें कोई ऐसी ही बात है जिसके लिए तुम्हारा इतना समय, अपना इतना कागज तथा पाँच तोले चिट्ठी के लिए टिकट व्यय करना उचित था। परन्तु बात यहीं समाप्त नहीं होती।

मेरे सामने आज का समाचार-पत्र खुला हुआ है। उसके चौथे पन्ने पर एक छोटा सा समाचार है। शायद तुमने उस पर ध्यान नहीं दिया होगा। यह मैं इस कारण लिख रहा हूँ क्योंकि यह तो मैं जानता ही हूँ कि हम तुम एक ही अखबार लेते हैं। "कल एक नवयुवक ने पुल पर से कूद कर आत्महत्या कर ली।" साथ में उसका छोटा सा फोटो भी है। परन्तु बदन फूल जाने के कारण उसे पहचानना बहुत कठिन है। तथा साथ में यह भी छपा है कि अगर कोई उसे पहिचानता हो तो तुरन्त थाने में खबर दे।

मैं उसे पहचानता हूँ। नहीं, नहीं, मैं उसे नहीं पहचानता ! इस मनुष्य को तो मैंने इससे पहले कभी देखा तक नहीं ! फिर भी मुझे यह शक्ल जानी पहिचानी सी लगती है। हो सकता है कि यह केवल मेरा भ्रम हो, और यह भी सम्भव है कि वह कलवाला नवयुवक ही हो।

मैंने यह कार्य बुरा किया कि अच्छा, अथवा किसी विवशता के कारण किया, इस विषय पर मुझे न परामर्श की आवश्यकता ही है और न मैं इन प्रश्नों का उत्तर जानना ही चाहता हूँ। इस कारण तुम अपने अगले पत्र में मुझे नसीहत देने न बैठ जाना।

फिर भी तुम कहोगे कि मैं बड़ा आदर्शवादी बनता था। 'यह करूँगा' 'वह करूँगा।' कहाँ गया मेरा वह सारा आदर्शवाद ? मैंने तुरन्त क्यों नहीं उस नवयुवक को रख लिया ? मैं चाहता तो ऊपरवालों को लिख देता कि चूँकि यह ही सबसे योग्य आवेदक था, इस कारण इसको रखा जाता है। यह विचार एक बार तो मेरे मन में भी आया था।

परन्तु जैसे हर स्वाति की बूँद मोती नहीं बनती, वैसे ही हर विचार कार्यरूप में परिणत नहीं किया जा सकता। मैं विवश था। अगर मैं ऐसा न करता तो पुल पर से कूदने की नौबत उस नवयुवक को न आती, पर शायद एक दिन वह काम मुझे करना पड़ता। और मैं इतना साहसी नहीं हूँ।

मेरा यह पत्र पढ़कर तुम सोचोगे कि मैंने कितनी छोटी सी बात ("एक नवयुवक को आत्महत्या करनी पड़ी क्योंकि सिफारिश न होने के कारण उसे नौकरी नहीं मिल सकी थी।") कितने अधिक शब्दों में लिखी है। मैं जानता हूँ कि इस प्रकार की आत्महत्या करने वाला वह पहला नवयुवक न था, और न उसकी आत्महत्या इस प्रकार की अन्तिम आत्महत्या है। फिर भी इस विषय में किसी ने सोचने का कष्ट नहीं किया। तुम्हीं सच-सच बताओ कि क्या तुमने उस समाचार को पढ़ने का भी कष्ट उठाया ? कदाचित् नहीं। पढ़ा भी होगा तो एक सरसरी दृष्टि से। परन्तु अब मेरा पत्र कई दिन तक तुम्हारी आँखों के सामने रहेगा, तथा तुम्हारा बहुत सा सोचने का समय यही विचार ले लेगा। दूसरा कारण पत्र के लम्बे हो जाने का यह भी है कि बड़ी बात को छोटे में, सूत्र रूप में, कहना तो ऋषि वाणी का प्रताप है। और मैं उससे कोसों दूर हूँ।

कदाचित् जो शिकायत तुम्हें मेरे पहिले पत्र से थी, वही इससे भी हो। और हो सकता है कि तुम पिछले पत्र की तरह इसको

भी फाड़कर फेंक दो। परन्तु इससे एक सच्ची आवाज दब नहीं सकती, जैसे बाँध से बढ़िया कुछ समय के लिए रुक भले ही जाय, परन्तु उतर नहीं जाती बल्कि और भी ऊँची हो उठती है। और एक दिन वह आता है जब बाँध भी उसे बाँध नहीं पाते। और वह दिवस आता भी अवश्य है! कब आता है, यह कहना कठिन है। कुछ कठिनाइयाँ अवश्य आती हैं। परन्तु प्रत्येक वस्तु के जन्म में उत्पीड़न निहित है। प्रकाश को विजयी होने में बारह घंटे संग्राम करना पड़ता है। बादल बनने के लिए भी जल को तपना पड़ता है। ये सब साधारण बातें हैं। प्रकृति के धर्म हैं। इन पर आश्चर्य करने की आवश्यकता नहीं।

मैं फिर विषय से भटक रहा हूँ। इस कारण अब पत्र को यहीं समाप्त करता हूँ। क्या लिखने को सोच रहा था और क्या लिख गया?

अब चाँद ऐल्यूमीनियम फैक्टरी के ऊपर आ गया है। इस कारण बारह बज चुके हैं। काफी समय हो गया है।

मेरे अगले पत्र का इन्तजार करना।

तुम्हारा मित्र (तुम्हारे ही शब्दों में), पुच्छलतारा।

१९५७

* * *

जूतामारी की हाट

श्रीमती निर्मला मित्र

आज भी मौसम वही था। आसन्न-वर्षा के बादल "आषाढस्य प्रथम दिवस" में बरसने के लिए आकाश में उमड़-घुमड़कर स्तूपाकार हो-होकर जमा हो रहे थे। कदम की डाल पुष्पभारावनत होकर वातायन में झुक-झुक पड़ रही थी, मानो पूर्व मेघ की आगमन-वार्ता यक्षपत्नी को देने के लिए वह खिड़की में झाँककर अवसर देख रही हो। इधर महिला क्लब में रवि-वारीय प्रोग्राम के लिए महिलाएँ एकत्रित हो गई थीं। तरुणियाँ सब एकाग्र चित्त होकर सुन रही थीं।

दोनों हाथों से नीहार ने अपना अधखुला शिथिल जूड़ा ठीक किया। फिर बोली, "उत्तर-पश्चिम की ओर से एक छोटा सा बादल का टुकड़ा उठा, और जब प्रचण्ड वायु के झकोरे हमें नभ-पथ में बार-बार झकझोरने लगे, तब सोच लो कि हमारे उस छोटे से 'जिप्सी माँथ' (एरो-प्लेन) की क्या गति हुई होगी।"

"ओहो, तो तुम अबकी नभ-पथ से उड़कर कहाँकी यात्रा कर रही थीं?" अरुणा ने पूछा। लेकिन सारी युवतियों के आकुल भंगी से ऐसा लगा कि वही एक प्रश्न समवेत कण्ठ से एक साथ ही निकल आया हो।

नीहार बोली, "हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के गृह-युद्ध के भस्म समूह में खोये हुए एक जीवन को खोजने के लिए मध्य-पूर्व के देशों तक जाने का इरादा था।"

पीछे की तरफ से एक महिला आग्रहपूर्वक कह उठी, "सरल भाषा में जरा समझाकर कहो जिससे तुम्हारी बातें बुझौअल न मालूम पड़ें।"

"जी, तो बात यह हुई थी कि मेरी मौसेरी बहिन इला गुजरानवाला के किसी बड़े व्यापारी के यहाँ ब्याही थी। वह इस गृहयुद्ध के भड़कने पर लापता हो गयी थी और उसी को ढूँढ़ने के लिए मेरा मौसेरा भाई और मैं 'पाइलट' साहा के सारथीत्व में उसी तरफ उड़ चले थे। यद्यपि हम-को मालूम था कि उसका पता अब लगने से रहा, और लगे भी तो अपनी सामाजिक परिस्थिति उसकी पुनः प्रतिष्ठा में बाधक बनेगी, फिर भी मौसी का कहना था कि कहीं उसका पता लग ही जाय तो उसके जीवन को यथासंभव सुखी करने और सुधारने की चेष्टा करना तो हमारा कर्त्तव्य है। भले ही समाज उसे दूर रखे, किन्तु किसी संस्था-विशेष में वह अपना अवशेष जीवन तो शान्ति-पूर्वक काट सकेगी। न जाने कितने हाथों वह बिक-बिक-कर अभागा जीवन काट रही है! सो, उसे ढूँढ़ निकालने को हारीत भैया कटिबद्ध हो गये, और मैं तो पहले से ही तत्पर बैठी थी। मध्यपूर्व के देशों को घूम-फिरकर देखना तो मेरे जीवन की साध रही, सो मैं भी भैया के साथ हो ली।"

"लेकिन तुमने यह कैसे समझ लिया कि वह इस दुनिया

में जीती-जागती मिल सकती है? ऐसा अनिश्चित और असंभव उद्देश्य लेकर तुम लोग कैसे चले थे ?" अरुणा ने पूछा।

"वह भी कहती हूँ। भैया के दोस्त त्रिदिब बाबू ने कहा था कि उन दिनों पंजाब और बंगाल से जितनी भी तरुणियाँ अपहृत हुई थीं उन सबको टोली-टोली में ले जाकर व्यापारियों ने सारे मध्यपूर्व में बहुत ऊँचे-ऊँचे दामों पर बेचा है। पीछे जब इस बात को लेकर हो-हल्ला हुआ तब फ्रंटियर के किसी सरदार ने ऐलान करवा दिया कि खैबर दर्रे से ऐसी जो भी टोलियाँ अपनी मेड़ पर से गुजरें उसके मुखिया को पकड़कर बीच बाजार में बैठाया जाय। फिर जो कोई अफगान भाई उन छोकरियों में से किसी को पसन्द करे वह उस मुखिया के सिर पर पाँच-पाँच जूते मारकर उस लड़की को ले जावे। पैसा-धेला कुछ नहीं। यह विचित्र बात त्रिदिब ने काबुल की सीमा पर अपनी आँखों देखी थी। और उसने कहा था कि 'जूतामारी' की उस हाट में मैंने हूबहू इला जैसी लड़की देखी है। तुम खोज करो तो शायद किसी अफगान-परिवार में वह मिल भी जाय।"

अलका बोल उठी—"शाबाश! लड़कियों का व्यापार करने वाले सौदागरों के लिये यह एक अच्छी नसीहत रही।"

"और ऐलान करने वालों की सूझ की भी प्रशंसा करनी पड़ेगी जिन्होंने ऐसा बढ़िया तरीका ढूँढ निकाला।" अरुणा बोली।

सुनने के लिये अधीर लतिका बोली, "खैर, आगे क्या हुआ ?"

नीहार ने फिर शुरू किया, "परन्तु दुर्दैव इसे कहते हैं कि क्वेटा के पास पहुँचकर ठीक साँझ के समय प्रचंड हवा में पड़कर हमारा छोटा वायुयान.........

डाली चीख पड़ी—"एँ! गिर पड़ा ?"

अलका बोली, "भला, प्लेन गिर पड़ा होता तो नीहार आज सशरीर यहाँ कैसे दीखती ?"

डाली लजा गई।

अरुणा बोली—"अच्छा! फिर ?"

कड़-कड़ वज्रनाद के साथ बिजली चमक उठी और सन-सन करती हवा की अठखेलियों के तेज झोंके आने लगे। किन्तु नीहार ने अपनी कहानी जारी रखी। वह कहती गयी—"पता नहीं मिस्टर साहा अपनी सीट पर बैठे क्या करते रहे, पर हमारी दशा तो यत्परोनास्ति शोचनीय हो उठी। प्रकृति के विकराल रूप के सामने हमारा वह छोटा सा पंछी-जैसा प्लेन अस्त-व्यस्त भीत-त्रस्त सा लड़खड़ाने लग गया, और अन्दर बैठे हम दोनों भाई-बहिन लुढ़क-लुढ़ककर कभी इधर, तो कभी उधर गिरने लगे। न हारीत भैया एक बोल बोलते थे, न मेरे मुँह से ही कुछ चीख-पुकार निकलती थी। मानो हम दोनों को पहिले ही प्रकृति ने जड़ बना दिया हो। हमारा प्राण शायद प्लेन के गिरकर चूर-चूर होने की प्रतीक्षा में था कि अति धीमे स्वर में हमें सुनायी पड़ा, "हारीत! जरा सँभलकर बैठना। मैं इस प्लेन को हवा के ऊपर ले जा रहा हूँ।"

"यह आवाज मिस्टर साहा की थी, जो उन्होंने अपने सीट से फोन में कही, किन्तु उस समय हमें तो ऐसा मालूम हुआ कि गहरे जल के अन्दर बैठकर किसी ने सैकड़ों योजन की दूरी से यह सन्देश हमको दिया है।"

"इस विपत्ति काल में भी मेरे मन में उस प्रसिद्ध घटना का चित्र उभर आया जिसमें टाइटानिक जहाज के डूबते समय फिलिप नामक साहसी रेडियो कर्मचारी के गले तक पानी आ जाने पर भी वह सहायता के लिए बेतार के तार से बराबर एस० ओ० एस० (विपत्ति में सहायता की पुकार) भेजता जा रहा था।"

"बाप रे बाप! कितनी खतरनाक थी तुम्हारी यह यात्रा!" अलका ने कहा।

"अवश्य! यह तो हमारा सौभाग्य था कि जो माँ धरित्री की गोद में हम लोग जीते-जागते लौट आये, नहीं तो प्लेन गिरकर चूर-चूर हो जाने में कसर ही क्या रह गई थी ?"

"खैर, न जाने कब तक मैं अचेत सी रही। मुझे तब होश आया जब भैया ने मुझसे कहा कि 'मिस्टर साहा की अपूर्व दक्षता से आज अपने प्राण बच गये हैं। वे अपने प्लेन को हवा के बहुत ऊपर उठा लाये हैं।"

"किन्तु दिग्भ्रान्त भी हो गया हूँ, मिस्टर हारीत!" साहा ने कहा।

भैया प्रबल भय की आशंका से बोल उठे—"तो अब ?"

"हिश, यह भी कोई डरने की बात है? मेरे स्टाक में भोजन का सामान पर्याप्त मात्रा में है, इसका इंजन बहुत मजबूत है। यदि ऊपर-ऊपर पेट्रोल मिल जाया करता तो मैं इस वायुयान से अटलान्टिक सागर को पार कर जाने का साहस रखता हूँ।"

"वाह भाई खूब! तो दीखता है कि आज रात इस उड़नखटोले पर ही बितानी पड़ेगी।"

"शायद, लैंडिंग ग्राउन्ड न मिलने तक इसे कहीं उतारा भी तो नहीं जा सकता।"

भैया बोले, "अच्छा, इस समय हम लोग कहाँ पर से चल रहे हैं?"

"हम लोग बहुत ऊँचाई पर हैं, अँधेरे में ठीक कुछ दिखाई नहीं पड़ रहा है। फिर भी मेरा अनुमान है कि हम शायद अफगानिस्तान के आस-पास हैं। सामने की काली-काली अस्पष्ट रेखाएँ हिन्दूकुश पर्वत की मालूम पड़ती हैं।"

"मैंने खिड़की से झाँककर देखा, अनन्त आकाश में कोटि-कोटि तारिकाओं की माला गूँथे मणि-कुन्तला निशीथिनी धीर पद-चाप से दिनकर की उज्ज्वल रश्मियों में अपना अस्तित्व मिटाने चली जा रही है। मेरे मुँह से उच्छ्वसित स्वर निकल पड़ा "ओह, इतनी मंद गति से रात बीत रही है कि न मालूम सबेरा कब होगा?"

भैया ने मेरी पीठ थपथपायी। बोले, "सचमुच तू बहुत घबड़ा गई है। अभी तीन-चार घंटे और रात बाकी है। अब तू आराम से सो जा नीहार, अब कोई डर नहीं है।"

"जीवन का मोह भी कितना प्रबल है! यह मैं उस दिन समझ पायी। आपदा आयी और टल गयी। प्राण बच गये। परम परितृप्ति से मेरी आँखें मिच गईं। जैसे किसी बड़े युद्ध को जीतकर सेनापति सन्तोष की नींद सोता है, उसी प्रकार अपने बैठने की सीट पर ही मैं गुड़ी-मुड़ी होकर शान्तिपूर्वक सो गई।"

"न जाने कब तक मैं बेखबर सोती रही। भैया की आवाज से आँख खुली। देखा कि हमारा प्लेन काबुल के हवाई अड्डे पर स्थिर खड़ा था।"

हमारा प्लेन किसी महाराजा का प्राइवेट प्लेन था, और मिस्टर साहा महाराजा के किसी आत्मीय को लेने क्वेटा जा रहे थे। इतनी दूर की यात्रा के एकाकीपन को मिटाने के लिए वे महाराजा की आज्ञा लेकर हम दोनों को क्वेटा की सैर कराने ले गये थे। किन्तु रात के अन्धड़ में पड़कर उन्होंने हमें काबुल में उतारा। इस भयंकर यात्रा के बाद हम दोनों भाई-बहिनों का साहस कुछ घंटे बाद ही उसी प्लेन में यात्रा करने का न हुआ। किन्तु साहा को क्वेटा पहुँचना आवश्यक था।

भैया ने उनसे कहा—"मिस्टर साहा! तुम्हें तो अब क्वेटा लौटना पड़ेगा। हम दोनों अभी दो चार दिन यहाँ ठहरेंगे।" फिर हम दोनों एक अच्छे से होटल में ठहर गये।

"अच्छी तरह आराम करके दिन में तीसरे पहर हम दोनों थाने की खोज में निकले जिससे कि कुछ खोज की जा सके।"

"समूचे देश को मसजिदों और मीनारों का देश ही कहा जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी। बाजार में सड़क की दोनों तरफ ऊँचे-ऊँचे मकान थे। उनके नीचे के भाग में अधिकतर फलों की दूकानें थीं। अंगूर, बेदाना, नाशपाती, अखरोट, बादाम, पिस्ता के अम्बार लगे थे जिन्हें देखकर जी ललच उठता था। भैया से न रहा गया। बोले, 'कुछ फल खरीद लो, नीहार'।"

"मैंने कहा—"किसी अंगूर की बढ़िया दूकान पर चलिये।" टैक्सी रुकवा कर हम उतर पड़े। एक दूकान के फल हमें आकर्षक मालूम हुए, उस पर सात-आठ साल का एक लड़का बैठा था। हमें देखकर वह चट से उठकर खड़ा हो गया। फिर पश्तो भाषा में वह जो कुछ बोला वह हमारी समझ में नहीं आया। भैया अंगूर की भरी टोकरी पर हाथ रखकर बोले, 'यह चाहिए।'

लड़का दौड़कर अन्दर चला गया। हम समझ गये कि अपने अभिभावक को बुलाने गया है, परन्तु शिशु तत्क्षण ही लौट आया। उसके साथ-साथ ही चिक के अन्दर से काले बुरके की झलक मालूम हुई। चिक के अन्दर से बड़ी बीबी साफ हिन्दी में बोलीं—'आप अन्दर चली आइये बहिनजी, मैं सब ठीक से दे दूँगी?'

भैया बोले, 'चली जा नीहार! परदानशीन है वह इधर न आ सकेगी।'

मैंने कुछ हिचकिचाते हुए ज्यों ही पैर अन्दर रखा, त्यों ही बीबी ने मेरा हाथ कसकर पकड़ लिया और अन्दर की तरफ खींचती हुई मुझे ले चली। मैं विरोध करना ही चाहती थी कि बीबी ने मेरे कान के पास मुँह करके धीरे से कहा—'डरने की कोई बात नहीं, कुछ आपबीती सुनानी है।'

इन पूर्वीय देशों में सहस्र रजनी चरित्र की सी आश्चर्य-मय घटनाएँ घटित होने में क्या देर लगती है! सो मैंने पक्का समझ लिया कि यह रात का किस्सा कहनेवाली दूसरी जुबेदाबानू है जो मुझे आश्चर्यमय कक्षाओं से परि-चित कराना चाह रही है।

खैर, दो कमरे पार कर बीबी मुझे तीसरे कमरे में खींच लाई। यह कमरा कुछ अच्छे तरीके से सजा हुआ था। फर्श पर बगदादी गलीचा बिछा हुआ था। ऊपर झाड़-फानूस भी टँगे थे। बीबी ने मुझे रेशमी गद्दा-वाले एक पलँग पर बैठाया, फिर अपना बुर्का उलटकर बोली—"पहचाना, दीदी नीहार?"

बरसात की उस संध्या के समय क्लब के कमरे में नीहार की कहानी सुनने में मग्न तरुणियाँ आश्चर्यचकित होकर एक साथ बोल उठीं—"क्या वह तुम्हारी बहिन थी?"

"हाँ, एक अफगान फल-विक्रेता के हरम में युग की खोयी बहिन आश्चर्यमय तरीके से मिल गयी। यह घटना कल्पना से भी परे थी।"

"परन्तु मैं खुश न हुई। सो मेरे मुँह से निकल गया, 'इस विदेशी वेश में सजी तुम अपने जीवन में रम गई हो क्या'?"

अब तो इला की आँखों से मुक्ता-विन्दु से आँसू टपकने लगे। बोली, 'लेकिन भैया से कुछ न कहना।'

"यह कैसे हो सकता है? तुम्हें खोजने के लिए वे सारे मध्यपूर्व के देश घूमकर देखने को तैयार होकर आये हैं।"

"किन्तु मेरा दुर्भाग्य! वह अवनति के निम्नतम गर्त में गिर चुका है। मेरा छुटकारा अब कभी भी नहीं हो सकता।"

मैंने रुखाई से कहा, "क्यों नहीं हो सकता? इस गृहस्वामी ने तुम्हें जितने दामों पर खरीदा है, हम उसके दुगने दाम देकर तुम्हें खरीद ले जायेंगे।"

"पैसे की तो कोई बात ही नहीं है दीदी, रहमान ने मुझे 'जूतामारी की हाट' से वैसे ही उठाया था। ओफ! वह परिस्थिति भी कितनी गन्दी और घृणित थी जिसका वर्णन करने की न तो मुझमें शक्ति है और न वाणी! खैबर दर्रे के बाद जितनी भी सीमाएँ पार करनी पड़ीं, उन सबमें हम छोकरियों की टोली का खूब खुलकर प्रयोग किया गया। कौओं और गिद्धों से भी बदतर उन पहरेदारों और चौकीदारों को सन्तुष्ट करने के बाद ही हमें ले जानेवाले मुखिये आगे बढ़ सकते थे। राहत मिली इस काबुल की मेड़ पर। वहाँ के जागीरदार ने ऐलान करवा दिया था कि व्यापारी के सिर पर पाँच जूता मारकर जिसको जो छोकरी पसन्द हो वह इन छोकरियों की टोली में से ले जाय। रहमान उस दिन उसी गाँव के अपने बगीचे से फल तुड़वाने गया था। ऐलान सुनकर उसने मुझे चुन लिया। उसी बाजार में मैंने दूर से त्रिदिब भैया को देखा था। मैंने हाथ हिलाया, जोर से चिल्लायी भी, पर डेढ़ साल से पहने हुए फटे चिथड़े से सलवार दुपट्टा में लिपटी मैं, भला उनकी पहिचान में कैसे आ सकती थी?"

"मगर अब तो—

" 'मगर' की तो अब कोई गुंजाइश ही नहीं रही दीदी! समस्या सवाल बनकर सामने अड़ी है। और वह सवाल भी ऐसा कि जिसका हल कभी सम्भव नहीं हो सकता। किसी भी कीमत पर मातृत्व को खरीदा जा सकता है क्या?"

"मैं आहत होकर चीख पड़ी—'इला'!'

"उसकी आँखें कातरता से भर उठीं। धीरे-धीरे बोली—'वह भी एक नहीं तीन-तीन—शीराज, रुखसाना और अफसाना! जरा इधर तो आओ'।"

"अन्दर के आँगन से गुलाब के फूल-सी दो छोटी-

छोटी छोकरियाँ और बाहर से वही बालक दौड़ा हुआ आया।"

'उसी समय भैया अधीरता से पुकार उठे—नीहार!'

इला ने मेरा हाथ पकड़ा। 'भैया को एक गिलास दूध पिला दो।'

"नहीं।"

'तो फिर बेदाना, नाशपाती, अंगूर में से कुछ तो ले लेवें।' लाचार मैंने भीतर से चिल्लाकर भैया से कहा, 'कुछ अंगूर तो चीख लो! मैं बीबी के पैसे चुकाकर अभी आई।'

"भैया हँस पड़े। बोले, 'भला तू उसकी पश्तो भाषा को क्या समझेगी?"

"वस्तुतः मेरी आँखें अफसाना और रुखसाना पर से हटती न थीं। सुघड़ और कलात्मक ढंग की तसवीर सी दो निर्दोष बालिकाएँ! मैं सोच रही थी कि भला, इनकी माँ इन्हें कैसे छोड़े!"

"इला की आँखों से बराबर आँसू टपक रहे थे। बोली, 'दीदी, तुम भैया से कुछ न कहना, उनकी छाती फट जायगी'।"

"किन्तु"

"उसने कहा, तो किन्तु परन्तु के लिए अब कोई स्थान नहीं है। अब जो कुछ शेष बचा है वह इन तीनों में पर्यवसित हो गया है। इन्हें छोड़ा नहीं जा सकता है। आज यह कहने में मुझे हिचक नहीं कि रहमान मुझ पर कितना मेहरबान है। उसके यहाँ आने के तीन मास बाद शीराज पैदा हुआ था, वह चाहता तो मुझे भगा दे सकता था—"

"मैं तिलमिलाकर चीख पड़ी—" इला!

'दीदी, और मैं यह भी नहीं कह सकती कि शीराज किस नर-पशु की औलाद है।'

'यह सब किस्सा तुमने क्या शुरू किया इला!'

'यह केवल मेरी ही कहानी नहीं है। मेरे समान अगणित अभागिनी अबलाएँ इन प्रदेशों में भरी पड़ी हैं, जिनका कोई हिसाब-किताब नहीं है। खैर, उस परितापमय जीवन के इन दोष-चित्रण को रहमान ने कभी घृणा की दृष्टि से नहीं देखा। वह प्यार और दुलार से ही इस बालक का पालन-पोषण कर रहा है। और ये दोनों बालिकाएँ तो रहमान की ही रूप-छवि हैं।'

"मैंने कुछ खीजकर कहा—'मतलब यह हुआ कि तुम इस नकली घर-गृहस्थी में—'

'ओह—तो भला असली भी किसे समझूँ? जब हमलावरों ने मेरा तथाकथित घर घेरा, तब ड्योढ़ी पर तैनात चौकीदार से लेकर सास, श्वसुर और विवाहित जीवन के जीवन-साथी तक सब अलोप हो गये। हिन्दुस्तान के उस पवित्र अन्तःपुर में सम्पूर्ण एकाकी तरुणी वधू को चुपचाप आत्मसमर्पण कर देने के अतिरिक्त और क्या सहारा रह गया था? किसी ने हाथ पकड़कर यह नहीं कहा कि चलो भागें! राजपूती शौर्य से किसी ने न कहा कि चलो लड़कर खेत रहें! घर में क्या नहीं था? —बन्दूक, पिस्तौल, तलवारों, भालों से घर लैस था। भला एक तो गोली चलायी होती! एक तो फायर करके शत्रु की शक्ति का अनुमान लगाया होता! तो बताओ अपना किसे कहूँ, जानूँ और समझूँ?'

"मैं मौन होकर सुन रही थी। वह कहती जा रही थी,—इसीलिए मैं अपने वतन को अब कभी याद भी नहीं करती, और न पूर्व जीवन की सुख-समृद्धि के लिए लालायित ही हूँ। मेरे सामने मेरे पंकिल जीवन के ऊपर खिले यह अम्लान कमल हैं। इन्हीं को लेकर मैं सब भूली हूँ। दीदी, तुम सब मुझे माफ कर देना।"

"मैं उठकर खड़ी हो गई।"

इला मुझसे लिपटकर रो पड़ी "अलविदा! दीदी, अलविदा!"

इतना कहकर नीहार एकाएक चुप हो गयी। उसकी आँखें सजल हो उठी थीं। बहुत देर तक तरुणियों में सन्नाटा छाया रहा। फिर अरुणा बोली—"फिर?"

नीहार बोली—"बस वही हुआ, 'गए थे हरि भजन को, ओटन लगे कपास।' हमारी सब योजना, सब मंसूबे मटियामेट हो गये। काहिरा के सप्तम आश्चर्य पिरामिड, हारूँरशीद के बगदाद, नील नदी के लुभावने दृश्य,—किसी को देखने की इच्छा न रही। सबसे विरक्ति

हो गयी। परिस्थिति की असहाय दशा ने हृदय में ऐसी ग्लानि उत्पन्न की कि जी एकदम उचाट हो गया। अपने मर्माहत और हताश हृदय में रुखसाना और अफ़साना की कभी न सुलझने वाली उलझन लेकर हम दोनों भाई-बहिन उसी रात 'एयर-फ्रांस' के विमान से दिल्ली चले आये। 'जूता-मारी की हाट' ने हमें मिलाया भी, पर रुलाया भी खूब।"

क्लब के बाहर तूफान पूरे वेग से चल रहा था। नीहार की कथा समाप्त होने पर उस कमरे में सन्नाटा छा गया। किंतु सुरक्षा में रहनेवाली और सुखी आभिजात्य वर्ग की उन महिलाओं के हृदयों में भावों और विचारों का प्रचंड तूफान मचा हुआ था। केवल किसी-किसी महिला की हलकी सिसकियाँ, जो उद्योग करने पर भी न दबती थीं, उस कमरे की निस्तब्धता को कभी-कभी भंग कर देती थीं।

१९५७

❀ ❀ ❀

कंचन की खोज

श्री भगवतस्वरूप चतुर्वेदी आई० पी० एस०

उस २३ फरवरी सन् १९५३ की रात को १२ बजे के लगभग इलाहाबाद रेलवे स्टेशन पर कुछ यात्री अर्द्ध-सुप्त से अपने सामान के सहारे, या बेंच पर टिके, निस्पन्द पड़े थे। कुछ लोग निद्रा की अवहेलना कर कभी-कभी अपनी लाल आँखें खोलकर प्लेटफार्म पर लगी बड़ी घड़ी को देखते। फिर भी उनकी बोझिल पलकें जैसे नींद का नशा अपने में भरकर उनको बेहोश किये देतीं। उनके शरीर शिथिल हुए जा रहे थे। रात ठण्डी थी। अँधेरा सघन हो चला था। सहसा स्टेशन की घण्टी बजने पर रात्रि की निद्रा भंग हुई। कुछ देर बाद, अँधेरे को भेदती ट्रेन की उज्ज्वल ज्योति ने लोगों में बिजली की सी गति ला दी। निद्रित प्रदेश जागृत हो उठा। चारों ओर हलचल सी मच गई। किसी ने अपनी गठरी सँभाली। किसी ने बक्स थामा और किसी ने झोला लटकाया। आधी रात में प्रभात का सा जागरण छा गया।

दिल्ली से हावड़ा जाने वाली पारसल एक्सप्रेस उस रात ठीक समय इलाहाबाद स्टेशन पर आई। पारसल के बाबू ने दफ्तर के लोहे के सेफ में से निकाल कर तीन पेटियाँ अपने सामने ट्रेन के ब्रेकवान मे रखवा दीं। इन पेटियों में सोना था जिसका मूल्य एक लाख चौवन हजार रुपये (१,५४,००० रु०) था। ट्रेन के गार्ड ने अपनी निगरानी में ये पेटियाँ ब्रेकवान में रक्खीं और उसमें ई० पी० लाक (एक तरह का ताला जो आसानी से नहीं खोला जा सकता) लगा दिया। इसके बाद ब्रेकवान शन्टिंग के लिए प्लेटफार्म के बाहर ले जाया गया और लगभग पन्द्रह मिनट बाद फिर ट्रेन में जोड़ दिया गया। नियत समय पर पारसल एक्सप्रेस इलाहाबाद स्टेशन से चल दी।

यह ट्रेन नित्यप्रति की भाँति विन्ध्याचल स्टेशन पर रुकी। ट्रेन का गार्ड अपने डिब्बे से उतरकर स्टेशन मास्टर के दफ्तर की ओर जाने लगा और चलते-चलते उसने एक दृष्टि इस ब्रेकवान पर डाली। वह आश्चर्य में अवाक रह गया। उसे ई० पी० लाक टूटा मिला। ब्रेकवान का फाटक भी कुछ ढीला सा प्रतीत हुआ। उसने समझा कि इस वान से कोई वस्तु चोरी की गई है। इसलिए तुरन्त उसने इसकी रिपोर्ट स्टेशन मास्टर विन्ध्याचल को और गवर्नमेन्ट रेलवे पुलिस को कर दी। चूँकि ट्रेन यहाँ थोड़ी ही देर रुकती थी और अँधेरे में अधिक देखभाल करना सम्भव नहीं था, गार्ड ने निश्चय किया कि इस मामले की छानबीन अगले स्टेशन पर करेगा जहाँ यह ट्रेन कुछ समय के लिए रुकेगी। जब गाड़ी मिर्जापुर स्टेशन पर ठहरी और जब रेलवे पुलिस और रेलवे के अधिकारियों के सामने ब्रेकवान के अन्दर रक्खी पारसलों का मिलान किया गया तो तीनों सोने की पेटियाँ नदारद मिलीं। सब लोग स्तम्भित से हो गये। इलाहाबाद और विन्ध्याचल स्टेशनों के बीच में इस तीव्र गति से चलनेवाली एक्सप्रेस

में से सोने की पेटियों को जैसे पर लग गये हों, और वे वेग गति से अंधकार के सघन प्रदेश में उड़कर लुप्त हो गई हों। इस अपार सम्पदा में तड़ित् की सी तीव्रता और क्षणिकता! लोगों ने कहा कि लक्ष्मी अस्थिर होती है। इस अस्थिरता में तो अदृश्य हो जाने की सहज चंचलता और कर्पूर की-सी अस्तित्व-विस्मृतता थी।

× × ×

इस अद्भुत घटना का अन्वेषण रेलवे पुलिस के इन्सपेक्टर के नियंत्रण में मिर्जापुर और इलाहाबाद के गवर्नमेन्ट रेलवे पुलिस के थानाध्यक्षों ने प्रारम्भ किया। उनको दोनों स्थानों की जिला पुलिस के अधिकारियों ने पूर्ण सहायता दी। सबसे पहिले इस काण्ड के घटनास्थल का पता लगाना था। यही नहीं मालूम था कि इलाहाबाद और विन्ध्याचल के बीच में यह घटना कहाँ और कैसे घटित हुई। इसीलिए इन दोनों स्टेशनों के बीच रेलवे लाइन के पास की भूमि की गहरी खोज आरम्भ की गई। विन्ध्य पर्वत-श्रेणी के गहरे नालों, उठे टीलों और सघन झाड़ियों की छानबीन करने पर भी इस अपूर्व राशि का कुछ पता न चला। केवल यही जानकारी हो सकी कि खोये हुए कुछ सोने पर भारत सरकार का "अशोक चिह्न" अंकित था, और कुछ पर "बीकानेर के बैंक" की मोहर लगी थी।

इस अपराध का विवेचन करते हुए इलाहाबाद के रेलवे पुलिस के थानाध्यक्ष ने कहा, "हो सकता है कि इस मामले में रेलवे के कर्मचारियों की भी साँठ-गाँठ हो। यह कैसे मुमकिन है कि इतनी पारसलों के बीच में से चोरों ने सिर्फ ये ही तीन पेटियाँ छाँट कर ले लीं। बाकी पारसलों में हाथ भी नहीं लगाया।"

"लेकिन हमको केवल इसी एक रास्ते पर नहीं चलना चाहिए", इन्सपेक्टर ने समझाते हुए कहा, "मान लो कि रेलवेवालों ने इन पेटियों का पता मुलजिमों को दे भी दिया हो पर यह जानने से ही तो काम पूरा नहीं होता। हम लोगों को तो यह पता लगाना है कि जुर्म करने वाले मुलजिम कौन हो सकते हैं। और फिर खोया हुआ सोना भी तो बरामद होना चाहिए।"

यह बात सुनकर अपराध अन्वेषण करने वाले सोच में पड़ गये। किसी की कुछ समझ में ही नहीं आता था कि क्या किया जावे। कुछ देर बाद शान्ति भंग करते हुए इन्सपेक्टर ने गम्भीरता से कहा, "मेरी समझ में हमको उन लोगों की एक फिहरिस्त बनानी चाहिए जो रेल में चोरी करने के आदी हैं। फिर उन लोगों की माकूल जाँच करनी चाहिए और उनके साथियों, दोस्तों और रिश्तेदारों का पता लगाना चाहिए।"

इस सुझाव को सबने माना और इस दिशा में पुलिस की जाँच शुरू हो गई। इलाहाबाद के थानाध्यक्ष का संशय कि इस कार्य में रेलवे कर्मचारियों की जानकारी है, जाँच से निर्मूल सिद्ध हुआ। इलाहाबाद के जिले की पुलिस ने भी बड़ी तत्परता और लगन से काम किया।

एक दिन शहर की स्थानीय पुलिस को विश्वस्त सूत्र से पता चला कि गत दिवस एक दरिद्र पासी जाति के व्यक्ति के घर पुत्रोत्सव बड़ी धूम-धाम से मनाया गया। उत्सव पर अनेक प्रकार के रास-रंग हुए। गाना-बजाना हुआ जिसके उपलक्ष में गाना गानेवाले हिजड़ों को सोना दान दिया गया। इस पासी की असली आर्थिक दशा की जाँच से पूर्ण विश्वास होने लगा कि इतना व्यय करने के लिए इतना धन और दान देने के लिए इतना सोना ईमानदारी से नहीं आया होगा। और गहरी छानबीन करने के बाद पता चला कि इस पासी का सम्बन्ध बदमाशों के एक ऐसे गिरोह से है जो रेल में चोरी करते हैं।

उधर रेलवे पुलिस के कर्मचारियों ने रेलवे में चोरी करने वाले व्यक्तियों की सूची तैयार कर ली थी। जगह-जगह सिपाहियों की ड्यूटी लगाकर जो भी खबर मिलती उसका संकलन किया जा रहा था। पर किसी ओर भी सफलता नहीं मिल रही थी। पुलिस कर्मचारी व्यस्त थे, पर निराश हो चले थे। अचानक एक दिन एक सिपाही ने, जो सादे कपड़ों में स्टेशन-यार्ड में ड्यूटी पर था, कुछ औरतों को आपस में बातें करते हुए सुना कि उनमें से एक ने अपने किसी रिश्तेदार के घर में बहुत सा सोना देखा था। ये औरतें स्टेशन-यार्ड में कोयला बीनने के लिए एक ठेकेदार के यहाँ नौकर थीं। सिपाही ने कान लगाकर सब वार्तालाप सुनी। उसने औरतों से सोने के बारे में कुछ और बातें भी जानना चाहीं, परन्तु उन्होंने कुछ नहीं बताया और चुप हो गईं। वह सिपाही अपने प्रयत्न

में लगा रहा और इसीलिए उसने उस औरत को जो सोने के बारे में बात कह रही थी, इलाहाबाद के रेलवे पुलिस के थानाध्यक्ष के सामने पेश किया। थानाध्यक्ष ने जो जाँच-पड़ताल शुरू की तो उस औरत ने वह मकान बता दिया जहाँ उसने सोना देखा था। यह जानने के बाद पुलिस ने चौबीसों घण्टे इस मकान की निगरानी शुरू कर दी और सादे कपड़ों में सिपाही आस-पास लगा दिये।

जब पुलिस की जाँच सरगर्मी से होने लगी और रेलवे में चोरी करने वालों के बारे में पूछ-ताँछ शुरू की गई तो एक दिन ननकू नामक एक व्यक्ति स्वत: इलाहाबाद के सिटी मैजिस्ट्रेट की अदालत में हाजिर हो गया और उसने प्रार्थना की कि वह जेल भेज दिया जावे क्योंकि पुलिस उसके पीछे पड़ी है। यह बड़ी अद्भुत प्रार्थना थी, जिससे इस अपराध के पुलिस-विवेचक सतर्क हो गये। कुछ दिनों बाद रेलवे का नामी चोर सुन्दर भी इसी तरह अदालत में हाजिर हो गया और उसकी भी जेल जाने की प्रार्थना तुरन्त स्वीकार कर ली गयी। ननकू और सुन्दर इलाहाबाद में रेलवे में चोरी करने वाले एक बड़े गिरोह के सदस्य समझे जाते थे जिसका अगुआ रामनाथ नाम का एक कुप्रसिद्ध बतलाया जाता था, इस केस की जाँच करने वाले पुलिस अधिकारियों को यह निश्चय हो गया कि यदि इस समय सतर्कता और संलग्नता से काम न लिया गया तो इस गिरोह के सब सदस्य एक-एक करके स्वत: जेल में चले जावेंगे और फिर उनसे कुछ भी पता लगाने का अवसर नहीं मिलेगा। इसीलिए पुलिस अधिकारियों ने तब तक की प्राप्त जानकारी पर विचार-विनिमय किया। यह निष्कर्ष निकाला गया कि अब अन्वेषण तेजी से होना चाहिए और जिन मकानों में सोना रक्खा कहा जाता है उनकी फौरन तलाशी ले लेनी चाहिए। पुलिस ने उन मकानों पर छापा मारा और उनकी तलाशी बड़ी होशियारी से ली। उस कोयला बीनने वाली औरत के बताये हुए मकान से सोने का एक बड़ा टुकड़ा निकला जिस पर "बैंक आफ बीकानेर" की मोहर थी। यह मकान सुन्दर के परिवार के एक व्यक्ति का था। सुन्दर तो जेल में था। इसलिए उसकी माँ से पूछ-ताँछ की गई। उसकी माँ ने कुछ ऐसी बातें बताईं जिनसे इस अपराध-अन्वेषण की कड़ियाँ जुड़ने सी लगीं।

उस पासी के घर की तलाशी में, जहाँ पुत्रोत्सव हुआ था, कुछ सोने के टुकड़े जमीन में से खोदकर निकाले गये। इन टुकड़ों में से कुछ पर भारत-सरकार के "अशोक चिह्न" थे। अब तो यह निश्चय हो गया कि अपराधी अधिकतर इलाहाबाद जिले में ही हैं। एक एक करके अभियुक्त पकड़े जाने लगे। जब उन्होंने देखा कि पुलिस को चोरी किया हुआ कुछ सोना भी मिल गया है, तब उनकी बाह्य दृढ़ता आन्तरिक आन्दोलन में परिणत हो गई। वे अपनी काली करतूतों को स्वयं ही बतलाने लगे।

× × ×

इस घटना की वास्तविकता का पता चलने पर ही इसकी विचित्रता का भी ज्ञान हुआ। सचमुच वास्तविकता और सत्यता का पूर्ण अंश होते हुए भी यह कपोलकल्पित कहानी मालूम होती थी। उसका पूर्ण विवरण इस प्रकार है।

हेमन्त ऋतु का अवसान था। फागुन की हिलोरें लोगों के मन में उन्मत्तता और उल्लास भरे दे रही थीं। फाग के रास-रंग का ध्यान कर सारा जग मदमाता सा दीख पड़ता था। इस अपराधियों के गिरोह के प्रत्येक व्यक्ति के मन में भी गुलाल का रंग चढ़ने लगा। आँखों में मस्ती छलकने लगी। उन्होंने होली के त्योहार को रँगीलेपन से मनाने की ठानी। सबने निश्चय किया कि अबकी से बड़ा हाथ मारकर होली के बाद तक निश्चिन्त हो जायें।

वे सब रेलवे की चोरी करने में निपुण थे। इसीलिए रेलवे यार्ड में, स्टेशन के प्लेटफार्म पर, पारसल दफ्तर में और मालगाड़ी के डिब्बों पर उनकी तीक्ष्ण नजरें किसी अमूल्य सम्पदा की खोज करती रहीं। एक दिन अचानक उनको इन तीन सोने की पेटियों का पता चल गया। यह भी मालूम हो गया कि यह अमूल्य सोना पारसल एक्सप्रेस से कलकत्ता भेजा जायगा। फिर क्या था! उन लोगों ने उसके अपहरण की योजना भी बना डाली। एक ने ई० पी० लाक की कुंजी भी बना ली और ताला तोड़ने की व्यवस्था भी तैयार कर ली। जब सोने की तीनों पेटियाँ उस रात को पारसल एक्सप्रेस के ब्रेकवान में रक्खी गईं तब गिरोह के गुरु रामनाथ ने निश्चय किया कि यह 'स्वर्ण अवसर' हाथ से नहीं जाने देना चाहिए और

कुल चार हिम्मतवाले चतुर अभ्यस्त लोग ही इस काम को करें। यह लोग रामनाथ, शम्भू, सुन्दर और ननकू थे। इन लोगों ने चार थर्ड क्लास के टिकट मिर्जापुर के लिए खरीदे। जब पारसल एक्सप्रेस इलाहाबाद से चलने को हुई तो ये चारों व्यक्ति उस ब्रेकवान के पास वाले डिब्बे में बैठ गये जिसमें सोने की पेटियाँ रक्खी थीं। इलाहाबाद स्टेशन से चलकर ट्रेन कुछ मिनट के लिए यमुना के पुल के पास काशन होने के कारण रुक गयी। यह अवसर कर्मठ लोगों के कर्म करने का था। चट से रामनाथ और शम्भू थर्ड क्लास के डिब्बे से उतरे। रामनाथ ब्रेकवान के बफर पर लटक गया और शम्भू पहियों के पास लगे लोहे के फ्रेम के नीचे घुस गया। फिर एक्सप्रेस अपनी नियमित गति, लगभग ४५, ५० मील प्रति घण्टा, पर चलने लगी।

चलती ट्रेन में रामनाथ और शम्भू अपनी अपनी जगह से निकल कर ब्रेकवान की छत पर चढ़ गये। वहाँ शम्भू ने रामनाथ को पैरों के टखनों को पकड़ कर ब्रेकवान के दरवाजे की तरफ नीचे लटका दिया। छत से नीचे लटके-लटके रामनाथ ने दरवाजे के ई० पी० लाक को खोल दिया। उसकी कमर में बँधी धोती को शम्भू ने जोर से पकड़ लिया, और ताला खुलते ही ब्रेकवान के दरवाजे को हटाकर उसने रामनाथ को उसमें घुसने में सहारा दिया। ब्रेकवान के अन्दर पहुँचकर रामनाथ ने चटपट सोने की तीनों पेटी खोज निकाली। उसने एक एक करके उन पेटियों को लटकती धोती में बाँध कर शम्भू के हाथों में ब्रेकवान की छत पर पहुँचा दिया। अपना काम कुशलता से करके—रामनाथ भी उसी धोती के सहारे छत पर चढ़ गया। इसके बाद वे लोग चट से खिसक कर अपनी-अपनी जगह फिर छिप गये। इस सफल कार्य करने की चतुरता और जोखिम का कुछ आभास इस बात पर विचार करने से हो सकता है कि उस समय पारसल एक्सप्रेस लगातार तीव्र गति से विन्ध्याचल की ओर जा रही थी। जब ट्रेन की गति विन्ध्याचल स्टेशन के "आउटर सिगनल" के पास मन्द हुई तब रामनाथ और शम्भू ने धीरे से सोने की पेटियाँ रेल की पटरी के किनारे डाल दीं। ट्रेन के स्टेशन पर रुकने पर चारों व्यक्ति प्लेटफार्म की दूसरी तरफ से उतरकर उस जगह की ओर चल दिये जहाँ उन्होंने पेटियाँ गिराई थीं। इस प्रकार रात्रि के अन्धकार में यह उज्ज्वल धनराशि उनके हाथ लगी और वे पटरी और सड़क छोड़कर समीपवर्ती जंगल में लुप्त हो गये जिनकी पग-डंडियों से वे परिचित थे।

वे लोग उस रात्रि की निशीथ बेला में गंगा के किनारे एक घाट पर पहुँचे। वहाँ केवल एक नौका थी और उसका केवट सोया हुआ था। उन्होंने मल्लाह को जगाकर और उतराई का अच्छा मेहनताना देकर नाव में नदी पार की। उतरते समय उन्होंने सोने की पेटियों के ऊपर चढ़ी पारसल के टाट, कागज इत्यादि को, जिस पर रेलवे की मोहरें लगी थीं और पता लिखा था, खोलकर गंगा की धारा में बहा दिया। दूसरी पार कुछ दूर चलकर उन्होंने एक स्थान से एक इक्का किराये पर किया और वे गोपीगंज आये। गोपीगंज से वे छोटी लाइन की ट्रेन से इलाहाबाद सिटी स्टेशन पर आये और वहाँ से अपने-अपने स्थानों को चले गये। बाद में इस स्वर्ण का विभाजन हुआ। उस अपराधियों के गुट के सब लोग सोना प्राप्त कर और निश्चिन्त होकर उस सम्पदा के मद की प्रगाढ़ निद्रा में खूब सोये।

इधर पुलिस कर्मचारियों के जागने की बारी आई। रात-दिन जुटकर इस केस का अन्वेषण आरम्भ हुआ। जब सुन्दर के सम्बन्धी के घर की तलाशी पर "बैंक आफ बीकानेर" की मोहर लगा हुआ सोना पुलिस को प्राप्त हुआ, और जब सुन्दर को जेल से निकाल कर इसका ज्ञान करवाया गया तब वह अपने घुटनों के बीच सर रखकर केवल यही कह सका, "दरोगाजी, मुझे क्या मालूम था कि आपने पहिले ही सब बातें जान लीं। अब दाई से पेट क्या छिपाना ?"

"तो अब सब बातें पूरी-पूरी और सही-सही बताते चलो। इसी में तुम्हारी भलाई है।" रेलवे पुलिस के थानाध्यक्ष ने कहा।

सुन्दर ने इस काण्ड का इकबाल करते हुए बताया कि उसके अतिरिक्त इस मामले में रेलवे में चोरी करने वाले छः दक्ष पुरुष थे। वे रामनाथ, ननकू, भगवती, बिचई, किशोर और शम्भू थे। उन सबकी तलाश हुई और वे

एक-एक करके जगह-जगह से गिरफ्तार कर लिये गये। उस पासी ने भी, जिसके घर से तलाशी करने पर भारत सरकार के "अशोक चिह्न" के सोने के टुकड़े मिले थे, बहुत सी ऐसी बातें बतायीं जिनसे यह पूर्ण विश्वास हो गया कि यह कार्य रामनाथ के गिरोह ने ही किया है।

अभियुक्त भगवती की गिरफ्तारी पर कुछ सोना उसके पास से निकला। इस अपराध को स्वीकार करने पर उसने एक हँसुली भी दी जो इस सोने से बनी थी। उसने यह भी बतलाया कि अपहृत सोने का कुछ भाग बेचकर उसने लगभग एक हजार रुपये का पुराना ऋण चुकाया है।

ननकू के घर में चोरी किये हुए सोने में से ढाई सेर सोना मिला। इसके अतिरिक्त उसने कुछ सोना अजीब ढंग से छिपा रक्खा था। इलाहाबाद की एक बड़ी सड़क पर एक बरात के स्वागत में बल्लियाँ और बाँस गाड़कर फाटक बनाये गये थे और झंडियाँ लगाई गयी थीं। बरात जाने के बाद यह बल्लियाँ उखाड़ दी गईं पर उन्हें गाड़ने के लिए सड़क में जो एक फुट गहरे गोल गड्ढे किये गये थे, वे खुले ही पड़े रहे। उनमें से एक गड्ढे में ननकू ने सोने का एक बड़ा टुकड़ा रखकर और ऊपर से मिट्टी डालकर छिपा दिया था। उसने यह सोने का टुकड़ा पुलिस को देते हुए बताया कि वह समझता था कि इस स्थान पर उसका सोना उतनी ही हिफाजत से रक्खा था जितना कि किसी बैंक में। जब उसे आवश्यकता होती वह उस सोने को वहाँ से निकाल सकता था।

इस गिरोह का नायक रामनाथ बड़ी कठिनाई से, इस घटना के लगभग एक मास बाद, कानपुर में गिरफ्तार हुआ। वह उस समय तक जगह-जगह लुका-छिपा रहा। उसके पास बहुत सा सोना मिला जिसमें कुछ टुकड़ों पर भारत-सरकार का "अशोक चिन्ह" था। लोहे की एक छेनी और हथौड़ी भी उसके पास से मिली। प्रधान विवेचक ने जब छेनी को ध्यानपूर्वक देखा तो मालूम हुआ कि वह सोने के टुकड़े काटने के काम में लाई गई थी। छेनी की धार पर सोने के बारीक कण चिपक गये थे। अपराध-अन्वेषण में मिली यह छेनी अदालत में बड़े महत्त्व का प्रमाण साबित हुई।

इस गिरोह के और अपराधियों के पास से भी उनके हिस्से का सोना पुलिस ने बरामद किया। अपराध-अन्वेषण के विशेषज्ञों ने इस अपराध के विवेचन में बड़ी लगन से काम किया था। सब अभियुक्त अदालत से दंडित हुए।

सोने के चोर चलती हुई पारसल एक्सप्रेस में से कंचन की खोज कर उसे ले भागे किंतु पुलिस की तत्परता और अनवरत परिश्रम ने उन अपराधियों और उनके खोज किये हुए कंचन को भी खोज निकाला।

१९५८

* * *



सरस्वती
लेख-खंड

लेख-खंड

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

(मूल लेख संक्षिप्त कर दिया गया है।)

बाबू राधाकृष्ण दास

अंग्रेजी शासन के आरम्भ में प्रसिद्ध सेठ अमीचन्द की मृत्यु पर इनके दो पुत्र राय रत्नचन्द्र बहादुर और शाह फतह चन्द्र काशी में आकर बसे। शाह फतहचंद्र की मृत्यु पर उनके पुत्र बाबू हर्षचन्द्र उनकी बड़ी सम्पत्ति तथा प्रतिष्ठा के उत्तराधिकारी हुए। इन्होंने अपनी सम्पत्ति को बहुत कुछ बढ़ाया। इनके पुत्र बाबू गोपालचन्द्र (जिन्होंने कविता में अपना नाम गिरिधर दास रक्खा है) ११ ही वर्ष की अवस्था में इस बड़े वंश के उत्तराधिकारी हुए। उन्होंने अपनी ईश्वर-प्रदत्त चमत्कारिणी बुद्धि से उसी वय में केवल अपने घर ही पर नहीं, वरंच कविता-सिंहासन पर भी अपना अधिकार कर लिया। १३ वर्ष की अवस्था में इन्होंने वाल्मीकीय रामायण का छन्दोबद्ध अनुवाद किया, और फिर १४ वर्ष के थोड़े काल में चालीस ग्रन्थ बनाए।

परन्तु ऐसे महापुरुषों के द्वारा भारत भूमि का अधिक उपकार कराना कदाचित परमेश्वर को इष्ट न था, इसलिए २७ ही वर्ष की छोटी अवस्था में इतने बड़े कामों को करके कवि गोपालचन्द्र अपने छोटे बालकों और बड़ी सम्पत्ति को अनाथ छोड़कर चल बसे। उस समय बालक हरिश्चन्द्र की अवस्था केवल ९ वर्ष की थी, परन्तु 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात'' इस लोकोक्ति के अनुसार बालक हरिश्चन्द्र ने पांच वर्ष की अवस्था ही में अपनी चमत्कारिणी बुद्धि से अपने कविचूड़ामणि पिता को चमत्कृत कर दिया था। पिता (गोपालचन्द्र) कथामृत की रचना कर रहे थे; बालक (हरिश्चन्द्र) खेलते-खेलते पास आ बैठे, बोले हम भी कविता बनावैंगे। पिता ने आश्चर्यपूर्वक कहा तुम्हें उचित तो यही है। उस समय बलरामकथामृत में व्योमासुर-बध का प्रसंग लिखा जा रहा था। बाल-कवि ने तुरन्त यह दोहा बनाया:—

"लै ब्योंड़ा ठाढ़े भये, श्री अनिरुद्ध सुजान।
बानासुर की सैन को, हनन लगे भगवान॥"

पिता ने प्रेमगद्‌गद होकर प्यारे पुत्र को कण्ठ लगा लिया और अपने होनहार पुत्र की कविता को अपने ग्रंथ में सादर स्थान दिया, और आशीर्वाद दिया "तू हमारे नाम को बढ़ावैगा।" हाय! कहाँ है उनकी आत्मा? वह आकर देखै कि उनके पुत्र ने उनका ही नहीं वरन् उनके देश का भी मुख उज्ज्वल किया है।

नौ वर्ष की अवस्था में पितृहीन होकर ये एक प्रकार से स्वतंत्र हो गए। जिनकी स्वतन्त्र प्रकृति एक समय बड़े-बड़े राजपुरुषों और स्वदेशीय 'बड़े-बड़े लोगों' के विरोध से न डरी, उनको बालपन में भी कौन पराधीन रख सकता था, विशेष कर विमाता और सेवकगण? तथापि पढ़ने के लिये वे कालिज में भरती किए गए। यथा समय कालिज जाने लगे। उस समय अंग्रेजी स्कूलों में लड़कों के चरित्र पर विशेष ध्यान रक्खा जाता था। पान खाकर कालिज में जाना निषेध था, पर परम चपल और उद्धत स्वभाव ये कब मानने लगे थे; पान का व्यसन इन्हें बचपन ही से था; खूब पान खाकर जाते और रास्ते में अपने बाग (रामकटोरा) में ठहर कर कुल्ला करके तब कालिज जाते। पढ़ने में भी जैसा चाहिये वैसा जी न लगाते, परन्तु ऐसा कभी न हुआ कि ये परीक्षा में उत्तीर्ण न हुए हों। उस समय अंग्रेजी शिक्षा का बड़ा अभाव था। रईसों में केवल राजा शिवप्रसाद अंग्रेजी पढ़े थे, अतएव इनका बड़ा नाम था। हरिश्चन्द्र भी कुछ दिनों तक उनके पास अंग्रेजी पढ़ने जाया करते थे। इसी नाते ये सदा राजा साहब को 'पूज्यतर, गुरुवर' लिखते और राजा साहब भी इन्हें 'प्रियतर, मित्रवर' लिखते थे। तीन चार वर्ष तक तो पढ़ने का क्रम चला। पर रसिकराज

हरिश्चन्द्र का झुकाव उस समय भी कविता की ओर था परन्तु वही प्राचीन ढर्रे की—शृंगार रस की।

इस समय स्त्रियों का आग्रह श्री जगदीश यात्रा का हुआ। सं० १९२२ (स० १८६४-६५) में ये सकुटुम्ब जगदीश यात्रा को चले। यही समय इन के जीवन में प्रधान परिवर्तन का हुआ। बुरी या भली जो कुछ बातें इनके जीवन की संगिनी हुईं, उनका सूत्रपात इसी समय से हुआ। पढ़ना तो छूट ही गया था।

इसी समय से इनकी रुचि गद्य-पद्यमय कविता की ओर झुकी। वह एक 'प्रवास नाटक' लिखने लगे। परन्तु अभाग्य-वश वह अपूर्ण और अप्रकाशित ही रह गया।

उस यात्रा से लौटने पर इनकी रुचि कविता और देश-हित की ओर विशेष फिरी। इनको निश्चय हुआ कि बिना पाश्चात्य शिक्षा के प्रचार और मातृभाषा के उद्धार के इस देश का सुधार होना कठिन है। उस समय नगर में कोई पाठ-शाला न थी। सरकारी पाठशाला या पादरियों की पाठ-शाला में लड़कों को भेजना और फीस देकर पढ़ाना साधारण लोगों के लिये कठिन था। इसलिये इन्होंने अपने घर पर लड़कों को पढ़ाना आरम्भ किया। दोनों भाई मिल कर लड़कों को पढ़ाते थे। फीस कुछ देनी नहीं पड़ती थी। पुस्तक, स्लेट आदि भी बिना मूल्य ही दी जाती थी। इस कारण धीरे-धीरे लड़कों की संख्या बढ़ने लगी और इनका भी उत्साह बढ़ा। तब इन्होंने एक अध्यापक नियुक्त कर दिया जो लड़कों को पढ़ाने लगा। परन्तु थोड़े ही दिनों में लड़कों की संख्या इतनी अधिक हुई कि इन्होंने सन १८६७ ई० में नियमित रूप से "चौखम्भा स्कूल" स्थापित किया और उसका सब भार अपने सिर रक्खा। उसमें अधिकांश लड़के बिना फीस दिए पढ़ने लगे, पुस्तकादि भी बिना मूल्य वितरित होने लगी, यहाँ तक कि अनाथ लड़कों को खाना कपड़ा तक मिल जाया करता था। इस स्कूल ने काशी ऐसे नगर में अंग्रेजी शिक्षा का कैसा कुछ प्रचार किया, यह बात सर्व साधारण पर विदित है।

मातृभाषा का प्रेम और कविता की रुचि तो बालकपन से ही इनके हृदय में आरोपित थी। अब उसके भी पूर्ण प्रकाश का समय आया। कवि, पण्डित और विद्यारसिकों का समागम तो दिन रात ही होता रहता था, परन्तु अब यह रुचि 'कविवचनसुधा' रूप में प्रकाश रूप से अंकुरित हुई। सन् १८६८ ई० में 'कविवचनसुधा" मासिक पत्र के आकार में निकला। प्राचीन कवियों की कविताओं का प्रकाश ही इसका मुख्य उद्देश्य था। कवि देवकृत 'अष्ट-याम', दीनदयाल गिरिकृत 'अनुरागबाग', चन्दकृत 'राय-सा', मलिक मुहम्मदकृत 'पद्मावत', 'कबीर की साखी', 'बिहारी के दोहे', गिरिधरदासकृत 'नहुषनाटक', तथा शेखसादीकृत 'गुलिस्ताँ' का छन्दोमय अनुवाद आदि ग्रन्थ अंशतः प्रकाशित हुए। परन्तु केवल इतने ही से इनको संतोष न हुआ। उन्होंने देखा कि बिना गद्यरचना इस समय कुछ उपकार नहीं हो सकता। इस समय और प्रांत आगे बढ़ रहे हैं, केवल यही प्रांत सबसे पीछे है, यह सोच कर देशभक्त हरिश्चन्द्र ने देशहित-व्रत धारण किया और कविवचनसुधा को पाक्षिक, फिर साप्ताहिक कर दिया तथा राजनैतिक, सामाजिक आदि आन्दोलन आरम्भ कर दिया और कविवचनसुधा का सिद्धान्त वाक्य यह हुआ :—

"खल गनन सों सज्जन दुखी
मति होहि, हरिपद मति रहै।
उपधर्म छूटैं, स्वत्व निज
भारत गहै, कर दुख बहै॥
बुध तजहि मत्सर, नारि नर
सम होहि, जग आनँद लहै।
तजि ग्रामकविता, सुकविजन की
अमृत बानी सब कहै।"

यद्यपि इस समय इन बातों का कहना कुछ कठिन नहीं प्रतीत होता है, परन्तु उस अंधपरम्परा के समय में इनका प्रकाश्य रूप से इस प्रकार कहना सहज न था। नव्य शिक्षित समाज को 'हरिपद मति रहै' कहना जैसा अरुचिकर था, उससे बढ़कर पुराने 'लकीर के फकीरों' को 'उपधर्म छूटै' कहना उन्हें क्रोधोन्मत्त करना था। जैसा ही अंग्रेज हाकिमों को 'स्वत्व निज भारत गहै, कर (टैक्स) दुख बहै' कहना कर्ण-कटु था, उससे अधिक 'नारि नर सम होहि' कहना हिन्दु-स्तानी भद्र समाज को चिढ़ाना था। परन्तु वीर हरिश्चन्द्र ने जो जी में ठाना उसे कह ही डाला, और जो कहा उसे आजन्म निवाहा भी। इन्हीं कारणों से वह गवर्नमेंट के क्रोध-भाजन हुए, अपने समाज में निन्दित हुए और समय समय पर नव्य समाज से भी बुरे बने, परन्तु जो व्रत उन्होंने धारण किया उसे अन्त तक नहीं छोड़ा, यहाँ तक कि "कविवचन-सुधा' से अपना सम्बन्ध छोड़ने पर भी आजन्म यही व्रत रक्खा।

'विद्यासुन्दर' नाटक की अवतारणा भी इसी समय हुई। नाना प्रकार के गद्य पद्यमय ग्रन्थ बनने और छपने लगे। उस समय हिन्दी का कुछ भी आदर न था। इन पुस्तकों और इस समाचार पत्र को कौन मोल लेता और पढ़ता? परन्तु देशभक्त उदार हरिश्चन्द्र को धन का कुछ भी मोह न था। वह उत्तमोत्तम कागज पर उत्तमोत्तम छपाई में पुस्तकें छपवा कर नाममात्र को मूल्य रखकर बिना मूल्य ही उन सभों की सहस्राधिक प्रतियाँ बाँटने लगे। उनके आगे पात्र-अपात्र का विचार न था, जिसने मांगा उसने पाया। जिसे कुछ भी सहृदय पाया उसे उन्होंने स्वयं दिया। यह प्रथा बाबू साहब की आजन्म रही। उन्होंने लाखों ही रुपये पुस्तकों की छपाई में व्यय करके पुस्तकें बिना मूल्य बांट दीं और इस प्रकार से हिन्दी के प्रेमियों की सृष्टि की और हिन्दी पढ़ने वालों की संख्या बढ़ाई।

इसी समय आनरेरी मैजिस्ट्रेटी का नया नियम बना था। ये भी अपने और मित्रों के साथ आनरेरी मैजिस्ट्रेट (सन् १८७०ई०में) चुने गये। फिर म्युनिसिपल कमिश्नर भी हुए। हाकिमों में इनका अच्छा मान होने लगा। परन्तु ये निर्भीत चित्त से यथार्थ बात कहने या लिखने में कभी चूकते न थे और इसीसे दूसरे की बढ़ती से जलनेवालों को 'चुगली' करने का अवसर मिलता था।

'कविवचनसुधा' का आदर न केवल इस देश में वरंच योरप में भी होने लग गया था। सन् १८७० ई० में फ्रांस के प्रसिद्ध पत्र "ली लैंगुआ डेस हिन्दुस्तानिस" ने मुक्तकण्ठ से बाबू साहब और 'कविवचनसुधा' की प्रशंसा की थी।

परन्तु देशहितैषी हरिश्चन्द्र इन थोथे सम्मानों में भूल कर अपने लक्ष्य से चूकने वाले न थे। इन्होंने देखा कि बिना मासिकपत्रों के निकाले और अच्छे-अच्छे सुलेखकों के प्रस्तुत किए भाषा की यथार्थ उन्नति न होगी। यह सोच उन्हें केवल 'कविवचनसुधा' से संतोष न हुआ, और सन् १८७३ ई० में 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' का जन्म हुआ। ८ संख्या तक इसकी निकली, फिर यही 'हरिश्चन्द्रचन्द्रिका' के रूप में निकलने लगा। मैगजीन के ऐसा सुन्दर पत्र आज तक हिन्दी में नहीं निकला। जैसा ही सुन्दर आकार, वैसा ही कागज, वैसी ही छपाई और उससे कहीं बढ़ कर लेख। उस समय तक कितने ही सुलेखकों को उत्साह देकर बाबू साहब ने प्रस्तुत कर लिया था। मैगजीन के लेख और लेखक आज भी आदर की दृष्टि से देखे जाते हैं। हरिश्चन्द्र का 'पांचवें पैगम्बर' मुन्शी ज्वालाप्रसाद का 'कलिराज की सभा', बाबू तोताराम का 'अद्भुत अपूर्व स्वप्न', मुन्शी कमलाप्रसाद का 'रेल का विकट खेल', आदि लेख आज तक लोग चाह के साथ पढ़ते हैं। लाला श्रीनिवास दास, बाबू गदाधर सिंह, बाबू ऐश्वर्यनारायणसिंह, पण्डित ढुंढिराजशास्त्री, श्री राधाचरण गोस्वामी, पण्डित बद्रीनारायण चौधरी, राव कृष्ण देवशरण सिंह, पण्डित बापूदेव शास्त्री, प्रभृति विद्वज्जन इसके लेखक थे। इसी समय सन् १८७४ ई० में इन्होंने स्त्रीशिक्षा के निमित्त 'बालाबोधिनी' नाम की मासिकपत्रिका भी निकाली, जिसके लेख स्त्रीजनोचित होते थे। यही समय मानो नवीन हिन्दी की सृष्टि का है। यद्यपि भारतेन्दु जी ने सन् १८६४ ई० से हिन्दी गद्य-पद्य का लिखना आरम्भ किया था और १८६८ में 'कविवचनसुधा' का उदय हुआ, परन्तु इसे स्वयं भारतेन्दु जी हिन्दी के उदय का समय नहीं मानते। वह मैगजीन के उदय (सन् १८७३ ई०) से ही हिन्दी का पुनर्जन्म मानते हैं। उन्होंने अपने 'कालचक्र' नामक ग्रन्थ में लिखा है "हिन्दी नये चाल में ढली (हरिश्चन्द्री हिन्दी) सन् १८७३ ई०।" वास्तव में जैसी लालित्यमय हिन्दी इस समय से लिखी जाने लगी वैसी पहिले न थी। इसी समय इन्होंने 'पेनी रीडिंग' नामक समाज स्थापित किया था जिसमें स्वयं भद्र लोग तरह-तरह के अच्छे-अच्छे लेख लिखकर लाते और पढ़ते थे। मैगजीन के प्रायः सभी अच्छे-अच्छे लेख इस समाज में पढ़े गए थे। स्वयं भारतेन्दु जी की दो मूर्तियाँ आज तक आँखों के सामने घूमती हैं—एक तो श्रांत पथिक बन कर आना और गठरी पटक पैर फैला कर बैठ जाना आदि, और दूसरी पांचवें पैगम्बर की मूर्ति। इस समाज के प्रोत्साहन से भी बहुत अच्छे अच्छे लेख लिखे गए। इसी समय के पीछे 'कर्पूरमंजरी,' 'सत्य हरिश्चन्द्र' और 'चन्द्रावली' की रचना हुई, जो कि सच पूछिये तो हिन्दी की टकसाल है। जैसा ही अपने ग्रन्थों पर इन्हें स्नेह था उससे कहीं बढ़कर इनका प्रेम दूसरे उपयुक्त ग्रन्थकारों पर था। कितने ही नवीन और प्राचीन ग्रन्थ इनके व्यय से मुद्रित और बिना मूल्य वितरित हुए। वास्तव में यदि हरिश्चन्द्र सरीखा उदार हृदय, रुपये को मिट्टी समझने वाला, गुणग्राही नायक हिन्दी की पतवार को उस समय न पकड़ता और सब प्रकार से

स्वार्थ छोड़कर तन मन धन से इसकी उन्नति में न लग जाता, तो आज दिन हिन्दी का इस अवस्था पर पहुंचना कठिन था। हरिश्चन्द्र ने हिन्दी तथा देश के लिये सारे संसार की दृष्टि में अपने को मिट्टी कर दिया।

हम ऊपर कही चुके हैं कि बड़े आदमियों के लड़कों पर धूर्तों की दृष्टि रहती है, अत: इन्हें भी लोगों ने घेरा। एक तो ये स्वाभाविक उदार, दूसरे इनका नवीन वय, तीसरे ये रसिकता के आगार। फिर क्या था, धन पानी की भांति बहने लगा। एक ओर साहित्य-सेवा में रुपए लग रहे हैं, दूसरी ओर दीन-दुखियों की सहायता में, तीसरे देशोप-कारक कामों के चन्दों में, चौथे प्राचीन रीति के धर्मकार्यों में और पांचवें यौवनावस्था के आनन्द विहारों में। इन सभों से बढ़कर द्रव्य की ओर इनकी दृष्टि न रहने के कारण अप्रबन्ध तथा अर्थलोलुप विश्वासघातकों के चक्र ने इनके धन को नष्ट करना आरम्भ कर दिया। एक धार से बहने पर तो बड़े बड़े नदी नद सूख जाते हैं, तो फिर जिसके शतधार हों उसका कौन ठिकाना। घर के शुभचिन्तकों ने इन्हें बहुत कुछ समझाया, परन्तु कौन सुनता था। लोगों ने देखा कि इनके हाथ में यदि कुबेर का भण्डार भी होगा तो रहने न पावेगा; इसलिए इस घर की रक्षा का उपाय इनका भाग अलग कर देना ही है। अतएव ता० २१ मार्च १८७० ई० को दोनों भाइयों में तकसीमनामा हुआ। जो लाखों रुपए अब तक व्यय हो चुके थे उसे छोड़ कर अब जो बचा था उसमें तीन सम भाग हुए—दो दोनों भाइयों और तीसरा श्री ठाकुरजी का। यह ठाकुरजी लगभग ८०, ९० वर्ष से इनके यहां स्थापित हैं और इनकी सेवा श्री बल्लभकुलस्थ सेवा की रीति पर होती है। जिसका सारा संसार अपना ही कुटुम्ब है, और जिसे सारे संसार की सम्पत्ति भी व्यय करने के लिये थोड़ी है, उसके लेखे यह छोटा भाग क्या था? देखते ही देखते धन घटने और ऋण बढ़ने लगा। थोड़े ही दिनों में सब नकदी धन की इतिश्री हो गई। फिर जायदाद रिहन पड़ने लगी। बनारस के 'शाइलाकों' ने एक-एक देकर तीन-तीन की हुंडियाँ लिखवानी आरम्भ कीं। एक महाशय ने एक कटर (नाव) और कुछ थोड़ा सा रुपया देकर इनसे तीन हजार की हुण्डी लिखवा ली। और उसी की सबसे पहले इन पर नालिश हुई। उस समय प्रसिद्ध सर सैयद अहमद खां बहादुर सदरआला थे, उन्हीं के यहां नालिश हुई। सैयद साहब सब कुछ वृत्तांत सुन चुके थे। एक रईस के घर का बिगड़ना, विशेष कर भारतहितैषी हरिश्चन्द्र का विपदग्रस्त होना, उसी व्रत में व्रती सैयद साहब को बहुत क्लेशकर हुआ। सैयद साहब खेद प्रकाश करने लगे तो आप बोले—"सुनिए सैयद साहब! मैं अपने धर्म और सत्य को साधारण धन के लिए नहीं बिगाड़ने का; मुझसे इस महाजन ने जबर्दस्ती हुण्डी नहीं लिखवाई और न मैं बच्चा ही था कि समझता न था; जब कि मैंने अपनी गरज से समझ-बूझकर उसका मूल्य तथा नजराना आदि स्वीकार कर लिया, तो क्या अब देने के भय से मैं उस सत्य को भंग कर दूँ?" धन्य हरिश्चन्द्र, धन्य! 'सत्य हरिश्चन्द्र' लिखने के उपयुक्त पात्र तुम्हीं थे! ये वाक्य तुम्हारी ही लेखनी से निकलने योग्य थे—

"चन्द टरै, सूरज टरै, टरै जगत व्यवहार।
पै दृढ़ श्रीहरिचन्द को, टरै न सत्य विचार॥"

यह दृढ़ता और यह सत्यता उनकी अन्त समय तक रही। वह पास द्रव्य न होने से दे न सकें, परन्तु अस्वीकार कभी नहीं कर सकते थे। थोड़े ही दिनों में उनकी सारी पैतृक सम्पत्ति जाती रही और वह धन खोने के कारण 'नालायक' समझे जाने लगे। इस प्रकार थोड़े काल में नगरसेठ हरिश्चन्द्र राजा हरिश्चन्द्र की भांति धनहीन हरिश्चन्द्र हो गये। 'सत्य हरिश्चन्द्र' की रचना के समय पण्डित शीतला प्रसाद त्रिपाठीजी ने सत्य कहा था कि—

"जो गुन नृप हरिचन्द में, जगहित सुनियत कान।
सो सब कवि हरिचन्द में, लखहु प्रतच्छ सुजान॥"

परन्तु इतना होने पर भी इनकी उदारता या इनके अपरिमित व्यय में कभी कमी न हुई। मरने के समय तक ये हजारों ही रुपए महीने में व्यय करते थे और वह परमेश्वर की कृपा से कहीं न कहीं से आही जाते थे। सम्पत्तिनाश के पीछे ये बीस-बाईस वर्ष और जिए, उन्होंने कम से कम तीन-चार लाख रुपए व्यय किए, और लाखों ही रुपए ऋण किए, परन्तु जिस जगतपिता जगदीश्वर की सन्तान के उपकार के लिए इनका धन व्यय होता था, उसकी कृपा से न तो कभी इनका हाथ रुका और न मरने के समय ये ऋणी ही मरे।

अब फिर साधारण हितकर कार्यों तथा साहित्य-चर्चा की ओर झुकिए। अब जब विद्यारसिक सर विलि-यम म्योर की लाटगीरी का समय आया, उस समय हिन्दी

को राजभाषा बनाने के लिय बहुत कुछ उद्योग किया गया, परन्तु सफलता न हुई। केम्पसन साहब उस समय शिक्षा विभाग के डाइरेक्टर थे, राजा शिवप्रसाद उनके कृपापात्र थे। इधर राजा साहब का हृदय अपने सामने के एक 'छोकरे' की उन्नति से जला हुआ था, उधर बाबू साहब का हृदय 'हाकिमी' अन्याय से कुढ़ गया था; दूसरा एक कारण राजा साहब से इनके विरोध का यह हुआ कि राजा साहब ने फारसी आदि मिश्रित खिचड़ी हिन्दी की सृष्टि करके उसे चलाना चाहा, और बाबू साहब ने शुद्ध हिन्दी लिखने का मार्ग चलाया और सर्वसाधारण ने इसी को रुचि के साथ ग्रहण किया। अब इसे रोकने और उसे चलाने का उपाय गवर्न्मेण्ट की शरण लिये बिना असम्भव जान राजा साहब ने हाकिमों कोउधर ही झुकाया। यही एक प्रधान कारण उस समय हिन्दी राजभाषा न होने का भी हुआ था। बाबू साहब का स्वभाव कौतुकप्रिय और रहस्यमय तो था ही, इन्होंने तरह तरह के पंच लिखने आरम्भ किए। इधर हाकिमों के कान भरे जाने लगे। एक लेख 'लेवी प्राणलेवी' तो निकला ही था, जिसमें लेवी दर्बार में हिन्दुस्तानी रईसों की दुर्दशा का वर्णन था; दूसरा एक 'मर्सिया' निकला जिसका कटाक्ष सब सर विलियम म्योर पर घटाया गया। बस, फिर क्या था, बरसों की भरी-भराई अखस निकल पड़ी, गवर्न्मेण्ट की कोपदृष्टि इन पर पड़ी। इस लेख के कारण 'कविवचनसुधा', जो गवर्न्मेण्ट लेती थी, वह बन्द किया गया। 'हरिश्चन्द्रचन्द्रिका' यह कहकर बन्द की गई कि इसमें 'कवि-हृदय-सुधाकर' ऐसा घृणित ग्रन्थ छपता है। उक्त ग्रन्थ में एक यती और वेश्या का संवाद है। एक योग ज्ञान आदि की बड़ाई करता और दूसरा भोग-विलास की। अन्त जय यती की हुई। यह उपदेश-मय ग्रन्थ कुरुचि-उत्पादक समझा गया। 'बालाबोधिनी' यह कह कर बन्द की गई कि आवश्यकता नहीं है। अंगरेजों में चारों ओर इन्हें डिसलायल (राजविरोधी) कह कर धारणा होने लगी। इनका स्वाधीन और उन्नत हृदय इस लांछना को सहन न कर सका। पहिले तो इन्होंने उद्योग किया कि इस अनुचित विचार को दूर करावें परन्तु इसमें कृतकार्य न होने पर इन्होंने राजपुरुषों से सारा सम्बन्ध छोड़ना ही उचित समझा; क्योंकि जिस व्रत को इन्होंने धारण किया था उसमें हाकिम-समागम से बहुत कुछ बाधा पड़ती थी। आनरेरी मैजिस्ट्रेटी आदि सरकारी कामों को छोड़ अपने उदार उद्देश्यों की ओर लगे। वास्तव में जिन लोगों ने इनको अपदस्थ करना चाहा था, उन्होंने इस देश तथा स्वयं उनके साथ बड़ा उपकार किया; क्योंकि यदि यह घटना न होती तो ये न तो 'भारत-नक्षत्र' (स्टार आफ इंडिया) के बदले 'भारतेन्दु' (मून आफ इंडिया) होते, और न सच्चे सुहृदय हरिश्चन्द्र को पाकर यह देश ही इतना उपकार उठा सकता।

अब संक्षेपतः इनके उन कर्मों का वर्णन करते हैं जिन्होंने उन्हें लोकप्रिय बनाया। यह हम ऊपर कह ही आए हैं कि इन्होंने अत्यन्त बाल्यावस्था से कविता करनी आरम्भ की थी। अब इनकी कुछ आदि कविताएँ उद्धृत करते हैं।

सब से पहिला पद यह बनाया——

"हम तो मोल लिए या घर के।
दास दास श्री वल्लभकुल के चाकर राधावर के।।
माता श्री राधिका पिता हरि बन्धु दास गुनकर के।
हरीचन्द तुमरे ही कहावत, नहिं विधि के नहिं हर के।।"

सब से पहिली सवैया यह है——

"यह सावन सोक नसावन है, मन भावन यामैं न लाजै भरो।
जमुना पैं चलौ सुसबै मिलि कै, अरु गाइ बजाइ के शोक हरो।
इमि भाषत हैं हरिचन्द पिया, अहो लाड़िली देर न यामैं करो।
बलि झूलो झुलाओ झुको उझको, एहि पाषैं पतिव्रत ताषै धरो।

सबसे पहिली ठुमरी यह बनाई——

"पछितात गुजरिया घर में खरी।
अब लग श्याम सुन्दर नहिं आए दुख दाइन भइ रात अंधरिया।
बैठत उठत सेज पर भामिनि पिया बिना मोरी सूनी सेजरिया।
हरीचन्द पिया आय मिले तुम बस जो गई मोरी उजरी नगरिया।

सबसे पहिले अपने पिता का बनाया ग्रंथ "भारती-भूषण" शिला-यन्त्र (लीथोग्राफ) में छपवाया। सबसे पहिला नाटक "विद्यासुन्दर" बनाया।

"कविता-वर्द्धिनी-सभा" वा कविसभा का जन्म संवत् १९२७ में हुआ था जिससे कितने ही गुणिओं का मान बढ़ाया जाता था और कितने ही नवीन कवि प्रोत्साहित करके बनाए जाते थे।

उस समय कविओं का अभाव नहीं था——सेवक, सरदार नारायण, हनुमान, दीनदयालगिरि, दत्त (पण्डित दुर्गादत्त गौड़), द्विज मन्नालाल, आदि अच्छे-अच्छे कवि

जीवित थे; प्रायः सभी आते और विलक्षण समागम होता था।

संवत् १९३० में इन्होंने "तदीय समाज" स्थापित किया था। यद्यपि यह समाज प्रेम और धर्म-सम्बन्धी था, परन्तु इससे कई एक बड़े बड़े काम हुए थे।

इस समाज के अतिरिक्त "हिन्दी डिबेटिंग क्लब", "यंग मेन्स एसोसिएशन", "काशी सार्वजनिक सभा", "वैश्य हितैषिणी सभा", अदालतों में हिन्दी जारी कराने के लिए सभाएं आदि कितनी ही सभा-सोसाइटिएं इन्होंने स्थापित की थीं जिनका अब पूरा पूरा पता तक नहीं लगता।

इन अपनी सभा-सोसाइटिओं के अतिरिक्त जितने ही देशहितकर तथा लोकहितकर कार्य होते थे सभों में ये मुख्य सहायक रहते थे। "बनारस इंस्टिट्यूट" के ये मुख्य सभासद थे। इस "इन्स्टिट्यूट" में इनसे और राजा शिव-प्रसाद से प्रायः चोट चला करती था। "कारमाइकल लाइब्रेरी" तथा "बाल-सरस्वती-भवन" के संस्थापन में प्रधान सहायक थे; हजारों ही ग्रंथ दिए थे। "काशी-पत्रिका", "भारतमित्र", "मित्रविलास", "आर्यमित्र" आदि यावत् प्राचीन हिन्दी पत्रों को प्रोत्साहन तथा लेखादि सहायता द्वारा जन्म देने के ये प्रधान कारण थे। खानदेश के अकाल में सहायता देने के लिए ये बाजार में खप्पर लेकर भीख मांगते फिरे थे, हजारों ही रुपए उगाहकर भेजे थे। काशी के कम्पनी बाग में लोगों के बैठने को लोहे की बंधे अपने व्यय से रखवाई थीं। मणिकर्णिका कुंड में हजारों यात्री गिरा करते थे, उसमें लोहे का कटघरा अपने व्यय से लगवा दिया। माधोराय के प्रसिद्ध धरहरे पर छड़ नहीं लगे थे, जिसमें कभी-कभी मनुष्य गिरकर चूर हो गए हैं, उस पर छड़ अपने व्यय से लगवाया। इन कामों के लिये म्युनिसिपैलिटी ने धन्यवाद दिया था।

प्रातःस्मरणीया मिस मेरी कारपेन्टर के स्त्री-शिक्षा सम्बन्धी उद्योग में प्रधान सहायक थे। विवाह आदि में अपव्ययिता कम करने के आन्दोलन के सहकारी थे। मिस्टर शेरिङ्ग, डाक्टर हार्नली, डाक्टर राजेन्द्रलालमित्र, पण्डित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर प्रभृति कितने ही ग्रंथकारों के कितने ही ग्रंथ-रचना में ये सहायक रहे हैं, जिन्हें उन्होंने निज ग्रंथों में धन्यवादपूर्वक स्वीकार किया है। थियासोफिकल सोसाइटी के संस्थापक कर्नल आलकाट और मैडेम ब्लेवेट्स्की का काशी में जब जब आना हुआ तब तब ये उनके सहायक रहे। काशी संस्कृत कालेज से आचार्य परीक्षा में पहिले पहिल जितने लड़के पास हुए थे सभों को घड़िएं पारितोषिक दी थीं। भारतवर्ष के भिन्न भिन्न प्रान्तों में जितनी लड़कियाँ अंग्रेजी परीक्षाओं में उत्तीर्ण हुई थीं सभों को शिक्षा-विभाग द्वारा साड़िएं पारितोषिक दी थीं। इनमें कलकत्ता बेथुन कालेज की लड़कियों को जो साड़िएं भेजी गई थीं उन्हें श्रीमती लेडी रिपन ने अपने हाथ से बांटा था। बंगाल के डाइरेक्टर सर आलफ्रेड क्राफ्ट साहब ने लिखा था कि जिस समय श्रीमती ने हर्षपूर्वक यह आपका उपहार कन्याओं को दिया था, उस समय आनन्द ध्वनि से सभास्थल गूंज उठा था। ब्राम्ह विवाह पर जिस समय कानून बन रहा था उस समय इन्होंने जो सहायता दी थी उसके लिये उक्त समाज के नेता स्वर्गीय केशवसेन ने अपने पत्र-द्वारा हृदय से इन्हें धन्यवाद दिया था।

भारतगौरव, हिन्दूपति, मेवाड़-नरेश महाराणा सज्जनसिंह का इन पर अत्यन्त स्नेह था और वह बहुत काल से इनसे मिलने को उत्सुक थे। अतः उनके आग्रह और श्रीनाथ जी के दर्शन की लालसा से सन् १८८२ ई० में उदयपुर गए। वहाँ से लौटने पर बीमार हुए, श्वास कास और ज्वर का वेग हुआ, जीवन संशय हो गया।

रोग पूरा-पूरा निवृत्त न होने पाया, चलने फिरने लगे कि फिर शरीर की चिन्ता कौन करता है। अविरल लिखने पढ़ने का परिश्रम चलने लगा। यों ही कुछ दिनों लस्टम-फस्टम चले कि मरने से एक वर्ष पहिले श्वास और खांसी का वेग बढ़ा; समझा कि दमा हो गया है। शरीर नित्य-नित्य क्षीण होने लगा, यहां तक कि थोड़े दिन पहिले चलने फिरने की शक्ति इतनी घट गई कि पालकी पर बाहर निकलते थे। लोग दमे के धोखे में रह गए, वास्तव में इन्हें क्षयरोग हो गया था। अधिक पान खाने के कारण कफ के साथ रक्त का तो पता लगता न था, केवल श्वास कास की दवा होती थी। निदान अन्तिम समय बहुत निकट आने लगा। मरने से महीना डेढ़ महीना पहिले इनका हृदय कुछ शान्तरस की ओर अधिक फिर गया

"हरिश्चन्द्र चन्द्रिका" की अन्तिम संख्याओं में प्रकाशित शान्तरस की कविता सब इसी समय की बनी हुई हैं। जहाँ तक मुझे स्मरण आता है, निम्नलिखित पद के पीछे उन्होंने कोई कविता नहीं की :—

"डंका कूच का बज रहा मुसाफिर जागोरे भाई।
देखो लाद चले पन्थी सब तुम क्यों रहे भुलाई॥
जब चलना ही निहचै है तो लै किन माल लदाई।
हरीचन्द हरिपद बिनु नहिं तौ रहि जैहौ मुंह बाई॥"

१९००

❀ ❀ ❀

दामोदरराव की आत्मकहानी

बा० कार्त्तिकप्रसाद खत्री

पाठकों में से कदाचही कोई ऐसे जन होंगे कि जिन्होंने परम शक्तिशालिनी अरिकुल घालिनी स्वकीर्त्तिमालिनी बीरशिरोमणि झाँसी की महाराणी लक्ष्मीबाई का नाम न सुना हो। आज हम अपने पाठकों के निकट उक्त लक्ष्मीबाई की जीवनी विवृत करने में प्रवृत्त नहीं हुए हैं, वरन् उनके दत्तक पुत्र दामोदरराव की उस आत्मकहानी को कहते हैं जो स्वयम् उन्होंने निज लेखनी से लिखी है।

झाँसी के महाराज गंगाधरराव की स्वधर्म्म-पत्नी लक्ष्मीबाई ने सन् १८५१ में एक पुत्र प्रसव किया, परन्तु दुर्भाग्यवश तीन ही महीने में उस बालक ने परलोक गमन किया। अनेक देव द्विज आराधन के उपरान्त एक सन्तान का मुख देखा भी तो स्वल्पायु वश तीन ही महीने उपरान्त उसके वियोग से राजा ऐसे शोकग्रसित हुए कि दिनो दिन उनका स्वास्थ बिगड़ता ही चला गया। अन्त जब उन्हें अपने जीवन की आशा न रही, तब वंश रक्षा की उत्कट लालसा के वशवर्त्ती हो महाराज गंगाधरराव ने सन् १८५३ ईसवी में झांसी के राजवंशी वासुदेवराव नामक एक धनवान मनुष्य के एकमात्र दामोदरराव को शास्त्र विधान से दत्तक लिया। वासुदेवराव की निज की खानदेश में चार पांच लाख की जागीर थी कि जिसका उत्तराधिकारी एक मात्र उनका पुत्र ही था। परन्तु लड़का झाँसी की गद्दी पर बैठेगा इस लालसा से उन्होंने उसे दत्तक दे दिया।

इस बालक का नाम आनन्दराव था; परन्तु पांच बर्ष की अवस्था में जब वह दत्तक हुआ, तो उसका नाम दामोदरराव प्रसिद्ध हुआ। दत्तक लेते समय मेजर एलिस और कप्तान मार्टिन प्रभृति राजपुरुष-गण झांसी के राजप्रासाद में उपस्थित थे। महाराज गंगाधरराव ने इस दत्तक विधान की मंजूरी के लिये गवर्नमेन्ट को दो वेर आवेदन किया, परन्तु दामोदर राव के भाग्य में राजसुख बदा ही न था, इसी से शास्त्रानुसार गंगाधरराव के पिण्डदान के अधिकारी होने पर भी राजनीति के कुटिल अनुशासन बल से राज्य के उत्तराधिकारी न हो सके। महाराज गंगाधर राव ने उस समय गवर्नर जेनरल बहादुर की सेवा में जो प्रार्थना की थी और उसका जो कुछ परिणाम हुआ था, उस विषय में मिस्टर डबल्यू एम० टारेन्स, एम० पी० आदि महाशयों ने विस्तारपूर्वक लिखा है, परन्तु लेख बढ़ जाने की आशंका से यहां उसका अविकल अनुवाद नहीं देते।

सन् १८५८ ईसवी की चौथी अप्रेल को जब अंगरेजी सेना ने झांसी के दुर्ग पर अपना अधिकार जमाया, तब रानी लक्ष्मीबाई ने आत्मरक्षा के लिये बीर पुरुषों के ऐसा अपना वेष बना अस्त्र शस्त्र से सुसज्जित हो अपने पीठ पर बालक दामोदरराव को बाँध घोड़े पर सवार हो धकधकाती प्रज्वलित युद्धाग्नि में कूद पड़ीं। उसी समय से दामोदरराव का मानो दुखमय समुद्र उमड़ आया। वह आठ वर्ष का बालक माता की पीठ से बँधा हुआ बराबर घोर युद्ध में घूमता रहा, सो भी दो चार दस दिन नहीं, बराबर ढाई महीने तक; सिवाय काट मार दौड़ धूप के विश्राम और खान पान तो स्वप्न सा हो रहा था।

१८वीं जून को घोर घमासान युद्ध में रानी का सैन्यदल जब छत्रभंग हो भागा है और अंगरेजों ने रानी जी

का पीछा किया है, उस समय लक्ष्मीबाई ने अपने एक परम विश्वासी सरदार रामचन्द्रराव देशमुख को अपने प्रिय पुत्र को सौंप, आप प्राण की आशा छोड़ लड़ने लगीं। उसी समय मस्तक पर अस्त्र से और वक्ष में संगीन से आहत हो अतुल विक्रम से उन्होंने अपने निहन्ता का प्राण-वध किया। परन्तु रानी को सांघातिक रूप से आहत देख रामचन्द्रराव उन्हें पास ही एक साधू की कुटी में ले गए। उस समय मारे प्यास से रानी का हृदय सूखा जाता था, कुटीवासी गंगादास बाबाजी ने उन्हें भर पेट गंगा-जल पिलाया, सुशीतल त्रितापहारी गंगाजल पान कर रानी का हृदय कुछ ठिकाने हुआ। उस समय स्नेहपूर्ण दृष्टि से दामोदर राव की ओर निहारते ही निहारते प्राण-वायु उनके शरीर से निकल भागा और इधर रामचन्द्र-राव, दामोदरराव को ले वहां से भागे। विद्रोह शान्ति के प्रायः दो वर्ष के उपरान्त अंगरेजों को दामोदरराव का अनुसन्धान मिला। मातृ वियोग के उपरान्त और अँगरेजों के हाथ आने से पहिले दामोदरराव ने कैसी कैसी कठिनाइयां सही हैं और अपने भाग्य के कैसे-कैसे खेल देखे हैं, उसका वर्णन कहीं किसी इतिहास में कुछ नहीं लिखा है; परन्तु दामोदरराव ने निज लेखनी से निज विपदों को लिख इतिहास के उस अभाव की पूर्त्ति की है। उनका वह आत्मचरित जैसा मर्मस्पर्शी है, वैसा ही शिक्षाप्रद भी है इसलिये उसका मर्मानुवाद हम अपने पाठकों को सुनाते हैं।

"ग्वालियर में शान्ति होने के उपरान्त हम लोगों ने वहां से प्रस्थान किया, और छिपते लुकते चंदेली की ओर चले। पथ में बड़े-बड़े कष्ट सहे। जो कभी किसी ग्राम में ठहरे या रात बितानी चाही और गाँव वाले हम लोगों को जान गए, तो गाँव के अन्दर कौन कहे उसके आस-पास भी न ठहरने पाते। विवस वेत्रवती नदी के किनारे-किनारे गहन बनों में रात बिताते और दिन को फिर चलते। हम लोगों के साथ तम्बू कनात आदि न रहने के कारण विवस खुले मैदानों में ही समय बिताना पड़ता था। बड़े-बड़े गहन और विकट बनों में जहां सूरज के दर्शन तक नहीं मिलते और हिंस्रक पशुओं का पूरा भय रहता, वहां ही हम लोग रहते। बस्ती से बहुत दूर उजाड़ सुनसान बनों में रहने के कारण अठवाड़ों जंगलों के कन्दमूल फलों ही से पेट पालते थे। उस समय चारो ओर अंगरेजी सिपाहियों के घूमने फिरने के भय से हम लोगों में से कभी कोई बस्ती में मारे डर के रसद लेने न जाता। कभी आठ कभी दस दिन के उपरान्त दो चार मनुष्य भेष बदल किसी तरह छिप लुक के बस्ती से दाल आटा घी नोन ले आते। बरसात के आ जाने से तो कष्ट का कहना ही क्या था, उन जंगलों में खुले आकाश के तले वर्षा की मूसलधार सिर पर सहनी पड़ती। अब खाने पीने का सामान लेना और रखना और भी कठिन हो गया, इधर वर्षा का जोर भी बढ़ने लगा। दो महीने तो ज्यों त्यों बिताए, पर अब वर्षा ने हम लोगों को घबरा दिया। कुछ नहीं सूझता था कि अब क्या करें। यों ही घूमते घूमते चंदेली ललितपुर परगने के अन्तर्गत तालवेट कोठरा नामक ग्राम के पास पहुंचे। इस गांव के ठाकुर दीवान शंकरसिंह और गम्भीर सिंह के साथ भेंट हुई। हम लोगों ने कुछ दिन आश्रय पाने की उनसे प्रार्थना की।

हम लोगों के दल में रघुनाथ सिंह ही मुखिया थे। रानी साहेब के बहुत पुराने सेवक होने के कारण सब लोग उनका मान्य करते थे। उनके साथ ठाकुरों की बात हुई कि सब लोग एक ही स्थान में न रहो, क्योंकि ऐसा होने से अंगरेजी सिपाहियों की दृष्टि पड़ सकती है। इससे हमारे साथी छः दल में बंट गए और दस दस पांच-पांच कोस की दूरी पर जंगल में सभों ने डेरा डाल दिया। रामचन्द्रराव आदि मुखिया एक-एक दल में हो बड़े दुःख से हम लोगों से अलग हुए। कुछ कुछ खर्च और १३ घोड़े और दो ऊंट दे उन्हें हमने बिदा किया। रघुनाथराव, मैं और दस बारह मनुष्य ने उसी तालवेट के जंगल में डेरा जमाया। रानी साहेब की काशी नाम की एक दासी भी हम लोगों के साथ ही थी। ठाकुरों से यह बन्दोबस्त हुआ कि पांच सौ रुपया महीना यदि हम लोग दिए जायं; तो बारह मनुष्य के लायक रसद ठाकुर हम लोगों को पहुंचा दिया करेंगे; इसके सिवाय हम लोगों के ४ ऊंट और ९ घोड़ों को वे अपने यहां रख खिलावें पिलावेंगे और अंगरेजों के आने जाने की खबर देते रहेंगे। यह ठीक हो जाने पर, चार पांच दिन की वे हम लोगों को पूरी रसद भेज दिया करते थे।

"कुठारा ग्राम से चार पांच मील की दूरी पर वेत्र-वती नदी के तट पर पहाड़ में एक बड़ी लम्बी चौड़ी गुफा है, उसी में हम लोगों का डेरा हुआ। वहां करकरा

नाम की एक शिव मूर्त्ति और पुराना मन्दिर भी था। जहां हम लोग टिके हुए थे, उसके पास ही से पचीस हाथ ऊंचे से वेत्रवती का जल बड़े वेग से गिरता था। जल के गिरने से वहां एक कुंड बन गया था। यह बड़ा ही रमणीक स्थान था।

"कुठार और उसके आस पास के जंगलों में बाघ और भालुओं की कमी तो न थी पर तो भी निर्विघ्न अनेक दिनों हम वहां बसे रहे। एक ही ठौर में बहुत दिनों तक रह आने से कदाच सरकारी लोगों को टोह लग जाय, इस डर से बीच बीच में हम लोग स्थान अदल बदल कर दिया करते थे। पर हिंस्रक जीवों का सभी ठौर भय रहने के कारण पेड़ों पर मचान बना के हम लोगों को रात बितानी पड़ती थी। कभी-कभी उन रक्त-पिपासु जीवों के भय से दिन रात पेड़ ही पर रह जाना पड़ता था। इस कठिनाई से दो पौने दो वर्ष के कठिन दिनों को बिताना पड़ा था। इतने दिनों में खुले मैदान की वर्षा गरमी के दिन और सरदी की रात कैसे दुःखों से बीती है, वह जी ही जानता है। हट्टा कट्टा मनुष्य भी जो यों कुछ दिनों तक दिन बितावे, तो उसका भी स्वास्थ बिगड़ जाता है; जिस पर मेरी थोड़ी अवस्था, कोमल शरीर और उस पर से ऐसे ऐसे कष्ट सहते-सहते मेरा स्वास्थ बहुत ही बिगड़ गया।

"रानी साहेब के कैलाश वास के समय मेरे पास नगदी और सोना चांदी मिला के लगभग सत्तर हजार का ठिकाना था। बहुत दिनों तक ठाकुर साहेब को रुपए देते देते मेरे पास की नगदी समाप्त हो गई। अब चांदी सोना तथा रत्न आदि जो चीजें थीं, उन्हें मेरे साथी साहस करके कहीं नगर में बेंच नहीं सकते थे, इससे अब रुपए के बदले मनमाना वही सब उन्हें देना पड़ा। उसमें हम लोगों की कोई बात ही न थी, वे लोग जिसका जो दाम लगा देते, झख मार के हमें वही मान लेना पड़ता था। कुछ दिनों में जो कुछ हम लोगों के पास था सब खाली हो गया, अब निपट दरिद्री हो गए। जब ठाकुर साहेब को यह थाह लग गई, तब स्पष्ट ही उन्होंने कह दिया कि अब तुम लोग यहां से डेरा कूच करो। विवस हम लोगों को वहां से कूच करना पड़ा। चलते समय ठाकुर साहेब ने अपने ऊंट और घोड़ों के मांगने पर तीन घोड़े दे के उन्होंने कहा कि बाकी मर गए। उस समय सिवाय चुप रह जाने के और हम लोग कर ही क्या सकते थे। विवस जो कुछ बचा बचाया था, उसे बेच खोच के दो सौ रुपए नगद लेके वहां से चले। दस बारह जने तो साथ ही में थे, आठ दस जने जो आगे से छूटे थे वे भी आ मिले; अब बाईस तेइस आदमियों को साथ ले तीन चार दिन चलके हम लोग सेंधिया साहेब की अमलदारी वा सिप्री-कोह्लारस नामक स्थान में पहुंचे।

"आज दो वर्ष से बड़े बड़े कष्ट भोगते चले आ रहे हैं। परन्तु अभी तक दुर्दैव ने पीछा नहीं छोड़ा, नदी के तरंग सा एक पर एक दुख उमड़ता ही चला आ रहा है; उसे विश्राम नहीं है; मानो मुझे नष्ट ही करना उसने चित्त से ठान लिया है।

"सिप्रीकोल्हारस गांव में जाके हम लोग किसी एक बगीचे में डेरा जमा रहे थे, कि वहां के कर उगाही करने वाले को यह टोह लगी कि हम लोग झांसी की रानी के साथी बागियों में से हैं, ऐसा विचार उसने हम लोगों को चाहा कि घेर ले, परन्तु हमारे साथी परम चतुर रघु-नाथ सिंह को ऐसा विदित होते ही वे उसके पास चले गए और हम लोगों का सच्चा परिचय दे कुछ रुपए से उसकी उन्होंने भेटी की और मिन्नत खुशामद कर अपनी विपद-कहानी कह सुनाई। इस पर राजी हो उन्होंने हम लोगों को छोड़ दिया। वहां से कूच कर हम लोग जिला पाटन के अन्तर्गत छीपा बड़ौद नामक गांव में पहुंचे। हम लोग जहां-जहां जाते थे वहां ही वहां दुर्दैव भी पीछे लगा ही रहता था, किसी स्थान में भी कल नहीं लेने देता था। सिप्री पर जो कुछ विपद आया चाहती थी, वहां से तो उससे ज्यों त्यों बचे, पर यहां उसने आ ही दबाया। वहां का कमावेसदार जो जाति का बनिया था, हम लोगों के आने की खबर पाते ही आ पहुंचा और आते ही उसने यह कह हम लोगों को गिरफ्तार कर लिया कि तुम लोग रानी के साथी बागी हो। यह कह कर हम लोगों को गांव के अन्दर ले गया, तीन दिन तक हम लोग एक पुरानी गढ़ी के अन्दर रोके रहे, चौथे दिन उसने दस सवार और २५ पैदल सिपाहियों के साथ हम लोगों को पाटन के एजन्ट के पास चलान किया। हम लोगों के पास जो कुछ माल असबाब और तीन घोड़े थे, वह सब कमावेसदार ने ले लिए। रानी साहेब के पुराने सेवक न होते तो ऐसे अवसर पर मुझे विवस पैदल ही चलना पड़ता;

परन्तु वे लोग मुझे पारी पारी अपनी पीठ पर लाद के ले चले।

"बड़ौद से तीन चार मील की दूरी पर एक नदी तट पर शौच और हाथ मुंह धोने के लिए मैं ठहरा था कि औचक एक अनहोनी बात सामने आई। विस्मय से चकित चित्त हो क्या देखते हैं कि मेरा पुराना सेवक गणपतिराव दो अश्वारोही सैनिक अंगरेजों के साथ उस नदी तट पर आ उपस्थित हुआ। सामना होते ही गणपतिराव ने मेरी ओर उंगली उठा कर अंगरेजों से कहा--यही रानी साहेब के पुत्र हैं। उनसे हम लोगों की कुछ बात चीत होते ही कमावेस के सिपाहियों से उन अंगरेजों ने कहा कि इन लोगों को हमारे जिम्मे पर छोड़ दो। तब उनमें से एक सवार ने जाके अपने स्वामी से यह हाल कह सुनाया। यह सुनते ही स्वयं कमावेसदार वहां आया और जो कुछ माल असबाब तथा तीनों घोड़े जो जप्त कर लिए थे, लेता आया और हम लोगों को उन अंगरेजों के जिम्मे पर छोड़ गया।

"जिस समय ग्वालियर छोड़ के हम लोग तालबेट कुठार गांव में पहुंचे और वहां के ठाकुर शंकरसिंह के कहने के अनुसार कई दल में बट गए, उस समय मेरे साथियों में से हूनेखां रिसालदार और गणपतिराव मर-हट्ठा पाटन की ओर चले गए। वहां जाके उन लोगों ने वहां के राजा पृथीसिंह के यहां नौकरी कर ली।

"पाटन से थोड़ी ही दूरी पर आगर नामक स्थान में अंगरेजों की एक छावनी थी। मेजर प्लीक उस समय वहां के पोलिटीकेल एजेन्ट थे। बीच-बीच में हूनेखां पाटन से आगर की छावनी पर जा एजेन्ट साहेब से भेट किया करता। धीरे-धीरे कुछ दिनों में हूने खां ने एजेन्ट साहेब से अपना मेल मुलाहिजा बढ़ा लिया और एक दिन रानी लक्ष्मीबाई की चरचा चल रही थी, उसी में मौका देख के उन्होंने मेरी भी चरचा छेड़ दी और कहा कि सरकार बहादुर के भय से रानी साहेब का नौ दस वर्ष का बालक जंगल-जंगल पहाड़-पहाड़ मारा मारा फिर रहा है, न खाने का ठिकाना है न रहने का, बड़ा ही कष्ट भोग रहा है। यह सुन एजेन्ट साहेब के जी में दया आई। रानी साहेब की ओर से उनके जी में वैसे संस्कार न थे कि जैसे दूसरे अंगरेजों के थे। इसी से हूने खां ने एजेन्ट साहेब से विनती की कि जो आप उस निरपराधी बालक पर दया कर उसे अपनी शरण में ले लें तो जग में आपका बड़ा यश फैल जायगा। यह सुन साहेब ने कहा --बड़ी खुशी से मैं उस बीर रानी के पुत्र को आश्रय दूंगा।

"उस समय कर्नल शेक्सपियर मध्यभारत के एजेन्ट गवर्नर जेनरल थे। इन्दौर उनका कर्म्मस्थान था। मेजर प्लीक ने उनसे हूने खां के प्रस्ताव के विषय में कहा, इस पर वह राजी हुए और मुझे इन्दौर भेजने के लिये पत्र लिखा। अस्तु प्लीक साहब की आज्ञा से हूनेखां मुझे लेने पाटन की ओर आए। राह में कोई किसी प्रकार की रोक टोक न करे, इस लिये मेजर साहेब से कह के सेण्ट्रेल इण्डिया रिसाले के दो सवारों को अपने साथ लिवा लाए थे। पाटन में आके गणपतिराव मरहट्ठा के साथ उन दोनों सवारों को मेरे पास भेज दिया। हम लोग जब जहां रहते थे, वह हूनेखां और गणपतिराव से छिपा नहीं रहता था।

"हम लोग तालबेट कुठार से चल सिप्री आए, यह वे जानते थे। सिप्री से चलने के पूर्व ही गणपतिराव सेण्ट्रेल इण्डिया के दो सवारों को साथ ले पाटन से सिप्री की ओर चले। बड़ोद ग्राम के कमावेसदार की आज्ञा से हम लोग पाटन भेजे गए थे, सुतरां बाटही में पूर्वोक्त नदी के तट पर गणपतिराव के साथ हम लोगों की भेट हुई। मेरी अवस्था देख गणपतिराव के नेत्र डबडबा आए। इसके बाद जो हुआ वह पहिले कह चुका हूं।

"इतने दिनों के उपरान्त अब मुझ पर से विपद की घटा कुछ घटी। बहुत दिनों तक सहने अन-सहने अनेक कष्टों के सहने पर अनाथबन्धु दीनानाथ की इस अनाथ बालक पर कुछ कृपा की कोर हुई, नहीं तो ऐसी अनहोनी घटनाएं क्यों होतीं। मैं अपने साथियों और घोड़ों को साथ ले पाटन में उपस्थित हुआ। रघुनाथ सिंह प्रभृति अनुचरगण भी मेरे साथ ही थे, उन लोगों की और गणपतिराव की चेष्टा से वहां के राजा पृथीसिंह से मेरी भेंट हुई। झांसी कोई ऐसा छोटा मोटा राज्य न था। रानी साहेब की मिलनसारी भी राजा पृथीसिंह से छिपी न थी। इससे बड़े सत्कार से वह मुझसे मिले और कई एक दिन अपने यहां रहने के लिये बड़ा आग्रह किया। मेरे खर्च के लिये वह नित्य दस रुपए देते रहे और उन्होंने कहा कि मैं एजेन्ट साहेब से कह इन्दौर एजेन्ट गवरनर साहेब को अच्छी सिफारशी चिट्ठी भी लिखवा दूंगा। परन्तु मेरे

दुर्भाग्य ने उनसे सिफारिश करवाना उचित न समझा। मैंने उनसे कहा "जब आगर की छावनी में मुझे ले जाने के लिये दो सवार आए हैं तो मुझे वहां ही जाना उचित है।" मेरे इस उत्तर को सुन पृथीसिंह को कुछ बुरा लगा। पाटन से कोस भर की दूरी पर 'मेगजीन' नामक स्थान में उन्होंने मुझे रहने को कहा। वहां एक प्रकार से मैं नजरबन्द सा रहा। प्रायः तीन महीने तक मैं वहां रहा, परन्तु राजा साहेब की ओर से मेरे खाने पीने तथा खर्च में किसी बात की कमी न रही।

"राजा पृथीसिंह ने मेरे साथ इन दोनों गोरे सवारों को भी रोक रक्खा था। उन दोनों सवारों ने इस बात को आगर के एजेन्ट मेजर प्लीक से कहा। प्लीक साहेब ने वह खबर इन्दौर के रेसीडेन्ट को लिखी। इस विषय पर राजा और रेसीडेन्ट से तीन महीने तक लिखा पढ़ी होती रही। अन्त में रेसीडेन्ट साहेब ने राजा को लिखा कि सरकारी सवारों को आप नहीं रोक सकते, इससे उन दोनों के साथ रानी के लड़के को भेज दीजिए। इस चिट्ठी को पा राजा ने हम लोगों को छोड़ दिया।

"पाटन के राजा चाहे हम लोगों से चित्त से अप्रसन्न हों; परन्तु बाहरी शिष्टाचार में उन्होंने किसी बात की कमी नहीं की। आगर की छावनी जाने के लिये जब मैं उनसे विदा होने गया, तब खर्च के लिये उन्होंने मुझे छः सौ रुपए दिए, इसके सिवाय दो ऊंट, कुछ छकड़े और अरदली के लिए कुछ सिपाही संग कर दिए।

"कई दिन चल के हम लोग आगर की छावनी पर पहुंचे। वहां के एजेन्ट मेजर प्लीक साहेब ने बड़े शिष्टाचार से हमसे मिलकर मधुर भाषण किया। उस समय मेरे हाथों में बत्तीस तोले के दो सोने के कड़ों को छोड़ और कुछ भी न रह गया था। पहिले दिन साहेब से भेंट करने के लिये रघुनाथ सिंह ने जो डाली आदि का आयोजन किया था उसके लिये विवस हो दोनों कड़े बेचने पड़े। झांसी से भागते समय मेरे पास जो रुपया पैसा और जवाहिरात था, उसमें से अब एक कौड़ी भी नहीं बची थी। इस समय लक्ष्मी का मैं मानो अकृपापात्र हो रहा था।

"मैं पाटन में आ गया हूं, यह समाचार पा के मेरे प्राणरक्षक और रानी साहेब के परम विश्वासी सरदार रामचन्द्रराव देशमुख सात आठ घोड़े और नौ दस अनुचर ले मेरी भेंट को आए। यों ही और और मेरे अनुचर भी धीरे-धीरे आने लगे। गणपतिराव मरहट्ठा तो मेरे पास ही थे, केवल हूने खां ने पाटन के राजा के यहां नौकरी कर ली थी, इससे वे न आ सके। सिवाय उनके और सब लोग आगर की छावनी में आ मिले। रामचन्द्रराव देशमुख, गणपति राव, और रघुनाथ सिंह ने मेरी दुर्गति और कष्ट का सम्पूर्ण हाल एजेन्ट साहेब को कह सुनाया, जिसे सुन उनके हृदय में दया हो आई, उन्होंने धीरज दिलाया कि जहां तक मेरे किए होगा तुम्हारी भलाई करूंगा।

"आगर के पोलिटिकेल एजेन्ट बड़े दयावान थे, परन्तु मेरे लिये स्वाधीन भाव से कुछ करने की सामर्थ उन्हें न थी, क्योंकि झांसी उनके अधिकार से बाहर थी। मध्य-भारत के एजेन्ट गवरनर मेरे भाग्य बिधाता थे, इससे अपनी सिफारिशी चिट्ठी के साथ उन्होंने मुझे इन्दौर भेज दिया। आगर से कूच करने के पांचवें दिन, अर्थात् १८६० सन् की ५वीं मई को हम लोग इन्दौर की छावनी पहुंचे।

"इन्दौर के रेसीडेन्ट रिचमण्ड शेक्सपियर साहब के साथ मेरी भेंट हुई, उन्होंने मुझसे कुशल प्रश्न पूछा। उनके मीर मुन्शी पण्डित धर्मनारायण काश्मीरी को मेरे लालन पालन का भार सौंपा गया। मेरे साथ के सेवकों में सिवाय सिपाहीपन और परिश्रम करनेवालों के कोई पढ़ा लिखा या नीति कुशल न था, इसलिये चार पांच जनों को तो मुंशी जी ने मेरे पास रहने दिया और सभों को विदा किया। रेसीडेन्ट साहेब ने बड़े लाट साहेब को लिख पढ़ मेरे लिये १५०) रुपये की वृत्ति स्थिर की। मैं बालक ही था, दूसरा ऐसा कोई चतुर मनुष्य मेरे पास न था जो मेरा हो के कुछ आन्दोलन करता, अस्तु १५०) रुपया ही मेरे लिये स्थिर हो गया।"

१९००

❀ ❀ ❀

महाकवि भारवि

सेठ कन्हैयालाल पोद्दार

आर्या

"दिवमप्युपयातानामाकल्पमनल्पगुणगणा येषाम्।
रमयन्ति जगन्ति गिरः कथमिव कवयो न ते वन्द्याः॥"

महाकवि-शिरोमणि श्री भारवि कौन, किस समय में हुए और किस स्थान एवं कुल को उन्होंने अपने जन्म से विभूषित किया, इन सब बातों का निरूपण करना तो दुःसाध्य ही नहीं, किन्तु असम्भव भी कहा जा सकता है, क्योंकि यह बात तो हमारे रसज्ञ पाठकों में से बहुत से महाशयों को विदित ही होगी कि पुरावृत्त-अनुरागी सब ही विद्वान् लोग इस विषय में अत्यन्त परिश्रम और यत्न से पूर्णतया खोज करके भी भारतवर्ष के प्रायः बहुत से प्राचीन कवियों के विषय में जो कुछ पता लगा के निश्चित सिद्धान्त निरूपण में संतुष्ट एवं कृतकार्य नहीं हो सके हैं, इसका कारण यही है कि कवियों के कालादि निर्णय करने के लिये केवल दो मार्ग हैं—एक आन्तर्य प्रमाणों द्वारा और दूसरा बाह्य प्रमाणों द्वारा। आन्तर्य प्रमाण, अर्थात् उस कवि के स्वरचित ग्रन्थों में अपने विषय में लिखी हुई बातें। बाह्य प्रमाण अर्थात् उस कवि के विषय में, किंवा उसके रचित ग्रन्थों के विषय में, कोई प्राचीन लेख अथवा लोक में चली हुई दन्तकथा इत्यादि। खेद है कि हम लोगों के हतभाग्य से प्रथम प्रकार के प्रमाणों का तो हमारे प्राचीन कवियों के ग्रन्थों में पूर्णतया ही अभाव है, यहां तक कि बहुत से ग्रन्थों में तो ग्रन्थान्त में भी रचयिता कवि का नाम उपलब्ध नहीं होता है। यह उन कवियों का सौभाग्य-मात्र समझना चाहिए जो कि सहस्रों वर्ष व्यतीत हो जाने पर भी अद्यापि वे ग्रन्थ उनके नाम से प्रचलित हैं। हां, दूसरे प्रकार के प्रमाण प्रायः मिल जाते हैं, पर उनमें भी लोक-प्रचलित किंवदन्ती के आधार पर जो कुछ लिखा जाता है, वह तो भ्रमोत्पादन करने के अतिरिक्त कुछ भी लाभकारक नहीं हो सकता, और प्राचीन शिलालेख, दान-पत्रादिकों द्वारा जो प्रमाण मिलें, उनके ऊपर आधार रख के जितना कुछ लिखा जाय वह निस्सन्देह विश्वसनीय हो सकता है। किन्तु ऐसे प्रमाणों द्वारा बहुत थोड़ा परिचय मिल सकता है। पर क्या किया जाय, जो कुछ यथार्थ संवाद अवगत हो वही बड़ा लाभ है। बस, यही कारण है कि हमारे पुरातन कवियों के देश कालादि का ठीक निर्णय नहीं हो सकता।

हमारे उपर्युक्त कविमूर्धन्य भारवि के विषय में जब देखते हैं तो प्रथम प्रकार के प्रमाण का तो पूर्ण अभाव ही है अर्थात् उनके निर्मित "किरातार्जुनीय" महाकाव्य में उनका नाम तक नहीं देखा जाता है। रहा दूसरे प्रकार का प्रमाण, सो सौभाग्य से कुछ मिलता है, जिससे केवल भारवि के काल के विषय में किंचित् ज्ञान प्राप्त होता है। 'काव्यमाला' में 'प्राचीन लेखमाला' नामक प्राचीन लेख-संग्रह की पुस्तक के प्रथम भाग में त्रयोदश संख्या का प्राचीन लेख जिसमें महाराज श्री पृथ्वीकोंगणि का दान-पत्र मुद्रित हुआ है, उसमें लिखा है—

"किरातार्जुनीय पंचदश सर्गादिकोंकारो दुर्व्विनीत नामधेयः।"

यह शिलालेख शक ६९८ का लिखा हुआ है। दूसरा एक और लेखमाला के प्रथम भाग में षोडश संख्या का प्राचीन लेख, जिसमें चालुक्यवंशोद्भूत श्री पुलकेशिन का शिलालेख है, उस लेख के शेष में निम्नलिखित पद्य है—

"येनायोजिनवेऽश्म स्थिरमर्थविधौ विवेकिना जिनवेश्म।
स विजयतां रविकीर्तिः कविताश्रितकालिदासभारवि-कीर्त्तिः॥"

यह लेख शक ५५६ का लिखा हुआ है। ये दोनों लेख 'इंडियन अन्टिक्वेरी' नामक अंग्रेजी पत्र से 'काव्य-माला' में उद्धृत किए गए हैं। इन उपर्युक्त दोनों लेखों से यह सिद्ध होता है कि खृष्टाब्दीय सप्तम शतक (सन् ७००) के प्रारंभ में भी श्री भारवि कवि की और उनके कीर्तिस्तंभ किरातार्जुनीय काव्य की उतनी ही प्रसिद्धि थी जितनी कि महाकवि-मुकुट कालिदास की। और इस प्रकार की प्रसिद्धि थोड़े समय में शीघ्र ही प्राप्त हो नहीं सकती है। अतएव यह बात तो निर्विकल्प सिद्ध हो चुकी कि खृष्टाब्दीय षट्शतक से भी प्राचीन हमारे भारतीय कविभूषण श्री भारवि हुए हों।

इन प्रमाणों के अतिरिक्त "ह्वएना ओरिएण्टल जर्नल" नामक त्रैमासिक अंग्रेजी पुस्तक के तृतीय भाग के द्वितीय खण्ड में (१४४ पत्र में) याकोबी पण्डित यह लिखते हैं—

"We therefore cannot place Magha later than about the middle of the sixth century; and Bharavi, who is older than Magha by at least a few decades, about the beginning of the sixth century".

इस वाक्य के अनुसार सन् ६०० के मध्य भाग से किसी प्रकार भी 'माघ' कवि अर्वाचीन नहीं हैं, और भारवि तो उससे भी प्राचीन हैं। बस, इससे अधिक उक्त कवि के समय के विषय में हमको कुछ ज्ञात नहीं हो सका। देश आदि के विषय में तो सर्वथा अनिश्चित है। आश्चर्य का विषय है कि भारवि-विरचित 'किरातार्जुनीय' के अष्टादश सर्ग में निम्नलिखित पद्य है—

"उरसि शूलभृतः प्रहिता मुहुः प्रतिहतिं ययुरर्जुन-वृष्टयः।
भृशरया इव सह्य महीभृतः पृथुनि रोधसि सिन्धुमहोर्मयः ।।"

इसमें जो भगवान् चन्द्रमौलि के उरुस्थल पर पृथानन्दन अर्जुन के मुष्टि प्रहार की व्यर्थता दिखाने को विशाल सह्याद्रि के तट पर बारंबार टक्कर खाती हुई समुद्र की तीव्र महातरंगों की उपमा दी गई है, इसी के आधार से राजाराम, रामकृष्ण आदि महाराष्ट्रीय विद्वानों ने 'मराठ्यांचा संबन्धाने चार उद्गार' नामक महाराष्ट्र भाषा के निज ग्रथित संदर्भ में भारवि का दाक्षिणात्य, महाराष्ट्र किंवा द्रविड़ होना माना है। विचार का स्थल है कि यदि यहां सह्याद्रि के नाम ग्रहण मात्र ही से भारवि को दाक्षिणात्य मान लिया जाय, तब तो दक्षिण दिक् प्रसिद्ध मलय, सह्य, सुवेलादि पर्वतों का और कावेरी, गोदावरी, ताम्रपर्णी, भीमा, वेणा, आदि नदियों का वर्णन करने वाला 'हरविजय' काव्यकर्ता सुप्रसिद्ध काश्मीर देशीय महाकवि रत्नाकर भी दाक्षिणात्य ही माना जायगा एवं विन्ध्याटवी-वर्णन-तत्पर कादम्बरी-कार 'बाण' भी विन्ध्यवासी कोई भील क्यों न माना जाय? और भी स्वर्ग, पाताल आदि के वर्णन करनेवाले कवियों को उस उस प्रदेश वासी कहना चाहिए? अस्तु, जो कुछ हो।

आज हम जिस अनल्पप्रतिभाशाली अलौकिक व्युत्पत्ति-सम्पन्न कविवर भारवि के सम्बन्ध में लिख रहे हैं, वह महानुभाव हमारे भारतीय प्राचीन संस्कृत साहित्य में उतने ही गौरवास्पद हैं, जितने कविकुल-शेखर महाकवि कालिदास। प्राचीन काल में साहित्य-रसज्ञों की दृष्टि में वे उतने ही प्रसिद्ध और परम आदरपात्र थे, यह बात उपर्युक्त षोड़श संख्या के प्राचीन लेख से भी सिद्ध होती है। हां, यह बात ठीक है कि सम्प्रति विद्वद्-समाज को छोड़ के जितनी प्रसिद्धि और अभिलाषा सर्वसाधारण में कालिदास की कविता की है, उतनी उक्त महाशय की नहीं है परन्तु इसका हेतु यह कदापि न समझना चाहिए कि वैसा उग्र पांडित्य और वैसी विचित्र कवित्व-शक्ति इनमें न थी, किन्तु उसका कारण देश, काल, गुण-ग्राहकतानुसार भाग्याधीन जानना चाहिए। सत्य है कि यश भाग्यानुसार ही उपलब्ध हो सकता है। देखिए, महाकवि कालिदास के काव्य का तो उसी के समय में इतना आदर और इतनी प्रसिद्धि और उसके थोड़े ही समय पीछे उसी के समान प्रचंड विद्वत्तापूर्ण महाकवि भवभूति के वैसे ही अत्यन्त मनोहर काव्य की इतनी अग्राह्यता कि जिससे ऐसे अपूर्व कविमणि ने हतोत्साहित हो के अपना हृदयोद्गार निज मुख द्वारा यह प्रकट किया कि—

'ये नाम केचिदिह नः प्रथयंत्यवज्ञां
जानंतु ते किमपि तान् प्रति नैष यत्नः!!
उत्पत्स्यतेऽस्ति मम कोपि समानधर्मा
कालो ह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी ।। (मालतीमाधव)

भवभूति का ऐसा कथन कई स्थानों पर है। यहां यह कहने का हमारा केवल यही तात्पर्य है कि न्यूनाधिक गुण का भाग्याधीन प्रसिद्धि के साथ कुछ भी सम्बन्ध नहीं है।

अब हम भारवि के काव्य के विषय में कुछ लिखते हैं। प्रसिद्ध महाकाव्य 'किरातार्जुनीय' को छोड़ के दूसरा कोई भी ग्रन्थ भारवि-प्रणीत उपलब्ध नहीं होता है। इसके सिवाय दूसरा कोई ग्रन्थ इन्होंने बनाया वा नहीं, इसका भी पता नहीं लगता। क्योंकि बौद्ध और यवनों के अत्याचार से हमारा प्राचीन साहित्य बहुत कुछ लुप्त हो गया है, इसी से यह किस प्रकार निर्णय हो सकता है कि किस कवि ने कितने ग्रन्थ बनाए। पर इससे क्या है? भारवि के उक्त एक ही ग्रन्थ-रत्न से उसकी लोकोत्तर प्रतिभा का अनुपम परिचय मिलता है। यह ग्रन्थ भारतवर्षीय छात्रगणों के लिये काव्य-शिक्षा में जो प्रसिद्ध बृहत्त्रयी

(अर्थात् किरातार्जुनीय, शिशुपालवध, नैषधीयचरित) नामक मुख्य महाकाव्य हैं, उनमें अग्रगण्य है। इसकी रचना महाभारत के सर्वप्रसिद्ध इतिहास के आधार से की गई है। महाभारत के वन पर्व के ६ठें अध्याय से ४१ अध्याय तक अर्जुनाभिगमन और कैरात पर्व वर्णन है। अर्थात् राजा दुर्योधनादि के माया-द्यूत से हारके वन में आए हुए धर्मराज युधिष्ठिर के प्रति महाराणी द्रौपदी की दुःखमय युक्ति, उसका भीमसेन द्वारा समर्थन, युधिष्ठिर का उनके प्रति सांत्वनामय उत्तर, उसी समय वहां पर भगवान् कृष्ण द्वैपायन मुनि का आगमन और उनके आज्ञानुसार धर्मनन्दन युधिष्ठिरानुमोदित अतिरथी अर्जुन का इन्द्रकील गिरि पर जाके देवराज इन्द्र से मिलना, अर्जुन को इन्द्र द्वारा श्री भूतभावन महादेव के प्रसन्नार्थ तपश्चर्या का उपदेश, पश्चात् शूलधारी भक्तभयहारी श्री त्रिपुरारि के आराधनार्थ अर्जुन का तप करना, भगवान् पिनाक-पाणि का किरात-वेष धारण करके ससैन्य प्रस्थान, मूक दैत्य का बाराह रूप धारण करना, उसके मारने पर लीला-किरात श्री भूतनाथ और अर्जुन के परस्पर विवादपूर्वक लोमहर्षण संग्राम में अर्जुन के पराक्रम पर भगवात् गिरिजानाथ का प्रसन्न हो के अर्जुन के स्तुति करने पर पाशुपतास्त्र का देना, पुनः श्री शंकर का अन्तर्धान होना, इत्यादि वर्णन है। इसी इतिहास से भारवि ने काव्यरीत्यनुसार 'किरातार्जुनीय' को रमणीय चित्तापकर्षक शब्दों द्वारा विभूषित कर ग्रथित किया है। निस्सन्देह भारवि के काव्य में बड़ी ही अर्थ-गौरवता है। किसी सहृदय काव्यानुभवी महाशय ने बहुत ही यथार्थ कहा है कि---

"उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम्।
दण्डिनः पदलालित्यं माघे सन्ति त्रयो गुणा.॥"

उक्त कवि का काव्य सब विषयों पर सरसतायुक्त कहना अनुचित न होगा। हमारे प्राचीन कवियों की रुचि प्रायः शृंगार रस पर अधिक देखी जाती है। उनके काव्य में शृंगार रस की कविता को ही अधिक स्थान दिया गया है। अतएव शृंगार रस की कविता ही उनके ग्रंथों में प्रायः अधिक रमणीय पाई जाती है। पर सब विषयों पर एकरस मनोहारिणी कविता निर्माण करनी जितनी दुःसाध्य है उतनी ही रचयिता कवि की उत्कट गौरवता है, जैसा कि महाकविरत्न कालिदास की कविता के उत्कर्ष के विषय में आर्यासप्तशती-कर्ता काव्य-रस-मार्मिक गोवर्धनाचार्य ने यथार्थ कहा है---

"साकूतमधुरकोमलविलासिनी कंठकूजितप्राये।
शिक्षासमयेपि मुदा रतिलीला कालिदासोक्तिः॥"

निस्सन्देह सब लोगों की उक्ति शिक्षा-समय में प्रायः अरुचिकारक और दुःखप्रद हो ही जाती है, किन्तु कालिदास की उक्ति शिक्षा समय में भी हर्षोत्पादक है। जहाँ तक हम देखते हैं भारवि के काव्य में भी यह गुण भली प्रकार पाया जाता है।

इससे अधिक भारवि के काव्य में एक और भी अप्रतिम गुण है, अर्थात् इनका काव्य प्रायः (चित्र काव्य को छोड़ के) सरलता युक्त है। गूढ़तारहित शब्द अर्थ का होना काव्य में प्रधान गुण है, जैसा कि साहित्य के प्रसिद्धाचार्य भरत मुनि ने अपने नाट्यशास्त्र में लिखा है---

"मृदु-ललित-पदाढ्यं गूढ-शब्दार्थ-हीनं
जनपद-सुख-बोध्यं युक्तिमन्नृत्य-योज्यम्।
बहु-कृत-रस-मार्गं संधि-संधान-युक्तं
स भवति शुभ-काव्यं नाटक-प्रेक्षकाणाम्॥"

बस, अब उक्त कवि के काव्य के आलोचनार्थ उक्त कवि रचित पद्यों का यहां उदाहरण दे के हमारे हिन्दी भाषा के पाठकों को अधिक परिश्रम देना युक्तियुक्त न समझ के, केवल यह निवेदन करके कि हमारे प्राचीन स्वर्गीय महाकवि-रत्न-आकर, जिनकी अप्रतिम रत्न-प्रसूता लेखनी से प्रादुर्भूत अखंड कीर्ति अद्यापि आसमुद्रांतव्यापिनी है, वे महानुभाव हम लोगों के लिये अवश्य ही वन्दनीय एवं सेवनीय हैं और इसके प्रमाण रूप इस लेख के आदि में शीर्षक पर जो प्राचीन आर्यापद्य है उस पर पुनः एक बार दृष्टि देने का अनुरोध करके इस लेख को समाप्त करने की आज्ञा लेते हैं।

१९००

❀ ❀ ❀

पं० श्रीधर पाठक की कविता

पं० श्यामविहारी मिश्र एम० ए० और शुकदेवविहारी मिश्र बी० ए०

बड़े आनन्द का विषय है कि हम्मीरहठ पर समालोचना* भाषा के कतिपय मर्मज्ञों को रुचिकर हुई। इसी से प्रोत्साहित हो हमारा यह विचार हुआ कि यदि ऐसे महाशयों की रुचि इस ओर हो तो हम इसी प्रकार की समालोचनावली क्रमशः हिन्दी की गौरव स्वरूप इस सरस्वती पत्रिका में प्रकाशित करें। भाषा-रसज्ञों पर भली भांति विदित है कि हमारे नागरी भण्डार में समालोचना विभाग की कैसी त्रुटि है। इसको पूरा करना हम लोगों को अपना कर्त्तव्य मानकर इस कार्य में कटिबद्ध हो जाना चाहिए। "निज पौरुष परमान ज्यों मशक उड़ाहि अकाश'—इस वाक्य के आधार पर हम भी अपने पाठकों के सन्मुख यह लेख लेकर उपस्थित होते हैं। परन्तु उसमें एक वर्तमान कवि के मनहरण काव्य पर समालोचना लिखने का साहस किया गया है, अतः हम कवि जी से प्रार्थना करते हैं कि वे हमारे इस लेख को शुद्ध अंतःकरण से लिखा हुआ समझ यह कदापि न सोचें कि इसमें जान बूझ कर उनकी कुछ भी असत्य प्रशंसा वा निन्दा की गई है। सम्भव है कि स्वयं वे या कोई अन्य महाशय हमारे विचारों से सहमत न हों, पर हम वादानुवादार्थ यह लेख नहीं लिखते हैं।

जहां तक हमें विदित है हमारे कवि जी ने अब तक तीन ग्रन्थ प्रकाशित कराए हैं। (१) मनोविनोद जो उनकी स्फुट कविताओं का एक संग्रह है। इस संग्रह की जो प्रति हमारे पास है वह इसी वर्ष (सन् १९००) हरि प्रकाश यन्त्रालय काशी में मुद्रित हुई है। (२) एकान्तवासी योगी जो अंगरेजी के प्रसिद्ध कवि गोल्डस्मिथ के हरमिट नाम ग्रन्थ का अनुवाद है जो राजपूत ऐंग्लो-ओरिएण्टल प्रेस, आगरा, में तृतीय बार सन् १८९९ में प्रकाशित हुआ। और (३) ऊजड़गाम जो गोल्डस्मिथ के डेज़रटेड विलेज का अनुवाद है जो मेडिकल हाल प्रेस, बनारस, से सन १८८९ में निकला था।

*वास्तव में हम्मीर हठ की समालोचना भी इस समालोचना के दोनों ही लेखकों ने लिखी थी परन्तु वह केवल पं० श्यामबिहारी मिश्र के नाम से सरस्वती के अंक ९ (सितम्बर-मास) की कुछ प्रतिओं में मुद्रित हो गई।

मनोविनोद

इस संग्रह में ४४ विषयों पर पाठक जी की भिन्न-भिन्न रचनाएं एकत्रित की गई हैं, जिनमें से मुख्य-मुख्य पद्यों पर हम अपने विचार नीचे देते हैं।

हिमालय

इस वर्णन के श्रीगणेश ही में हिमाचल के श्वेत, हाटक बर्ण और श्याम रेख की "भारतवर्ष विशाल भाल भूषित त्रिपुण्ड सम" बड़ी ही उत्तम उपमा दी है और तत्पश्चात् कैसा मनोहर चित्र नेत्रों के सन्मुख खड़ा कर दिया है—

दच्छिन भुज अफगान राज मस्तक सों भेंटत।
बाम बाहु सों बरमा के कच भार समेटत॥
आर्यावर्त पुनीत ललकि हिय भरि आलिंगत।
गंगा यमुना अश्रु प्रेम प्रगटत हृदयंगत॥

यह सम्पूर्ण पद्य बड़ा ही विशद है और कवि जी की सूक्ष्मदर्शिता इससे पूर्णतया विदित होती है। इन्होंने बानरों का कौतूहल, जीवों का झरनों से जलपान करना, खेतों का "तर ऊपर" दृष्टिगोचर होना, प्रतिध्वनि का सुनाई देना, यह सब कुछ ऐसी रीति से लिखा है कि ज्ञात होता है यह केवल चित्त ही की उपज नहीं है। फिर जहां तहां समस्त पुस्तक में पर्वतों के वर्णन अधिक होने, तथा "हेमन्त" में इस पद से कि "आश्रम बद्रीनाथ बन्द जाना हुआ", हमारा यह अनुमान है कि सन १८८४ या ८५ में पाठकजी श्रीबद्रिकाश्रम के दर्शनीय हिमाचल को पधारे थे। "श्रीधर दृग छकि रहत अटल छबि निरखि हिमालय" इस पद से हमारे अनुमान का बहुत समर्थन होता है।

भ्रमराष्टक

के आदि में अपने ही को भ्रमर कह कर परब्रह्म की प्रशंसा और बन्दना की है और तत्पश्चात् संस्कृत के सुप्रसिद्ध भ्रमराष्टक की भांति भ्रमर का अवलम्बन ले अनेक उक्तियां लाई गई हैं, जिनमें से कतिपय तो अत्यन्त अनूठी हैं। यह अष्टक बड़ा मनोहर है और इससे तथा घनाष्टक से स्पष्ट रीति पर सिद्ध होता है कि पाठक जी केवल नवीन योरोपीय सांचे की ही नहीं वरन् स्वदेशीय

प्राचीन प्रथा की कविता भी पूर्ण गम्भीरता से कर सकते हैं। इस अष्टक का निम्नलिखित सवैया हमें प्राचीन महाकवियों सा जँचता है--

"ए अलि श्यामता तोमें घनी
छवि सों कटि पै पटपीत बिराजै।
बाललता बनवारी नई
तिनके ढिग तू छनि पै छिन भ्राजै॥
प्यारी सी गुंज सों कुंजन मैं
बनवारी की बांसुरी की धुनि लाजै।
श्याम भये वृज नारिन कौ
द्रुम नारिन माहिं तू स्याम सो राजै॥

श्री हरिश्चन्द्राष्टक

में भारतेन्दु जी अनेक विशेषणों से इंगित किए गए हैं और उनके कुछ सत्कर्मों तथा सद्गुणों का वर्णन हुआ है। इन महानुभाव को "प्रेम अंकुर उपजायो" और "कल्प पादप कलि दुर्लभ" बहुत ही यथार्थ कहा है। भारतेन्दु जी के विषय में होने के कारण यह अष्टक भाषारसिकों को इस अष्टकत्रयी का जीवन-स्वरूप जान पड़ेगा। इसका एक छप्पय हम निज पाठकों के चित्त विनोदार्थ उद्धृत करते हैं जो खंडितोपमा दूषण के रहते भी अति विलक्षण है--

हरि-समान हरि कुमति निसातम, सुमति प्रकासी।
परम पुरातन प्रेम बेलि, नव कली बिकासी॥
बचनावली मयूख चन्द सम आनँद दीन्हौ।
सज्जन मन बन जाति, सुधा संचारन कीन्हौ॥
नहिं याते केवल इन्दु ही
भारत के तुम नित लसत।
पै हरिश्चन्द्र! हरि चन्द्र गुन,
सम तुममें एकत बसत।'

घन विनय

का प्रथम ही छन्द

"हे घन! किन देसन महँ छाए
बरसा बीति गई फिरहु कहां भरमाए
का यह रीति नई?"

पाठकों को बरबस द्रवीभूत कर देता है। इसके कवि जी ने चार खंड किए हैं। प्रथम और द्वितीय में सावन भादों का निर्जल व्यतीत होना, तृतीय में घनों के अनेक सम्बोधन और उनका भारतवर्ष से सम्बंध और चतुर्थ में उनसे अपने कर्त्तव्य पालन की प्रार्थना की गई है। इस चतुर्थ खण्ड में ('पठवहु परम सुहावनि पावनि पूरब पौन' से पद्य के अन्त तक) कवि जी ने अपनी अद्भुत कवित्व शक्ति का परिचय दिया है और इसका कुछ भाग उद्धृत किए बिना लेखनी आगे नहीं बढ़ती है--

स्याम घटा लै धावहु, छावहु नभहि दबाय।
दिव्य छटा फैलावहु, लावहु, दलहि सजाय॥
घोरहु घुमड़ि घमंकहु घेरहु दसहु दिसान।
दामिनि द्रुतहि दमंकहु धारहु धनुस निसान
गरजन गहन सुनावहु रन ब्रत बीर समान॥
लरजन ललित दिखावहु बांधहु धुर धुरवान॥
कहुँ कहुँ कड़कि सुनावहु बिज्जु पतन ठनकार।
कहुँ मृदु श्रवण करावहु झिल्लीगन झनकार॥
पोखर नदी तड़ागन बागन बगियन बीच।
गैल गली घर आँगन भरहु मचावहु कीच॥
कजरी मधुर मलारन की धुनि पुनि सुनवाउ।
मंगल मोद मनावन की चरचा चलवाउ॥
झूलन फूल हिंडोलन काम किलोल कराउ।
पुनि-पुनि पिय पिय बोलन पपियन प्यास बुझाउ॥
करि कृतकृत्य किसानन सम्बतसर सरसाउ।
सींचि सस्य तृन धानन तब निज धाम सिधाउ॥

इस महा दुख:मय अकाल के वर्णन में हमारे कवि जी ने छन्द भी कैसा मन्द गति वाला प्रयोग किया है कि जिससे स्वयं एक प्रकार की उदासी टपकी पड़ती है। अकाल का कराल चित्र तो मानो नेत्रों के सन्मुख उपस्थित कर दिया है। यह पद्य पाठक जी के अति उत्तम लेखों में से है।

जगत सचाई सार

खड़ी बाली में बड़ी ही मनोहरता से लिखा गया है। यह पद्य हमें बहुत ही अच्छा जान पड़ता है। एक तो इसका वृत्त बड़ा चमत्कारी है। दूसरे जगत् की झुटाई को निर्मूल कह कर उसकी सचाई के अच्छे-अच्छे प्रमाण दिए गए हैं जिनमें उसकी सुघराई (Design) पर विशेष ध्यान दिया गया है।

इस निबन्ध में से जगत की सुघराई का वर्णन तो देखने ही योग्य है--

"ध्यान लगा के जो देखो तुम
सृष्टी की सुघराई को।
बात बात में पाओगे
उस ईश्वर की चतुराई को॥

ये सब भांति भांति के पक्षी
ये सब रंग रंग के फूल।
ये बन की लहलही लता
नव ललित ललित शोभा की मूल॥

ये नदियां ये झील सरोवर
कमलों पर भौरों की गुंज।
बड़े सुरीले बालों से अनमोल
घनी वृक्षों की कुंज॥

ये पर्बत की रम्य शिखा
औ शोभा सहित चढ़ाव उतार।
निर्मल जल के सोते झरने
सीमा रहित महाविस्तार

यह समुद्र का पृथ्वी तल पर
छाया जो जलमय बिस्तार।
उसमें से मेघों के मंडल
हों अनन्त उत्पन्न अपार॥

लरजन गरजन घन मंडल की
बिजली बरषा का संचार।
जिसमें देखो परमेश्वर की
लीला अद्भुत अपरम्पार॥

खड़ी बोली में तो ऐसे विलक्षण वर्णन अब तक बने ही न होंगे। पर ब्रजभाषा में भी इसके जोड़ के बहुत न मिलेंगे।

शरद ऋतु बर्णन

यह पद्य जैसा कि उसके शीर्षक के नीचे ही लिखा है, महाकवि कालिदास जी के ऋतुसंहार से अनुवादित हुआ है। इसकी सवैया अत्यन्त मनहारिणी है। लाला सीताराम बी० ए० ने समस्त ऋतुसंहार का पद्यमय अनुवाद किया है। स्थानाभाव से हम केवल एक छन्द दोनों अनुवादों से उद्धृत करके अपने पाठकों से उनको सम्पूर्ण अवलोकन कर दोनों की पर्यालोचना स्वयं करने का अनुरोध करते हैं—

"चंचल जो सफरी फरकैं,
मनु मंजु लसी कटि किंकिन डोरी।
सेत बिहंगन की सुठि पंगति,
राजति सुन्दर हार सी गोरी॥
तीर के देस विशाल नितम्ब,
सुमन्द प्रबाह भई गति थोरी।
सोहति या ऋतु में सरिता,
गजगामिनि कामिनि सी रस बोरी॥"

पं० श्रीधर पाठक

नाचत चंचल मीन हिलत करधनी बनाए।
लसत हंस उपकंठ हार जनु गर लपटाए॥
भरे रेत शुचि कूल शोणिकी छबि परकासी।
मन्द मन्द अब चलैं सरित मदभरि प्रमदासी॥

ला० सीताराम।

पाठक जी की सरस लेखनी की छटा इस पद्य में वैसी ही झलक रही है जैसी कि उनके और उत्तमोतम लेखों में पाई जाती है।

एकान्तवासी योगी

में पाठक जी ने कुछ स्वच्छन्दता के साथ अनुवाद किया है और इसी हेतु मूल में केवल ४० चरणावली के ठौर अनुवाद में ५९ हो गई हैं। इनमें से कुछ तो मूल का पूर्ण आशय दिखलाने के हेतु और कुछ काव्य गम्भीरता के वृद्धयार्थ लाई गई हैं, और यह ऐसी उत्तमता से कथाप्रसंग में मिलजुलकर बढ़ी हैं कि ग्रन्थ की शोभा द्विगुणित हो गई है। ऊजड़गाम की भाँति उल्था में मूल का यथाशक्ति प्रत्येक शब्द अनुवादित कर देने का विशेष प्रयत्न नहीं किया गया है। प्रथम ही पद देखिए—

"Turn, gentle hermit of the dale!
And guide my lonely way
To where yon taper cheers the vale
With hospitable ray"

इसका अविकल अनुवाद गद्य में यों होगा—

फिरिए, घाटी निवासी शुद्ध चित्त बैरागी!
और मुझे इस एकान्त राह ले चलिए
जहां कि वह छोटा सा उजाला पर्बत कुञ्ज को अतिथि-सत्कार सूचक किरणों के साथ शोभायमान करता है।

और पद्य में हम ऐसा अनुवाद करेंगे—

फिरिए, शुद्धचित्त पर्वत घाटिका निवासी बैरागी !
और मुझे ले चलिए इस एकान्त राह से सँग लागी
जहँ वह स्वल्प प्रकाश सुशोभित करता है नग कुञ्ज
अतिथि-समादर-सूचक संयुत बर किरनन के पुञ्ज।

हमारे कवि जी का अनुवाद यों है—

"सुनिये झाड़खण्ड बनवासी, दयाशील हे बैरागी !
करके कृपा बता दो मुझको कहां जले है वह आगी ॥
मैं भटका फिरता हूं बन में, भूल गया हूं राह।
जो तू मुझे वहां पहुंचा दे यह गुण होय अथाह ॥"

बस—अब पाठकगण हमारे उपरोक्त कथन की सत्यता स्वयं समझ लेंगे ॥

मूल से प्रथम पढ़े जाने पर स्वतः भी यह ग्रन्थ अत्यन्त मनोहर है और अंगरेजी से अपरिचित पाठकों को भी पूर्ण आनन्द देता है। फिर भी मूल से बहुत अन्तर नहीं होने पाया है। अनुवाद ऐसा ही होना चाहिए क्योंकि वह तो मूल ग्रन्थ की भाषा से अनभिज्ञ पाठकों के लाभार्थ ही निर्माण किया जाता है; तो जब वह उन्हीं को रुचिकर नहीं हुआ फिर उसे सिवाय एक व्यर्थ वस्तु के और क्या कहा जाय ?

इस ग्रन्थ के सभी पद एक ऐसे सौंदर्य के साथ बहते हुए चले जाते हैं कि मानों उन्हें किसी ने सांचे में ढाल कर रख दिया है। प्रायः अन्य आधुनिक कवियों के अनुवादों में एक ऐसी निरसता आ जाती है कि अनुवाद मूल की धुन्धली छाया की भांति प्रतीत होते हैं और पाठक मूल ग्रन्थों की सरसता, उक्ति और मनोहरता के विषय में भी भ्रम में पड़ जाते हैं और कहने लगते हैं कि वाह, कालिदास और शेक्सपियर का बड़ा यश सुना करते थे,; पर भाई "नाम बड़ा और दरशन थोड़े।" परन्तु एकान्तबासी योगी एक स्वच्छन्द ग्रन्थ से किसी प्रकार पदलालित्य, सरसता और अर्थगौरव में न्यून नहीं है। पाठक जी की कहावत तो सदा ही अति मधुर होती है, पर इस छोटे से अनुवाद में यह गुण कूट कूट कर भरा है। यदि श्रीधर जी केवल एक इसी पुस्तक के रचयिता होते, तौ भी हम उन्हें पूर्ण कवि अवश्य कहते। इण्डियन मेगेजीन, होमवर्ड मेल, अलीगढ़ इन्सटिट्यूट गजट,अलंस इण्डियन मेल, इत्यादि बड़े बड़े समाचार पत्रों तथा ग्राउस, ग्रिफिथ्स, पिनकाट प्रभति सुप्रसिद्ध विद्वानों ने इस ग्रन्थ की तथा ऊजड़गाम की बड़ी प्रशंसा की है और हम उसके अधिकांश से पूर्णतया सहमत हैं।

ऊजड़गाम

गोल्डस्मिथ के डेजर्टेड विलेज में ४३० पंक्तियां हैं, पर इस उल्था में ५१४ हो गईं। जो ८४ पंक्तियां इसमें मूल से अधिक हैं वे एकान्तबासी योगी की भांति काव्य का चमत्कार विवर्धित करने को नहीं लाई गई हैं, किन्तु जहां पंक्ति प्रति पंक्ति अनुवाद नहीं हो सका, वहां एक पंक्ति को दो, तीन और चार पंक्तियों तक में अनुवादित किया है।

इस ग्रन्थ में कवि जी ने अनुवाद और मूल में विभेद न गड़ने देने का बड़ा प्रयत्न किया है और मुख्य करके इसी हेतु फ़ेडरिक पिनकाट साहब के मतानुसार "श्रीधर पाठक के पद समस्त विद्याओं के अनुवादों में अद्वितीय हैं।" उदाहरण को हम यहां पर थोड़ा सा पद्य मूल और अनुवाद से उद्धृत करना आवश्यक समझते हैं।" इसमें साहित्य को सम्बोधन कर कहा है।

मूल

"Aid slighted truth with thy persuasive train,
Teach erring man to spurn the rage of gain;
Teach him, that states of native strength possesst,
Tho' very poor, may still be very blest;
That trade proud empire hastens to swift decay,
As ocean sweeps the laboured mole away;
While self-dependent power can time defy
As rocks resist the billows and the sky"

अनवाद

"निदरति सत्य सहाय करन कल गान सुनावहु,
मूढ़ मनुष्यहि धन तृष्णा की घृणा सिखावहु।
समुझावहु पुनि ताहि राज्य जो निज बल धारी,
जदपि निपट धनहीन तदपि अत्यन्त सुखारी ॥
बनिज दर्पयुत राज्य देस की बेगि बिगारत,
जिमि बहु श्रम सों रचित बांध को उदधि उखारत।
जिमि बल आश्रित किन्तु काल की झेलत व्याधिन;
जिमि पर्वत चट्टान सिन्धु लहरिन अरु आंधिन।"

यद्यपि ऊजड़गाम बहुत सुन्दर और यथार्थ अनुवाद है, तथापि मूल से भिन्न पढ़ने में कुछ फीका जान पड़ता

है और एकान्तवासी योगी की भांति अंगरेजी से अपरिचित पाठकों को बहुत आनन्द नहीं देता। इसका कारण यही है कि एकान्तवासी योगी में तो अनुवाद कुछ स्वच्छन्दता से किया गया है, पर ऊजड़गाम में यथाशक्ति पंक्ति प्रति पंक्ति और शब्द प्रति शब्द।

इन दोनों अनुवादों द्वारा पाठक जी ने अंगरेजी से अपरिचित हिन्दी रसिकों को योरोपीय काव्य की छटा का अनुभव कराने में अति सराहनीय श्रम किया है और सम्बन्धातिशयोक्ति-पूर्ण तथा असम्भाव्य बातों से उनका ध्यान हटा कर उन्हें वास्तविक पदार्थों, मनुष्य के हृदयान्तरिक भावों, और प्राकृतिक सुघराइयों के वर्णनों को आदर देना सिखलाया है।

श्रीधरजी की कविता का परिचय

(१) इनके काव्य में यत्र तत्र श्रुति-कटु दूषण आ जाता है।

ऐसे शब्दों का जो कानों में खटकें, प्रयोग करना साहित्य में निन्दनीय समझा जाता है, यथा——

"गहरे गहरे गर्त खड्ड दीरघ गहराई" (हिमालय)

"उठ्यो खड्ड सों रहै बवंडर बीचहि छांड़यों" (ऊजड़गाम)

(२) यतिभंग दूषण भी कई स्थलों पर पाया जाता है, यथा——

"जय हास्य बीर श्रृंगार करुणा आदिक रस दरसकर
जय गद्य पद्य मय सुभग साहित्य सुगम मग मुकुरबर"
(श्री हरिश्चन्द्राष्टक)

(३) आश्चर्य का विषय है कि हमारे कविजी ने छन्दोभंग बहुतायत से किया है। कुछ उदाहरण लीजिए—

ज्वार बाजरा आदि कभी के कट गये।
खल्यान के काम से किसान निबट गये॥

(हेमंत, इसमें दूसरा पद छन्द ही नहीं जान पड़ता।)

(४) समस्यापूर्ति का भी दोष है। यह एक ऐसी निन्दनीय प्रथा हमारे यहां चल गई है कि जिसने साहित्य के गले पर खूब ही छुरा फेरा है। हमारे पाठक जी योरोपीय प्रणाली के कवि होने पर भी इस हत्यारिन के चंगुल में फँस अपना गौरव खोने पर कटिबद्ध हो गए!

(५) चित्रकाव्य की भी श्रीधरजी को कुछ रुचि है और कई अंशों में अच्छा भी बना लेते हैं, परन्तु चित्रकाव्य की प्रथा ही निन्दनीय है।

(६) हमारे श्रीधर जी अपनी रचना में पदमैत्री (जमक) लाने का सदा ही बड़ा प्रयत्न करते है, यहां तक कि "अति सर्वत्र वर्जयेत्" की किम्बदन्ती के अनुसार उसको दूषण कहना पड़ता है। "जगत है सच्चा तिनक न कच्चा समझो बच्चा इसका भेद" (जगत सचाई सार) में पदमैत्री के गौरवार्थ प्रतिबादी को गाली प्रदान हुआ है। अधिक उदाहरण देना व्यर्थ है।

(७) हमारे कवि जी संस्कृत शब्दों को भाषा में उपयुक्त करने के निमित्त उसके स्वरूप में कुछ ऐसा हेर-फेर कर देते हैं कि वे अत्यन्त सुखद और मधुर हो जाते हैं, यथा "ग्रीसम", "ऊसम", "सस्य" (घनविनय), "उच्छव", "पांख" (शरद ऋतु वर्णन) इत्यादि।

(८) कहीं-कहीं इन्होंने ऐसे श्रुतिमधुर शब्दों का व्यवहार किया है कि पढ़ते ही चित्त प्रसन्न हो जाता है। यथा "कौंधत बीजु" (घनाष्टक), कमो दिन को कुनबा (भ्रमराष्टक), "सज्जन मन बन-जाति सुधा संचारन कीनौ" (श्री हरिश्चन्द्राष्टक), "इस पर्वत की रम्य तटी में मैं स्वच्छन्द विचरता हूं" (एकान्तवासी योगी) इत्यादि।

(९) इन्होंने व्रजभाषा और खड़ी बोली दोनों में रचनाएं की हैं। और वास्तव में दोनों ही में यह पूर्णतया कृतकार्य हुए हैं। कहीं-कहीं अधिक संस्कृत मिश्रित बोली भी आ गई है। पद-लालित्य, वाक-सरसता, अर्थ-गौरव इत्यादि सभी महान गुण इनकी कविता में पाए जाते हैं)। माधुर्य्य और प्रसाद का अंश सभी स्थलों पर अधिक होता है, पर आवश्यकतानुसार ओज गुण का भी प्रादुर्भाव हो जाता है। खड़ी बोली में रचना हमारे साहित्य में अब अत्यावश्यक है और हमारे पाठक जी ऐसे सुकवि ने इस ओर ध्यान दे हिन्दी भाषा की अच्छी सेवा की है। एकान्तवासी योगी और जगत सचाई सार खड़ी बोली वाली रचनाओं के आदर्श स्वरूप हैं।

(१०) छन्दों के नाम हमारे कवि जी ने तो नहीं लिखे हैं पर प्रयोग अनेक प्रकार के वृत्तों का किया है जिनमें से अधिकांश की गति अत्यन्त मधुर और सुहावनी है। नाम न लिखने के तीन ही कारण हो सकते हैं। प्रथम तो यह कि उसी छन्द का कोई आचार्य तो कुछ नाम लिखता है और कोई कुछ——अतः जो इस झगड़े में न पड़ना चाहे वह गोसाईं तुलसीदास की भांति किसी छन्द का नाम ही न लिखे। दूसरे यह कि श्रीधरजी कभी-कभी

बिलकुल नवीन प्रकार के छन्द भी गढ़ लेते हैं, जिनका पिंगलों में वर्णन ही नहीं, तो उनके वह नाम क्या रक्खें। नवीन नाम लिखना पिंगलों का काम है। और तीसरे यह कि छन्दों के नाम जानते ही न हों। (मनोविनोद के वक्तव्य में प्रकाशक ने स्वयं कहा है कि "पद्य रचना में रुचि पाठक जी को सदा स्वाभाविक रही है, परन्तु सीखने का प्रयत्न इन्होंने कभी नहीं किया") अस्तु जो कुछ हो परन्तु अनेक प्रकार के छन्दों का व्यवहार कर उनको पद्यों के विषय के उपयुक्त होने का कवि जी ने पूर्ण ध्यान रखा है।

(११) श्रीधरजी की कहावत अत्यन्त रसीली है और उनके पद ऐसी सुगमता से प्रवाहित होते चले जाते हैं कि मानो साहित्य की नदी स्वतः उमड़ती हुई आ रही है। यह गुण प्रायः सभी लेखों में वर्तमान है और इसका प्रमाण इसी लेख के प्रथम भाग में हम जो ठौर-ठौर इनकी कविता से पद उद्धृत करते चले आए हैं, उनसे पूर्णतया प्रगट हो जाता है, पर विशेष पृष्ठपोषणार्थ दो एक और उदाहरण देना यहां पर असंगत न होगा--

"चूअत बारि की धार घनी
अति कारे से पैल कपोल के ठौरी।
कौंधत बीजु मनो मद बावरो
खोलत मूंदत है दृग त्यौरी।
नाद करै गरजै लरजै बग
पंगति दन्त दिखावत धौरी।
गेह किधौं मतवारो मनोज को
बारन बन्धन छोरि भजौरी।।
(घनाष्टक)

प्राण पियारे की गुण गाथा साधु कहां तक मैं गाऊं।
गाते गाते नहीं चुके वह चाहे मैं ही चुक जाऊं।।
धूनी तपै, आग की ज्वाला, चंचल शिखा झलकती है।
उड़ता धुंआं, शुष्क ईंधन की लकड़ी तथा चटकती है।
टाइन नदी के रम्य तटी पर भूमि मनोहर हरियाली।
लटक रहीं झुक रहीं जहां द्रुमलता छुएं जल से डाली।
(एकान्तबासी योगी)

बस कहां तक लिखें ! इनके पदों की सरसता देख महाकवि तुलसीदास, देव, और द्रास का स्मरण आता है।

(१३) हमारे कवि जी में प्रकृति की प्रत्येक वस्तु को ध्यान- पूर्वक देखना और उसका काव्य में समावेश करना एक बहुत बड़ा गुण है। यह गुण साधारण कवियों में कभी पाया ही नहीं जाता। यथा--"सोहत सुन्दर खेत पांति तर ऊपर छाई" (हिमालय), "खाने भर को जिस किसान के बच रहा उसके घर आनन्द हर्ष सुख मच रहा" (हेमन्त) इत्यादि।

(१४) इन्होंने अनहोनी तथा स्वप्नवत बातों से अपने पाठकों का चित्तहटाकर कारलाइल और माल्थस की भांति संसार के वास्तविक और लाभदायक पदार्थों की ओर लगाने का प्रयत्न किया है, और इसी हेतु इन्होंने अंगरेजी काव्य ग्रन्थों का अनुवाद भी किया है।

(१५) उद्योग, परिश्रम और वाणिज्य की प्रशंसा हमारे कवि जी ने प्रायः सभी कहीं की है और "घनविनय" तथा "जगत सचाई सार" तो इसी हेतु निर्माण ही किया। "हेमन्त" वर्णन में जहां और कविजन वृथा की वाणी विन्यास किया करते हैं, इन्होंने शस्य, व्यापार और भूधरों का कैसा मनोहर वर्णन किया है ? इनके काव्य में जहां देखिए धान, रव्बी आदि लहलहा रही हैं; "रहट परोहे चल रहे हैं" रुई बिक रही है। बस जहां देखिए स्वदेशीय श्रम और व्यापार की धूम है। क्या मिलों और मशीनों का वर्णन इन्हें नहीं कर आता था ? पर इनका ध्यान तो स्वदेशीय पदार्थों की ओर लगा है।

१९००

* * *

शमसुल्-उलमा मौलवी सैयदअली बिलग्रामी

बाबू श्यामसुन्दरदास बी० ए०

महाराज भर्तृहरि ने बहुत ही ठीक कहा है कि—

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा
न्याय्यात् पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः॥

वास्तव में इस संसार में सत्य और न्यायसंगत बातों को निर्भीत और निःस्वार्थ चित्त से कहना ही मनुष्य का भूषण है। जिनमें यह गुण है वे ही मनुष्य कहने योग्य हैं और जो इस परम आदरणीय पौरुष गुण से वंचित हैं वे कदापि मनुष्य कहलाने योग्य नहीं हो सकते, और जिस समाज में ऐसे पुरुष उत्पन्न होते हैं उसके नाश और तिरस्कार के वे मुख्य कारण होते हैं। आज जिन महानुभाव के विषय में हम कुछ लिखा चाहते हैं वे प्रसिद्ध मुसलमान कुल-भूषण होने पर भी अपनी जाति के स्वाभाविक गुण के समर्थक नहीं हैं, वरन जो बात सत्य और न्यायसंगत है उसके स्पष्ट रूप से कहने में कदापि पीछे नहीं हटते, चाहे उनके समस्त जाति भाइयों का मत उनसे भिन्न क्यों न हो। संसार में ऐसे लोग बिरले ही होते हैं, परन्तु यदि किसी देश अथवा जाति का मुखोज्वल और उसकी उन्नति किसी के द्वारा हो सकती है तो ऐसे ही महानुभावों के द्वारा।

जब से पश्चिमोत्तर और अवध प्रान्त के न्यायालयों में नागरी अक्षरों के प्रयोग का उद्योग हो रहा है, तभी से एतद्देशीय मुसलमानों में से कुछ लोग इसके विरोधी हो बैठे हैं, और विशेष कर जब से इस विषय पर गवर्नमेन्ट की आज्ञा प्रकाशित हुई, तब से तो इस विपक्षी आन्दोलन ने विचित्र ही रूप धारण किया है। कोई कहता है कि हिन्दी में साहित्य ही नहीं है, कोई कहता है कि इन अक्षरों से काम ही नहीं चल सकेगा। ऐसे लोगों की सम्मति का कोई आदर नहीं हो सकता, क्योंकि ये महाशय स्वार्थपूर्ण होकर बिना समझे बूझे जो मन में आता है कह बैठते हैं। यदि इन महाशयों में से एक ने भी हिन्दी पढ़ी होती और तब इस प्रकार की सम्मति देते, तो वह मान्य और शिरोधार्य हो सकती। मौलवी सैयद अली बिलग्रामी अरबी, फारसी और संस्कृत के पूर्ण पण्डित हैं तथा कई बार कलकत्ता विश्वविद्यालय में संस्कृत के परीक्षक हो चुके हैं। आप रायल एशियाटिक सोसाइटी, बम्बई तथा बंगाल एशियाटिक सोसाइटी तथा नार्थ आफ इंग्लैण्ड इन्सटिट्यूशन आफ माइनिंग इंजीनियर्स, आदि प्रसिद्ध सभाओं के सभासद हैं और कलकत्ता विश्वविद्यालय के बी० ए० तथा बी० एल० हैं। आज कल आप निजाम राज्य में पब्लिक वर्क्स विभाग के मंत्री हैं। आपकी संस्कृत में योग्यता प्रसिद्ध है। ऐसे विज्ञ महाशय यदि नागरी अक्षरों के पक्ष वा विपक्ष में कुछ कहें तो निस्सदेह उनकी सम्मति माननीय हो सकती है और उसका पूरा पूरा प्रभाव पठित समाज पर पड़ सकता है। सन् १८९८ में बिलग्रामी महाशय ने फ़रासीसी भाषा से एक पुस्तक का उर्दू में अनुवाद किया है। इस पुस्तक में अरब के लोगों की सभ्यता का इतिहास है। उर्दू अनुवाद में इन्होंने एक भूमिका अपनी ओर से लगाई है जिसका कुछ अंश हम पाठक महाशयों को आज सुनाया चाहते हैं। पर ऐसा करने से पहिले हम इस बात का आप लोगों को स्मरण दिलाया चाहते हैं कि जो आवेदन पत्र इन प्रान्तों के श्रीमान् लेफ़टिनेन्ट गवर्नर महोदय की सेवा में प्रजा की ओर से मार्च सन् १८९८ को दिया गया था, उसमें यह बात दिखलाई गई थी कि नागरी अक्षरों के प्रचार से प्रारम्भिक शिक्षा को बहुत कुछ लाभ पहुँचेगा, क्योंकि लोगों को जितनी सुगमता निज मातृभाषा द्वारा शिक्षा प्राप्त करने में होती है, वैसी विदेशीय भाषाओं अथवा अक्षरों द्वारा कदापि नहीं हो सकती। इन बातों को ध्यान में रख पाठकगण बिलग्रामी महाशय के निम्नलिखित वाक्यों को ध्यान से पढ़ें।

"अब हम थोड़े में उर्दू के लिखावट के ढंग का कुछ वर्णन किया चाहते हैं। पहलवी और फारसी की नाईं उर्दू भी उन अभागी भाषाओं में से है जिन के अक्षर दूसरी जाति से बनाए गए हैं और जिन अक्षरों का भाषा से कोई सम्बन्ध नहीं है। अर्थात् भाषा में जो शब्द हैं उनके लिये ठीक अक्षर नहीं हैं। कोई कोई शब्द के लिये तो बहुत से

अक्षर हैं और किसी किसी शब्द के लिये अक्षर हैं ही नहीं। जैसे अरबी के से ث और स्वाद ص और सीन س तीनों से उर्दू में एक ही शब्द निकलता है। इन अक्षरों का काम केवल सीन س ही से चल सकता था। निस्संदेह उन अरबी शब्दों का ध्यान करके, जो कि उर्दू में मिल गए हैं, इन अक्षरों का रहना आवश्यक है। परन्तु केवल उर्दू के शब्दों के लिये उनका रहना अनावश्यक और निष्प्रयोजन है। अर्थात् यदि कोई मनुष्य उर्दू भाषा के वाक्यों को बोलता जाय और दूसरा कोई अरबी से अनभिज्ञ मनुष्य उसे लिखता जाय तो जब तक कि उस लेखक को अरबी के इमलों का ज्ञान न हो तो वह केवल सुनकर शुद्ध नहीं लिख सकता। उर्दू अक्षरों में यह एक बड़ा भारी दोष है। यही हाल ज़े ز; ज़ाल ذ; ज़्वाद ض और जो ظ का और इसी प्रकार के उर्दू के अक्षरों का भी है।

"प्रायः लोगों को यह ज्ञात है कि उर्दू आर्य भाषा की सन्तान है, अर्थात् वास्तव में यह 'हिन्दी' अथवा 'भाषा' है जो संस्कृत से निकली है और मुसलमानों के संसर्ग के कारण इसमें फारसी और अरबी के शब्द अधिकता से मिल गए हैं। भारतवर्ष में इस प्रकार की कई भाषाएँ हैं जो एक दूसरे से भिन्न हैं, जैसे महाराष्ट्री, शूरसेनी, मागधी और पिशाची। इन भाषाओं को प्राकृत कहते हैं। प्राकृत का अर्थ स्वाभाविक भाषा है और संस्कृत का अर्थ संस्कारयुक्त अर्थात् सुधारी हुई। संस्कृत के नाटकों में राजामंत्री तथा अन्य पार्श्ववर्ती लोग संस्कृत बोलते हैं और स्त्रियाँ और भृत्य आदि प्राकृत बोलते हैं, और स्त्रियों और निम्नश्रेणी के लोगों की भाषा इन प्राकृतों में से होती है। उर्दू में जो शब्द हिन्दी के मिले हैं वे बहुत करके किसी न किसी प्राकृत से आए हैं और कुछ थोड़े शब्द संस्कृत से भी आए हैं, यह बात जानना कुछ कठिन है कि अमुक शब्द किस प्राकृत से उर्दू में आया है। परन्तु कोष लिखने के लिये इस कठिनाई का सामना करना अत्यावश्यक है। यही कारण है कि उर्दू का कोष-लेखक जब तक कि वह संस्कृत और प्राकृत भाषाओं से भली-भाँति विज्ञ न हो, तब तक कोष के एक मुख्य अंग अर्थात् शब्दों की उत्पत्ति को शुद्धता पूर्वक नहीं लिख सकता।

"इन आर्य भाषाओं के अक्षरों में बहुत ही उपयुक्त बात यह है कि इनमें स्वर मात्रा से दिखलाए जाते हैं। परन्तु शेमेटिक भाषाओं में स्वर कुछ चिह्नों से दिखलाए जाते हैं जिनको ज़ेर ज़बर, पेश और तनवीन इत्यादि कहते हैं। भाषा में तो स्वर शब्द का एक भाग है, परन्तु शेमेटिक में वह केवल एक ऐसा चिह्न है जिसका लिखना अथवा न लिखना लेखक की इच्छा पर निर्भर है और लेखक इसे प्रायः छोड़ दिया करते हैं।

"इससे यह बात विदित हो गई होगी कि शेमेटिक भाषा की अपेक्षा आर्यभाषा क्यों सरल है। आर्य भाषा में एक शब्द केवल एक ही प्रकार से पढ़ा जा सकता है। यदि उस शब्द में कोई शंका उत्पन्न हो सकती है तो केवल इसी कारण कि कोई अक्षर ठीक प्रकार से नहीं लिखा गया। शेमेटिक भाषा में एक शब्द को तीन चार से भी अधिक प्रकार से पढ़ सकते हैं जैसे अरबी शब्द कतब को तीन प्रकार से पढ़ सकते हैं 'कुतिब', 'कुतुबु' अथवा 'कतब' और इन तीनों में से कहाँ पर क्या पढ़ना चाहिए सो केवल वाक्य-प्रबन्ध से ही ज्ञात हो सकता है। परन्तु यही शब्द यदि संस्कृत, यूनानी वा रूमी अक्षरों में लिखा जाय तो शंका करने की आवश्यकता ही नहीं पड़ेगी। इन तीनों में से जहाँ जो शब्द लिखना है वहाँ उसे स्पष्ट रीति से लिख सकेंगे और उसका अशुद्ध अथवा दूसरे प्रकार से पढ़ा जाना असम्भव होगा। यही कारण है कि कोई मनुष्य अरबी को बिना उसके कोष और व्याकरण से विज्ञ हुए नहीं पढ़ सकता। परन्तु एक बालक भी अक्षर पहिचानने के पश्चात् ही संस्कृत, यूनानी अथवा लेटिन भाषा को बिना अर्थ समझे और बिना कठिनता के भली भाँति पढ़ सकता है।

"जब कि शेमेटिक अक्षरों की यह अवस्था उन भाषाओं के लिये है जिनके लिये कि वे बनाए गए थे और जिनके साथ उनका विशेष सम्बन्ध होना चाहिए तो तनिक विचारने की बात है कि उर्दू और फारसी के समान आर्य भाषाओं के लिये ये अन्तर कैसे अनुपयुक्त हैं। क्योंकि इनका सम्बन्ध इन भाषाओं के साथ केवल असली लोगों के राजनैतिक प्रभुत्व के कारण हुआ। हम दिखला चुके हैं कि इस प्रयोग से प्रत्येक शब्द कई प्रकार से पढ़ा जा सकता है और जब तक कि वह शब्द पहिले ही से न मालूम हो तब तक उसका शुद्ध उच्चारण कदापि नहीं किया जा सकता। अतएव यह कहा जा सकता है कि प्रत्येक लिखा हुआ शब्द एक कल्पित चित्र है जिसके कि उच्चारण का उसकी लिखा-